

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182960

UNIVERSAL
LIBRARY

महादेवी की काव्य-साधना

आलोचना व निबन्ध

और

नीरजा

लेखक

सत्यपाल चुघ एम० ए०, सा० रत्न
प्राध्यापक के० एम० कालिज, दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमिका लेखक

बाबू गुलाबराय

भाषा प्रकाशन

नई दिल्ली—५

प्रकाशक

विजयकुमार मलहोत्रा, एम० ए०

भाषा प्रकाशन

१०२०७, स्वामी प्रकाशानन्द मार्ग

डब्ल्यू० ई० एरिया

नई दिल्ली — ५

P. G.

H 1213

प्रथम बार

सन् १९५६

मूल्य साढ़े पाँच रुपए

Post Graduate Library
College of Arts & Commerce O. B.

मुद्रक

हकूमतलाल

विश्व भारती प्रेस

पहाड़ गंज, नई दिल्ली

आलोचना व निबन्ध

मेरा दृष्टिकोण

छायावादी कवियों में सुमित्रानन्दन पंत तथा जयशंकर प्रसाद पर जितना लिखा जा चुका है उतना निराला और महादेवी पर नहीं। इन दोनों कवियों पर आलोचनात्मक साहित्य की दरिद्रता एक शोचनीय बात है। मैं समझता हूँ छायावाद की वृहत्त्रयी—प्रसाद, पंत, निराला में महादेवी का उपयुक्त स्थान है। इस वृहत्त्रयी की शोभा महादेवी को साथ ले कर ही हो सकती है।

महादेवी पर जो समीक्षात्मक अध्ययन मिलते हैं उनमें भी प्रायः एकांगी दृष्टिकोण से समीक्षाएँ हुई हैं। महादेवीके कुछ प्रशंसक-आलोचक उन्हें पूरी वैरागिनी-रहस्यवादिनी बना उनका मूल्य कम कर देते हैं (चाहे उनके अनुसार बढ़ता ही हो)। इस युग की विस्फोटक चेतना के अनुकूल प्राचीन रहस्य-भावना से आज की रहस्य-साधना में विशेष अन्तर आ सकता है। यह समझना आवश्यक है। केवल वैयक्तिक अभावों के आधार पर आलोचना भी स्वस्थ नहीं कही जा सकती। आलोचना का माप मान व्यापक होना चाहिए क्योंकि आजके जटिल जीवन की आलोचना एकांगी प्रभावों के आधारों पर करना मानव के अन्तर्बाह्य संघर्ष-विघर्ष से अनभिज्ञता का परिचय देना है। ऐसे आलोचक भी हैं जिनके अनुसार महादेवी ने कही भी युग-जीवन अथवा स्वजीवन सम्बंधी विचार प्रकट करने की चेष्टा नहीं की। स्यात् गीति काव्य की इस प्रकृति की ओर उनका ध्यान नहीं गया कि उत्कृष्ट गीतिकाव्य में युगजीवन इस रूप में नहीं आ सकता जैसा कविता के अन्य प्रकारों में। गीतिकाव्य में समाज से प्रभावित होने के पश्चात् समाज गौण हो जाता है, तज्जन्य रागात्मक अनुभूति ही प्रमुख हो जाती है। कुछ समीक्षक ऐसे भी हैं जो महादेवी में 'आँसू' शब्द को

देखकर ही उन्हें निराशावादी मानने लगते हैं, वेदना के स्वरूप की ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती। महादेवी के गद्य और पद्य का भाव-वैषम्य भी कुछ विद्वानों को आश्चर्यचकित कर देता है। श्रद्धेय गुलाबराय जी ने अपनी भूमिका लिख कर मेरे दृष्टिकोण को स्पष्ट कर ही दिया है।

मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है वह सम्पूर्ण या अंतिम नहीं है। जिन आलोचकों का मैंने ऊपर उल्लेख किया है उन्हीं से मैं उत्प्रेरित-उत्साहित भी हुआ हूँ। उनकी आलोचनाओं में ही मुझे ऐसे तत्त्व मिले हैं जो मेरा दिशा-निर्देशन कर सके। इसलिये मैंने अन्य आलोचकों के मत उन्हीं के शब्दों में दिये हैं ताकि मेरा नूतन दृष्टिकोण भी स्पष्ट हो सके। वैसे तो मैंने महादेवी की सभी कृतियों के उदाहरण दिये हैं किन्तु विशेष दृष्टि नीरजा पर रही है।

महादेवी की उत्कृष्ट कृति नीरजा की व्याख्या इसलिये की है क्योंकि महादेवी के अर्थ उनकी भावधारा के समान ही रहस्य बने रहे हैं। नीरजा की व्याख्या करने में मैंने सर्वप्रथम महादेवीजी के दृष्टिकोण को ध्यान में रखा है। इसके अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि को भी उचित महत्त्व दिया है। नीरजा की व्याख्या करना मेरा एक प्रयास है। मैं इसे एक प्रयास ही कहूँगा क्योंकि इस दिशा में मुझे पूर्ण सतोष नहीं। तात्पर्य यह है कि महादेवी की व्याख्या में कहीं और अधिक सौन्दर्य आ सकता है और इसकी ओर मैं प्रयत्नशील भी रहूँगा। इस दृष्टि से मैं विज्ञ पाठकों-आलोचकों की सम्मतियों का सहर्ष स्वागत करूँगा।

समयाभाव के कारण महादेवी के अनेक पक्षों पर प्रकाश नहीं डाला जा सका। उनके रहस्यवाद तथा सुन्दर लौकिक रूपको पर फिर कभी लिखूँगा।

महादेवी ने अलौकिक प्रियतम को, अनेक सम्बोधन दिये हैं। यथा—देव, निर्मम, निष्ठुर, बेपीर, कर्णामय, प्रिय आदि। इन पर भी लिखना आवश्यक है। यह उल्लेखनीय है कि नीहार-रश्मि में प्रायः 'देव' सम्बोधन ही आया है जो कि प्रियतम की महानता तथा साधिका की श्रद्धा का परिचायक है। नीरजा में 'प्रिय' सम्बोधन ही अधिक है। महादेवी की प्रारम्भिक कृतियों में एकान्त निराशा का प्रसार देखने वालों को यह कुछ इंगति कर सकता है। महादेवी में केवल लौकिक प्रेरणा होनी तो पहली कृति में देव के स्थान पर प्रिय अथवा निर्मम शब्द ही होता। और बाद में वैयक्तिक अभावों के उदात्तीकरण के अनुरूप 'देव' सम्बोधन आता। किन्तु ऐसा नहीं हुआ।

यदि विद्वानों की ओर से उत्साह मिला तो महादेवी की अन्य कृतियों पर लिखने का प्रयत्न भी करूँगा।

अन्त में मैं उन सभी आलोचकों का आभार स्वीकार करता हूँ जिनकी कृतियों से मैंने ज्ञात-अज्ञात रूप से प्रेरणा ग्रहण की है। वस्तुतः यदि इस पुस्तक में मुझे कुछ भी सफलता मिली है तो उसका श्रेय मेरे गुरुवरों— डा० नगेन्द्र, प्रो० विजयेन्द्र स्नातक तथा डा० ओम्प्रकाश को है। गलतियाँ मेरी अपनी हैं। इनके अनुप्रेरण-उत्साहन से ही मैंने लिखने का कुछ साहस किया है। श्रद्धेय गुलाबराय जी का भी हार्दिक आभार स्वीकार करता हूँ जिन्होंने अस्वस्थ होने पर भी भूमिका लिखने का कष्ट किया।

के० एम० कालिज, दिल्ली।

सत्यपाल चुघ

३/२/५६

विषय-क्रम

पृष्ठ संख्या

प्रथम खण्ड

१. महादेवी की कृतियाँ	३
२. महादेवी की भावधारा	७
३. महादेवी की विचारधारा	३१
४. महादेवी और मीरा	५९
५. महादेवी का प्रकृति चित्रण	७८
६. महादेवी का गीतिकाव्य	९८
७. महादेवी की कला	१२५
८. महादेवी का महत्व	१५८
९. नीरजा का महत्व	१६४

द्वितीय खण्ड

१०. नीरजा की व्याख्या	१६९-३४५

प्रथम खण्ड

महादेवी की कृतियाँ

श्रीमती महादेवीजी वर्मा हिन्दी साहित्य की करुणा-प्रधान महान् कवयित्री हैं। उनकी काव्य-कृतियाँ काल-क्रमानुसार निम्नलिखित हैं—

(१) नीहार—रचना-काल	१९२४—१९२८	गीत सख्या-४७
(२) रश्मि	१९२८—१९३१	,, ,,—३५
(३) नीरजा	१९३१—१९३४	,, ,,—५८
(४) साध्यगीत	१९३४—१९३६	,, ,,—४५

इन चारों कृतियों का संकलन 'यामा' नाम से १९३६ में प्रकाशित हुआ जिसमें एक सौ पचासी गीत हैं।

(५) दीपशिखा—रचना-काल १९३६—१९४२ (गीत स० ५१)

१९४६ में बंगाल के अकाल पर अनेक कविताये लिखी गईं। प्रयाग महिला विद्यापीठ (महादेवी जिसकी मुख्याध्यापिका हैं) द्वारा इन कविताओं का संकलन 'बंग दर्शन' नाम से प्रकाशित हुआ। उसमें भी महादेवी की एक कविता 'बंग-वदना' नाम से है।

यामा की भूमिका में महादेवी लिखती हैं—“यामा में मेरे अंत-जगत् के चार यामों का छायाचित्र है। ये याम दिन के हैं या रात के यह कहना मेरे लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।” फिर भी कृतियों के नामों और उनकी भावनाओं में एक ऐसा क्रमिक विकास परिलक्षित होता है (जैसा असंगतियों के कारण बहुत कम कवियों में मिलता है) कि यह कहा जा सकता है, ये याम (पहर) दिन के हैं रात के नहीं, जैसा कि विश्वंभर मानव का भी मत है। नीहार की कुहेलिका (धुँधलेपन) में वह अभी मार्ग खोज रही है। पथिक निराश भी है किंतु

यह ऐसी निराशा नहीं जो पथिक को गत्यवरुद्ध कर दे । उस 'देव' 'बेपीर' के निराशा के झोंकों ने 'मानस-कुञ्जों' में 'धूल' अवश्य भर दी है (यामा पृष्ठ ४०) किन्तु इस धूल में पुष्प का पराग भी है । उसकी 'आँखें' छलक रही हैं, किन्तु 'ओठ' हँस रहे हैं । उनकी 'तरी' 'हाहा-कार' करती हुई 'पर्वताकार तरंगों' से घिरी हुई अवश्य है किन्तु उनके पास 'डूबकर पार उतरने' का महामन्त्र तथा 'विमर्जन' का 'कर्णधार' भी है (यामा पृष्ठ १८, १९) । अतएव नीहार की नीहारिका सध्या की कालिमा नहीं जो उनको मार्ग न मिल पाता । इसलिये 'नीहार' के भीतर से ही 'रश्मि' आलोक फैलाती हुई आई और आने का पथ प्रशस्त हो गया । 'नीहार' में आगामी कृतियों में लक्षित-विकसित सभी भावनाएँ मिल जाती हैं । यथा—त्याग भावना (यामा पृ० १९), विश्व के प्रति मंवे-दना (यामा पृ० ३३), अलौकिक प्रियतम के प्रति विरह, वंराग्य भावना (यामा पृ० ३८), संसार की असारता (यामा पृ० २९), मुक्ति की उपेक्षा (यामा पृ० ७), साधना तथा अतृप्ति-प्रियता (पृ० ३२), दुःख में अज्ञात प्रिय को खोजना (३१) इत्यादि ।

'रश्मि' के तरुण-अरुण वाण ने नीहार के कृहर-म्लान क्षितिज को भेद दिया और सारा भेद स्पष्ट हो गया । रश्मि ज्ञान की रश्मि सिद्ध हुई । इसके प्रकाश में कवयित्री ने संसार के रहस्यों को सुलझाना प्रारम्भ किया । इस संसार को किसने, कैसे और क्यों निर्माण किया, आत्मा-परमात्मा में क्या सम्बन्ध है आदि दार्शनिक प्रश्न आलोकित हो उठे । यही नहीं समग्र वातावरण आशा के प्रकाश से जगमगा उठा । अब अश्रु-हास दोनों मिलकर चित्राकन करने लगे (रश्मि की प्रथम कविता) । 'जीवन की सरिता' 'विरह-मिलन के पुलिनों' (यामा पृष्ठ ७६) में सहज-संतुलित रूप में प्रवाहित होने लगी । अब वृत्त (घेरा) भी विस्तृत हो गया । प्रियतम से मिलने के बहाने विश्व के 'कण-कण' से परिचित होने की आकांक्षा जगी (७७) । अब यह प्रश्न

उपस्थित हो गया कि माँ (प्रकृति) के वैभव को देखे या पर-जीवन के क्रन्दन को सुने (१००)।

‘रश्मि’ से ‘नीरजा’ खिल उठी जो राजसिकता-तामसिकता के सलिल-पंक से मुक्त हो गई। ‘नीरजा’ की प्रथम कविता में ही साधना-साध्य सात्विक भावनाओं के सम्बन्ध में कोमल गर्वोक्ति हुई है। अब उन्होंने जीवन के चरम सत्य हृदयगम कर लिये हैं। वे दो हैं—(१) अज्ञात प्रियतम की ‘सुधि का दंशन’, (२) विश्व के प्रति करुणा-प्यार (नीरजा कविता ३५)। दीपवत् मधुर-मधुर निरंतर जलकर प्रियपथ को प्रकाशित करने का आग्रह बढ़ गया है। ‘कौन तुम मेरे हृदय में’ के कौतूहल के साथ ‘तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या?’ का विश्वास भी हो गया है। इस कृति में मीरा (नीरजा कविता २१), बुद्ध और कृष्ण (नी० ५३) को स्मरण किया गया है। लौकिक कामनाओं का कर्दम न होते हुए भी लौकिक रूपों की रुचिरता चरम सीमा पर है।

‘नीहार’ और ‘रश्मि’ का ‘देव अब एकदम ‘प्रिय’ हो गया है। ब्रह्म के सम्बोधन में परिवर्तन ही प्रणय की तीव्रता को व्यक्त कर रहा है।

‘नीरजा’ ने दिन भर साधना की, सध्या आई और ‘साध्य गीत’ गाया गया। ‘रश्मि’ और ‘नीरजा’ के समान ही इस कृति का प्रथम गीत ‘प्रिय साध्य गगन मेरा जीवन’ साधना की उन्नत स्थिति को व्यक्त कर रहा है। अब ‘सध्या’ विश्राम की आशा चाहे दिलाये, महादेवी का साधना-पथ पर विश्राम और भी बढ़ गया है। जब साधन ही साध्य, विरह ही आराध्य हो जाये तब प्रिय से पृथक्ता कैसी?—द्वैत कैसा और बाधा कैसी? साध्यगीत की अनेक कविताओं में दो भाव प्रबल रूप में व्यक्त हुए हैं—‘इस पार’ ही मुक्ति की कामना तथा चिर साधना में ‘सतोष-भावना’। इस दृष्टि से ‘देव अब वरदान

कैसा' तथा 'क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन' कविताएँ सांध्यगीत की भावना का प्रतिनिधित्व कर रही हैं। वस्तुतः साधना-पथ और उसमें आने वाले सुख-दुःख सब 'मधुर प्रिय' की भावना से मधुर हो गये हैं (२२१)। विश्व के क्रन्दन की ओर जागरूकता (२३४, २३६) और भी बढ़ गई है। महादेवी साधना-पथ में साधक के लिये कौन से गुण अपेक्षित मानती है 'ओ चिर महान्' कविता इस दृष्टि से पठनीय है। 'साध्य गीत' के गीतों की पृष्ठभूमि—संध्या—निश्चित-सी है।

संध्या के बाद 'यामा' (रात्रि) आई और फिर 'दीपशिखा' प्रज्ज्वलित हो उठी। 'दीपशिखा' में सर्वाधिक रचनाएँ दीपक पर हैं। दीप आत्मा का प्रतीक है। इस 'साँझ के दूत' दीप को उस समय तक निष्कम्प जलने के लिये कहा गया है जब तक प्रभाती अथवा विहान (प्रभात वेला अथवा परमात्मा की आभा) न आ जाये क्योंकि वह 'रात के उर' में 'दिवस की चाह का शर' लिये हुए है। दीपशिखा में विचारात्मकता अधिक है। साधना-पथ में अदम्य उत्साह यहाँ देखने योग्य है। अब चाहे 'रात धिरती रहे' क्योंकि हर 'पलक-पात' में प्रातः से भेट हो रही है इसलिये 'शेष कितनी रात' का प्रश्न अब नहीं उठता। संसार के लिए आलोक वितरण करते हुये दीपशिखा अज्ञात प्रियतम के लिए 'अर्चंचल-निष्कम्प' रूप में 'धुल-जल' रही है। अब 'विहान' अथवा प्रभाती अवश्य आये—यही कामना-प्रार्थना है। भा. यु. का—
 "निहान" (काव्य) १० गद्य भट्ट १०२ (३५००)

महादेवी की भावधारा

जीवन का हर्ष-विषाद, हास्य-रुदन ही तो गीत है । ये हर्ष-विमर्ष भी जीवन के घात-प्रतिघातों का परिणाम है जिनमें कभी हमारी अतृप्त आकाक्षाएँ कराह और कभी सुखात्मक अनुभूतियाँ मुस्कुरा उठती हैं । इन्हीं के भीतर से जीवन को देखने-समझने का एक दृष्टिकोण उभर उठता है जिसके साथ यदि व्यक्ति का विश्वास जुड़ जाए तो उस 'संकल्पात्मक अनुभूति' की सृष्टि होती है जो कविता की जननी है । अतएव गीतिकाव्य में जीवन-दर्शन का उपयुक्त स्थान है । ऐसा इसलिये कि कवि के दर्शन और जीवन के प्रति उसकी आस्था में भेद असम्भव है । यदि यह भेद हुआ, तो कवि काव्य में अपनी अनुभूति के प्रति अविश्वासी होगा और इस स्थिति में किसी भी उत्कृष्ट काव्य का सृजन असम्भव है ।

गीति-कवयित्री महादेवी की भावधारा के सम्बन्ध में आलोचना-जगत में जितनी भ्रान्तियाँ हैं, शायद ही उतनी किसी के सम्बन्ध में हो ।

कमलेश जी को इन्टरव्यू देते हुए वे कहती हैं "संघर्ष हमारा प्राण है और वह हमें करना है । आगे भी करेंगे । बिना संघर्ष जिन्दा कौन रहा है ? जीवित रहने के लिए संघर्ष करना हमारे विद्रोही स्वभाव की विशेषता है । यह विद्रोह हमने पढ़ते-पढ़ते ही सीख लिया था । मैं महिला विद्यापीठ में उसी विद्रोह को क्रियात्मक रूप दे रही हूँ । इस क्रियात्मक जीवन में मुझे व्यस्त रहना पड़ता है और मैं उस व्यस्तता में ही जीवन का आनन्द खोजती रहती हूँ । मुझे प्रतिक्षण इस

बात की चिन्ता रहती है कि हम इस हलचल में ही शान्ति का समाधान खोजें और अशान्ति को मिटायें ।”^१

कमलेश जी प्रभावित हुये और उन्हें ऐसा लगा कि “यह आत्मा जो कुछ कह रही है वह उसके अन्तरतम की ध्वनि है ।”^२

बहुत-से आलोचकों का यही मत है कि इस ‘अन्तरतम की ध्वनि’ की अभिव्यक्ति महादेवी के गद्य में हुई है कविता में नहीं । गद्य में विद्रोह का स्वर है, पद्य में पलायन की भावना । “गद्य और पद्य में महादेवी के जीवन की दो पृथक् धाराएँ विकसित हुई हैं । उनके पद्य की कसौटी है असामञ्जस्य और आत्म-पीडन, जिनमें बाह्य परिस्थितियों से आस्था न होने के कारण अन्तर्मुखी चिन्तन है, विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभूति नहीं । आत्मदर्शी जिन अनुभूतियों में रमता है उनका इनमें अभाव है । अतएव उनका पद्य रागात्मक कल्पना का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता हुआ भी इतना लोक-संवेद्य न हो सका जो मन में उतर पाता । इसके विपरीत महादेवी के गद्य का अपना पृथक् अस्तित्व है..... । लोक-सामान्य संवेदनीयता की भाव भूमि पर उन्होंने गहरे हल्के रंगों के जो चित्र आँके हैं वे अर्थपूर्ण अनुभूतियों के आधार पर यथार्थ का सच्चा निरूपण करते हैं ।”^३

इस प्रकार जब महादेवी गद्य में लिखती हैं तो और ही प्रकार से सोचती हैं दूसरों के लिए रोती हैं और जन-जीवन से उनका सक्रिय सम्बन्ध प्रकट होता है । परन्तु पद्य में लिखते समय उनके सोचने की विधि बदल जाती है, उनका अपना अभाव ही भाव बन कविता में फूट पड़ता है, एकाकिनी बरसात बनती है और किसी अलौकिक प्रिय-

१. मैं इनसे मिला, पृष्ठ ११६

२. वही, पृष्ठ ११)

३. महादेवी वर्मा—काव्य कला और जीवन दर्शन, पृष्ठ १२, शची रानी गुर्दा ।

तम की साधना का स्वांग भरता है। उनकी कविता कल्पनाओं अथवा अध्ययन-प्रसूत दर्शन-चिन्तन के मुलावे में डाल जीवन से दूर ले जाती है, और गद्य में उनकी “आत्मा का सत्य शब्द-शब्द, पंक्ति-पंक्ति में सजीव होकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है।” गद्य और पद्य का यह भाव वैषम्य कुछ आलोचकों को आश्चर्य में डाल देता है।

शान्तिप्रिय द्विवेदो महादेवी के दुःख के संवेदनात्मक रूप को उनके संस्मरणों में ही देखते हैं, कविता में नहीं। कविता में अलौकिक वेदना को मानते हैं। “निस्सन्देह महादेवी की कविता न तो जीवन के प्रहर्ष में है, न जीवन के संघर्ष में। उनमें तो केवल उस चेतन की आराधना है जो जीवन के इतने हर्षविमर्षों का मचालक है।”

नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार “महादेवी के काव्य में वैराग्य भावना का प्राधान्य है। महात्मा बुद्ध की भाँति नहीं (बुद्ध की मूर्तियों में दुःख की मुद्रा नहीं मिलती) किन्तु बौद्ध संन्यासियों सरीखी एक चिन्ता मुद्रा, एक विरक्ति, एक तडप, शान्ति प्रति एक अशान्ति महादेवी की कविता में सब जगह देखी जा सकती है।”

अमृतराय भी महादेवी के काव्य को आत्म-केन्द्रित मानते हैं और अपनी ही पीड़ा के वृत्त में उसकी समाप्ति भी देखते हैं। गद्य को वह समाज के द्रव मानते हैं। इसीलिये वह लिखते हैं—“अब उसका कोई उचित कारण समझ में नहीं आता कि महादेवी के इन दोनों रूपों में ऐसा अमाप पार्थक्य, ऐसा विचित्र वैषम्य क्यों है।” किन्तु यदि महादेवी के काव्य का सम्यक् निरीक्षण-परीक्षण किया जाय तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि महादेवी के कवि और गद्यकार में कोई विरोध नहीं, ये परस्पर अभिन्न हैं। जीवन में सक्रिय सेवा करने वाली, गद्य में पीड़ितो-शोषितों की वाणी देने वाली, कविता में एकदम वैरागिनी कैसे बन सकती है? वस्तुतः उनकी अलौकिक वेदना को समझने की आवश्यकता है। आगे की पंक्तियों में मैं गद्दी स्पष्ट करूँगा।

यह युग बुद्धिवाद का युग है। बुद्धिवाद, आदर्शवाद अथवा अध्यात्म-वाद का विरोधी नहीं किन्तु वह अपनी कसौटी पर अतीत के आदर्शों को कसता है। बुद्धिवाद की दृष्टि से विरक्तिपरक अध्यात्म इस युग ही माग के अनुकूल है। समाज से विलग होकर हम विजन वन में मोक्ष नहीं पा सकते और मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है—बुद्धिवादी को यही आध्यात्मिक आदर्श इस युग के अनुकूल जान पड़ा। विवेकानंद, गाँधी और रवीन्द्र के बौद्धिक अध्यात्म ने मानव सेवा का पाठ ही पढ़ाया।

विवेकानन्द के अनुसार “मानव में ईश्वर का दर्शन ही सच्चा दर्शन है।” रवीन्द्र की गीताजलि में भी यही स्वर मुखरित हुआ। रवीन्द्र के एक गीत ‘नैवेद्य’ का मूल भाव है “वैराग्य साधन से मुक्ति ? अरे वह मेरी नहीं है। मैं तो संसार के असंख्य बन्धनों में ही मुक्ति का आनन्द पा लूँगा। गीताजलि में एक ओर लौकिक प्रेम के रूपकों में दिव्य—अलौकिक रति की अनुभूतियाँ हैं, रहस्यमयता है और दूसरी ओर युगानुरूप अध्यात्म का परम्परा-मुक्त दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। यथा गीताजलि की निम्न पंक्तियों में:—

भजन पूजन साधन आराधना समस्त थाक पड़े

रुद्ध द्वारे देवालयेर कोरमें केन आछिस ओरे ।

अन्धकार लुकिये आपन् मने ,

काहारे तुइ पूजिस सगोपने ।

नयन मेले देखि-देखि तुइचेमे ,

देवता नाइ घरे ।

“तू भजन, पूजन, साधन, आराधन सब रहने दे। पुजारी तू मंदिर का द्वार बंद किये, उसके कोने में अपने मन के एकान्त अन्धकार में मूक-रूप से किसकी पूजा में संलग्न है ? आँख खोलकर देख भगवान कहाँ नहीं है” महादेवी भी आध्यात्मिक अवश्य है किन्तु मीरा की तरह

आत्मस्थ अथवा आत्म-केन्द्रित नहीं। उनका अध्यात्म भी विवेकानन्द और रवीन्द्र का, इस युग का अध्यात्म है।

नारी वैसे भी संवेदनशील होती है, कवयित्री और भी अधिक, किंतु महादेवी अत्यधिक-असामान्य संवेदनशील है। यह संवेदनशीलता किन्हीं परिस्थितियों का ही प्रभाव नहीं उनका मूल सांस्कारिक गुण भी है। शिवचन्द्र नागर महादेवी की रेखा चित्र में लिखते हैं “वह एक पेड़ को एक स्थान से उखाड़कर इसलिये नहीं लगाती कि वह सूख न जाये। वे एक फल को इसलिये नहीं तोड़ती कि वह मुरझा न जाये। वे किसी भी जीव की मृत्यु चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो अपनी आँखों से देखना नहीं चाहती। मुझे याद है एक बार जब मेरे एक साथी महोदय ने एक कालीन पर चढ़े आते हुए चींटे को उँगली से दूर फेंका तो वे उसके मर जाने के डर से घबरा उठी और दूसरी बार जब एक बार उनकी बिल्ली सुनयना ने उनकी आँखों के सामने एक जानवर की हत्या कर डाली तो इनकी आँखों से आँसू झलक आए और कहने लगी कि--‘अब इस बिल्ली को अपने यहाँ न रखूँगी।’ तब से पता नहीं सुनयना कहाँ चली गई। मैंने उसे नहीं देखा।

विश्व के किसी कोने से किसी की भी पीड़ा की कहानी सुनकर इनका मन उसकी पीड़ा में डूब जाता है। अपने द्वारा यह किसी को पीड़ा पहुँचाना भी नहीं चाहती। इसलिये वह किसी भी आदमी से खींची जाने वाली रिक्शा में नहीं बैठती।” सस्मरणों से तो यह स्पष्ट ही है। महादेवी के इसी संवेदनात्मक स्वरूप के दर्शन उनके समस्त साहित्य में होते हैं।

महादेवी के गीत गीले और साश्रु हैं—दुःख से आपूर्ण हैं, वेदना का इतना एकान्त प्रसार उनके गीतों में क्यों है ? बिना किसी अनिवार्य आवश्यकता, अथवा दर्शन के ऐसा नहीं हो सकता। अवश्य ही वेदना उनको प्रिय थी है और इसका उनके जीवन-दर्शन से अनिवार्य रूप से

सम्बन्ध भी है। तो क्या जो बात किसी को प्रिय हो वही उसका जीवन-दर्शन भी होगी ? ऐसा आवश्यक तो नहीं, किन्तु महादेवी-जैसी परिष्कृत बुद्धिशीला महिला के लिये आवश्यक है क्योंकि उनसे हम किसी सस्ती भावुकता की आशा नहीं कर सकते। और फिर कितनी ही कविताओं में वेदना साध्य भी बन गई है। मानो यही उनका दृष्टि हो। “महादेवी ने अपनी वेदना की प्रियता के सम्बन्ध में जिन कारणों का उल्लेख किया है वे पर्याप्त नहीं हैं। उन्हें जीवन में बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब-कुछ मिलने की प्रतिक्रिया से वेदना प्रिय मालूम नहीं हो सकती। प्रतिक्रिया हृदय की इच्छित वृत्ति नहीं होती और काव्य में स्वाभाविक वस्तुओं के बिना रमणीय अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। यदि महादेवी की सारी काव्य-रचनाएँ जैसा कि उन्होंने लिखा है, अतिशय प्यार, दुलार की प्रतिक्रिया के कारण ही वेदना-बहुल है, तो उनका मर्म किसी कवयित्री का मर्म नहीं हो सकता किन्तु यह बात नहीं है। महादेवी एक सफल कवयित्री हैं और आपके पास कवि सुलभ एक संवेदनापूर्ण हृदय भी है।”^१

जैनन्द्र शचीरानी गुटू के प्रश्नोत्तर में कहते हैं, “घायल घाव नहीं चाहता है, मालूम होता है उनकी गति घायल की है नहीं। महादेवी वियोग और विरह में रस अधिक ढूँढती हैं। उसका अर्थ है विकलता इतनी अनुभव नहीं करती।” किन्तु महादेवी की वेदना का स्वरूप आल्हादकारी है, विषादकारी नहीं है। महादेवी को ‘करुणा स्नात उजले उल्लासमय’ दुःख की अपेक्षा है, निराशानिहित मलिन दुःख की नहीं—

शून्य मन्दिर में बनूँगी आज मैं प्रतिमा तुम्हारी ।

अर्चना हो शूल भोले,

क्षार दृग-जल अर्घ्य होले,

शूलक्षमी नारायण सुधांशु ।

आज कहणा स्नात उजला,

दुःख हो मेरा पुजारी ।

—सांध्यगीत

अपने दुःख के इसी स्वरूप को स्पष्ट करती हुई महादेवी लिखती है—“दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा-काव्य है जो सारे, संसार को एक सूत्र में बाँधे रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी नहीं पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक वूँद आँसू भी जीवन का अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख को सबको बाँटकर। विश्व जीवन में अपने जीवन को विश्व वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार कि जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।”^१

यही मोक्ष महादेवी का लक्ष्य है। पर-वेदना से प्रेरित होकर ही गद्य में उन्होंने यथार्थ चित्र दिये हैं और विश्व के प्रति यही अश्रु आपूर्ण संवेदना अनेकों कविताओं में मुखरित हुई है। इसीसे उनका दुर्गम-तम जीवन पथ सजल और सरल होता है और युग का ‘तृषित तीर’ भी शीतलता प्राप्त करता है।

महादेवी पर बुद्ध के दुःखवाद का प्रभाव है। इसको उन्होंने कितनी बार स्वीकार किया है। बौद्ध मत के अनुसार साधक अष्टांग मार्ग पर चलकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है और उसके लिए साधन है करुणा अथवा संवेदना। इसी करुणा से वह संसार को उद्बोधित करती है, जागृत करती है—

जाग बेसुध जाग ,

अश्रु कण से उर सजाया, त्याग हीरक हार

भीख दुःख की माँगने फिर जो गया प्रतिद्वार ,

शूल जिसने फूल, छू, चन्दन किया सन्ताप ।

१ ‘रश्मि’ की भूमिका ।

न जगाती है उसी सिद्धार्थ की पद-चाप ।
करुणा के बुलारे जाग ।

+ . + + +

रात के पथ हीन तम में मधुर जिसके श्वास ,
फल भरते लघुकणों में भी असीम सुवास ।
कंटकों की सेज जिसकी आंसुओं का ताज ,
भुभग हँस उठ उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज ।

बीती रजनी प्यारे जाग ।

—नीरजा

यह पलायन है या जागरण ? यह जीवन से पलायन नहीं जीवन में प्रवेश है This is an escape into life, not from life । वस्तुतः यह पलायनवाद नहीं प्रवृत्तिवाद है । उनकी करुणा बौद्धिक करुणा नहीं । जग के कण-कण को जानकर, उनके क्रन्दन को पहचानकर करुणा डुलकती है । जग के दागों को धो-धोकर ही उसकी काया की छाया गहरी होती है । जिसमें जग के संघर्षों से जूझने की शक्ति न हो वही निर्जन गह्वर की वांछा कर सकते हैं, पलायनवादी बन सकते हैं; महादेवी नहीं जो कठोर बनकर पूर्ण शक्ति से सुख-दुःख का स्वागत कर सकती है—

जिसको पथ शूलों का भय हो ,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर ।
प्रिय के सन्देशों के बाहक ,
में सुख दुःख भेंटूगी भुजभर ।
मेरी लघु पलकों से छलकी ,
इस कण-कण में ममता बिखरी ।

—सान्ध्यगीत

ये पंक्तियाँ तुलसी की निम्न पंक्तियों का स्मरण दिलाती हैं—

को जाने को जँहै सुरपुर पर धाम को ।

तुलसीदास, बहुत भलो लागत जगजीवन राम गुलाम को ॥

महादेवी को दुःख का वह रूप तो प्रिय है ही जो सहानुभूति और समता बढ़ाता है, आत्मा का विस्तार करता है “मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है^१ ।” और दूसरा वह रूप भी प्रिय है “जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है ।”^२ इसी क्रन्दन में वह करुणा भी सम्मिलित है जो जीवन-वैषम्य और संसार की असारता^३ से उत्पन्न होती है । यदि मनोवैज्ञानिकों की भाषा में कहा जाय तो व्यक्तिगत अभावजन्य वेदना का काव्य में उल्लयन अथवा पर्युत्थान हो जाता है । इस दुःख के तीसरे स्वरूप ने महादेवी के पहले दो दुःखों को और भी तीव्र बनाया है । अवश्य ही व्यक्तिगत अभावो का, काव्य पर प्रभाव पड़ता है किन्तु इसको प्रबल प्रभाव के रूप में ही ग्रहण करना चाहिये, मूल के रूप में नहीं । जीवन पर पड़े हुए अन्य प्रभावो-संस्कारो को कैसे भुलाया जा सकता है ? महादेवी स्वभावतः-संस्कारतः अनुभूतिमयी तथा करुणाशील है । सामाजिक गत्यवरोध ने करुणा को और घनीभूत कर दिया है । अतएव यदि महादेवी जी गृहिणी या माता होती तो भी उनके काव्य के स्वरूप में विशेष अन्तर न आता, वह करुणा-बहुल ही होता क्योंकि यह उनकी मूल प्रवृत्ति है, सांस्कारिक प्रवृत्ति है, केवल व्यक्तिगत अभाव-जन्य नहीं । माता अथवा गृहिणी होने की स्थिति में ध्यान बँट जाता है और काव्य की तीव्रता अवश्य कम हो जाती किन्तु स्वरूप में परिवर्तन सम्भव नहीं

१ रश्मि की भूमिका ।

२ वही, रश्मि की भूमिका ।

३ यथा पृष्ठ २६, ३०, ४२ यामा, नीहार ।

था। कमलेश को इण्टरव्यू देते हुये वे कहती हैं, “उनमें (गीतों में) करुणा की अधिकता इसलिये है कि बुद्ध का मेरे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मैं बचपन में भिक्षुणी होना चाहती थी और आज भी वह लालसा ज्यों की त्यों बनी है। लेकिन अपने जीवन से भी मुझे पूर्ण सन्तोष है। भिक्षुणी बनकर पूर्ण स्वतन्त्र हो जाती, पर आज भी मैं कम स्वतन्त्र नहीं हूँ। जो मैं चाहती हूँ वही तो होता है। मेरी जीवन यात्रा बड़ी सुखद है। सामाजिकता का यह रूप जो मैंने अपनाया है, वह इसलिए कि वह मेरे मन के अनुकूल पड़ता है। तभी तो मैं भिक्षुणी न होने पर सन्तुष्ट हूँ। आरम्भ में विधवा आदि विषयों पर मैंने लिखा ही है। ये ही विषय सामने भी थे।”

महादेवी पर अद्वैतवाद का प्रभाव भी स्पष्ट है यथा—

(क) तुम हो विधु के बिम्ब और मैं,
 मुग्धा रश्मि अजान ।
 जिसे सोँच लाते अस्थिर कर,
 कौतूहल के ढाण ।
 ओस धुले पथ में छिप तेरा,
 जब आता आह्वान ।
 भूल अधूरा खेल तुम्हीं में,
 होती अन्तर्धान ।

—रश्मि

(ख) मैं तुम से हूँ एक-एक है ।
 जैसे रश्मि प्रकाश ॥

—रश्मि

(ग) चित्रित तू मैं हूँ रेखाक्रम ।

ॐ अमीम में सीमा का ।
 अम .

—नीरजा

शंकर के अद्वैतवाद ने भी बुद्ध के समान संसार को दुःखमय स्वीकार किया है। किन्तु अद्वैतवादी संसार को मिथ्या समझते हुए भी उससे इस प्रकार का द्वेष नहीं रखते कि संसार विलीन हो जाय। महादेवी सर्वात्मवादी भी तो है। इस वाद के अनुसार सर्वत्र एक ही आत्मा विद्यमान है। सर्वात्मवाद में अद्वैतवादियों का-सा जगत् का निषेध नहीं है। इसमें ब्रह्माण्ड की सत्ता (व्यक्त पक्ष) को भी ग्रहण किया जाता है। 'नीरजा' की निम्न पंक्तियों में सर्वात्मवादी धारणा स्पष्ट है—

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पंदन ।
 यह रज क्या ? नव मेरा मृदु तन ,
 यह जग क्या ? लघु मेरा वर्पण ।
 प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन ,
 मेरे सब-सब में प्रिय तुम ।
 किससे व्यापार करूँगी मैं ,
 आँसू का मोल न लूँगी मैं ।

अतएव बुद्ध मत की करुणा से इनके अद्वैतवाद तथा सर्वात्मवाद कुछ विरोध नहीं।

वस्तुतः अद्वैत का ब्रह्म ही बुद्धमत में करुणा बन गया है। (केवल समझने के लिए वैसे तो बुद्ध मत का जन्म शंकर-अद्वैतवाद से पहले हुआ था) महादेवी का ब्रह्म भी करुणामय है। इस प्रकार जो दुःख साधन है, वह कभी आराध्य भी बन गया है और वह ब्रह्म को भी दुःख रूप में पाना चाहती है। यथा—

तुम दुःख बन इस पथ से आना ।
 शूलों में नित मृदु पाटल सा ,
 खिलने देना मेरा जीवन ।

क्या हार बनेगा वह जिसने .
सीखा न हृदय को बिधवाना ।

—नीरजा

यहाँ मानों बौद्ध और अद्वैत दर्शन का सम्मिलित प्रभाव है । इस प्रकार उनके संसार के प्रति कारुण्य भावना और 'चिर-सुन्दर' की में उपासना कोई विरोध नहीं । यह एक-दूसरे के पूरक है । इस तथ्य का सजग प्रमाण नीरजा का निम्न गीत है—

तुम्हें बाँध पाती सपने में ।
तो चिर जीवन प्यास बुझा ,
लेती इस छोटे क्षण अपने में ।
पावस घन सी उमड़ बिखरती ,
शरद निशा-सी नीरव घिरती ।
धो लेती जग का विषाद
दुलते लघु आँसू कण अपने में ।
तुम्हे बाँध पाती सपने में ,
मधुर राग बन विश्व सुनाती,
सौरभ बन कण-कण बस जाती ।
भरती मैं संसृति का क्रन्दन
हंस जर्जर जीवन अपने में ,
तुम्हें बाँध पाती सपने में ।

इस प्रकार प्रियतम का क्षण भर के लिये साक्षात्कार क्या है मानो जग के विषाद को धोना है और हँसते-हँसते अपने जर्जर जीवन में संसार के क्रन्दन को भरना है । निम्न पंक्तियों में भी वह अपने प्रियतम से यही वरदान माँगती है—

प्रिय जिसने दुख पाला हो ।
 जिन प्राणों में लिपटी हो पीड़ा सुरभित चंदन सी
 तूफानों की छाया हो जिसको प्रिय आलिंगन सी ।
 जिसकी जीवन की हारे हों जय के अभिनन्दन सी ,
 वर दो मेरा यह आँसू,
 उसके उर की माला हो ।

सारे संसार में प्रियतम-दर्शन के कारण वह वैरागिनी नहीं बन सकती और विस्तृत विश्व के साथ तादात्म्य ही तो विराट् प्रियतम से तादात्म्य है । 'रश्मि' की इन पंक्तियों में यह तथ्य नितान्त स्पष्ट है—

तुम मानस में बस जाओ ,
 छिप घन की अवगुण्ठन से ।
 मैं तुम्हें ढूँढने के मिस ,
 परिचित हो लूँ कण-कण से ।

इन पंक्तियों में दुःख का स्वरूप भी स्पष्ट है ।

विश्व के प्रति करुणा भावना तथा अज्ञात प्रियतम से मिलनोत्कण्ठा का साधन है जलना अथवा त्याग । अनेक कविताओं में इसी साधना की महिमा है । महादेवी को घन और दीपक इसलिए प्रिय है क्योंकि एकं स्वयं घुलकर तथा दूसरा जलकर अपने जीवन की सार्थकता सिद्ध करते हैं । आलीक़ उमर अजर उमर

जीवन-स्वर्ण को जला-जला और तपा-तपाकर ही खरा किया जा सकता है—

हीरक सी वह याद ,
 बनेगा जीवन सोना ।
 जल-जल तप-तप किन्तु ,
 खरा इसको है होना ।

महादेवी की यह मूल भावना कितनी पुरानी है, इस सम्बन्ध में वह 'यामा' की भूमिका (सन् १९३९) में लिखती है—“नीहार में सब से पुरानी रचना सम्भवतः ‘उस पार’ है उसकी सहज भाव से लिखी—

विसर्जन ही है कर्णाधार ,

झहीं पहुँचा देगा उस पार ।

आदि पंक्तियाँ आज भी मेरे हृदय के उतनी ही निकट हैं जितनी तब थीं ।” निःसन्देह ‘उस पार’, के मारुत में भी ‘त्याग का गान’ है और यही जीवन का व्याख्यान भी है—

तरी को ले जाओ मँझधार,

डूब कर हो जाओगे पार ।

—नीहार १६

✓ ‘मधुवेला’ में ‘जीवन-पाटल’ की सार्थकता इसीमें है कि विश्व के प्रति ‘करुणा प्यार’ से अभिभूत हो अपने कोषों को रीता करके झर जाए—अमर हो जाए ।

महादेवी मुक्ति को भी बन्धन के रूप में देखना चाहती है—

आज वर दो मुक्ति आवे

बन्धनों की कामना ले ।

महादेवी भी मोक्ष या ‘निष्क्रिय लय’ नहीं चाहती । अन्य अनेक कविताओं में यही भावना व्यक्त हुई हैः—

(क) जिसमें कसक न सुधि का दशन

प्रिय में भिट जाने के साधन

वे निर्वाण मुक्ति उनके

जीवन के शत बन्धन मेरे हों ।

भरते नित लोचन मेरे हों ।

—नीरजा

(ख) क्यों मुझे प्रिय हों न बन्धन ?

बीन-बन्दी तार की भंकार है आकाश चारी ।

धूल के इस मलिन दीपक से बँधा है तिमिरहारी ।

बाँधती निर्बन्ध को मैं ।

बंदिनी निज बेड़ियाँ गिन ?

—सांध्य गीत

“आज के कवि को अपने लिए अनागरिक होकर भी संसार के लिये गृही, अपने प्रति वीतराग होकर भी सबके प्रति अनुरागी, अपने लिये सन्यासी होकर भी सब के लिए कर्मयोगी होना होगा । क्योंकि आज उसे अपने आपको खोकर पाना है ।”

—आधुनिक कवि की भूमिका

किन्तु यह भावना केवल महादेवी की ही नहीं । यह इस युग की सामान्य भावना है, भारतेन्दु से ही इसका प्रारम्भ हो गया था !

अहो नन-नंद गिरवर धरो आज फेर ।

हिन्दुन के नैन नीर निसविन बरझै॥

भक्त की वाणी में यह राष्ट्रीयता का नूतन स्वर है । तात्पर्य यह कि आध्यात्मिकता, राष्ट्रीयता अथवा परहित की विरोधी नहीं इसी प्रकार चतुर्वेदी जी कहते हैं—

जब निशादन अलख जगाता हूँ ।

तब नई प्रार्थना क्या होगी ॥

यहाँ पर सेवा और ईश्वर सेवा अभिन्न हो गई । निम्न कवियों में भी यही भावना परिलक्षित होती है—

भव भावे मुझको, और उसे मैं भाऊँ ।

कह मुक्ति भला किसलिये तुझे मैं पाऊँ ॥

—गुप्त, यशोधरा

वैराग्य साधने मुक्ति से अमारनय,
 असंख्य बंधन माझे महानन्दमय ।
 लभिवो मुक्तिर स्वादु आई वसुधार,
 मुक्ति कर पाथ खानि मरि बारम्बार ।

—रवीन्द्र

तप रे मधुर-मधुर मन,
विश्व वेदना में तप प्रतिपल ।
तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन,
गन्धहीन तू गन्धमुक्त बन ।
निज अरूप में भर स्वरूप मन ।

—पन्त, गुञ्जन

अविराम प्रेम की बाहों में ।
 है मुक्ति यही जीवन बन्धन ॥

—पन्त, ज्योत्स्ना

जग की सेवा करना ही बस,
 है सब सारों का सार ।
 विश्व प्रेम के बन्धन में ही,
 मुझको मिला मुक्ति का द्वार ।

—गोपालशरणसिंह

संसार से ऊपर उठने की अथवा वैराग्य की भावना जो कुछ कविताओं में अभिव्यक्त हुई है वह केवल इसलिये कि परमात्मा से मिलने अथवा संसार-सेवा के हेतु सामान्य सांसारिक गुणों से ऊपर उठना आवश्यक है । साधना के कठिन-कठोर मार्ग पर चलने के लिये साधक के लिये लौकिक माया-जाल बाधक न बने । इसके लिए संयम और वैराग्य की आवश्यकता स्वाभाविक है । वस्तुतः यह वैराग्य शील का पर्याय है ।

महादेवी की सजल-स्नेहिल सक्रिय आस्तिकता अनेकों कविताओं में दृष्टिगत होती है—

मेरे हँसते अधर नहीं जग—

की आंसू-लड़ियाँ देखो !

मेरी गीले पलक छुओ मत,

मुरझाई कलियाँ देखो !

—नोरजा

ये मुरझाई कलियाँ और कोई नहीं, वही नारियाँ हैं जिनके लिये महादेवी जी ने 'शृङ्खला की कड़ियाँ' में लिखा है "हमारे समाज के पुरुष का विवेक-हीन जीवन का सजीव चित्र देखना है तो विवाह के समय गुलाब-सी खिली हुई स्वस्थ बालिका को पाँच वर्ष बाद देखिये, उस समय इस असमय प्रौढ़ हुई दुर्बल संतानों की रोगिणी पीली माता में कौन-सी विवशता कौन-सी रुला देने वाली करुणा न मिले ।" 'एक बार' कविता में महादेवी भारत की दारुण दुःखद दशा पर कन्दन कर उठी है—

मैं कम्पन हूँ तू करुण राग,

मैं आंसू हूँ तू है बिषाद ।

मैं मदिरा तू उसका खुमार,

मैं छाया तू उसका आधार ।

मेरे भारत मेरे विशाल,

मुझको कह लेने दो उदार ।

फिर एक बार बस एक बार !

×

×

×

×

×

कहता है जिनका व्यथित मौन,

हम-सा निष्फल है आज कौन ।

निर्धन के धन-सी हास-रेख,

जिनकी जगने पाई न देख ।

उन सूखे ओठों के विषाद,
मे दो हे उबार ।

फिर एक बार, बस एक बार ।

यह उल्लेखनीय है कि ये पंक्तियाँ उनकी प्रथम रचना 'नीहार' की हैं ।

इसी उक्त भावना से प्रेरित होकर वह स्वयं आँसुओ का क्षार पीकर विश्व को 'स्नेह का रस' वाँटती है और अपनी करुणा की बरसात से तापित-शापित विश्व को हरा-भरा करना चाहती है—

ताप जर्जर विश्व उर पर,
तूल से घन छा गये भर ।
दुःख से तप हो मधुसतर,
उमड़ता करुणा भरा उर ।

सजनि मे इतनी सजल, जितनी सजल बरसात ।

—सांध्य गीत

निःस्सन्देह वह 'नीर भरी दुख की बदली' हैं, पर किसलिये ? रज-कण को निज जल-कण से नवजीवन-अंकुर देने के लिये, व्यथित विश्व को सुख से स्पंदित करने के लिये । जैसे महादेवी को घन प्रिय है वैसे ही दीपक उससे भी अधिक, क्योंकि वह स्वयं जलकर दूसरो को प्रकाश देता है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल,
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल ।
प्रियतम का पथ आलोकित कर ।

—नीरजा

[न पंक्तियों में नीरजा की मूल भावना व्यक्त हो रही है। इस गीत में दीपक कवि के व्यक्तित्व का प्रतीक है। अपने सुकुमार कोमल शरीर को, अपने जीवन के प्रत्येक अणु को, दीपक की भाँति

महादेवी के दुःखवाद के प्रेरक प्रभाव—

१. महादेवी पर करुणा के संस्कार प्रारम्भ से थे ।
२. महादेवी पर आध्यात्मिक संस्कार भी थे जिस कारण आत्मा का परमात्मा के प्रति विरह मिलता है ।
३. महादेवी पर बुद्ध के दुःखवाद का प्रभाव है, (किन्तु उसके अनात्मवादी, निर्वाण-सिद्धान्त का नहीं) ।
४. संसार की असारता से उत्पन्न स्वाभाविक दुःख ।
५. व्यक्तिगत विषमताजन्य दुःख, जिसका काव्य में उदात्तीकरण (Sublimation) हो जाता है और वेदना, सवेदना अथवा करुणा का रूप धारण कर लेती है ।
६. युगीन परिवेश, जिसमें रुढ़िवादी अथवा परम्परागत के स्थान पर बौद्धिक अध्यात्म मिलता है । इस बौद्धिक अध्यात्म का विश्लेषण इस प्रकार हो सकता है—
 क. इस युग के सर्वप्रसिद्ध अद्वैतवादी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन के व्यावहारिक रूप मानववाद पर बल दिया । रवीन्द्र और गांधी का अध्यात्म भी समाज से बाहर अन्तर्साधनामूलक नहीं, वह लोक मंगलात्मक मानववादी अध्यात्म है ।
 ख. 'मानव में ईश्वर-दर्शन ही सच्चा ईश्वर-दर्शन तथा मानव प्रेम ही ईश्वर प्रेम है । मानव का मानव से अर्थात् विश्व से बन्धन ही मुक्ति है । महादेवी के ही शब्दों में "विश्व जीवन में अपने जीवन को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार जल बिन्दु सागर में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है ।"
 ग. इस भूतल को ही स्वर्ग अथवा मुक्ति-लोक बनाने का भी आग्रह ।
 घ. आज व्यक्ति को अपने प्रति वीतरागी होकर भी संसार ¹लिये गृही होना है ।

पर तुझ है नाश पथ पर चिन्ह अपने छोड़ जाना ।
 बांध लगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन सजीले ।
 पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रंगीले,
 विश्व का क्रन्दन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन ।
 क्या डुबा देगे तुझे यह फूल के दल ओस गोले,
 तू न अपनी छांह को अपने लिए कार बनाना ।

—सांध्य गीत

ऊपर लिखी कविता में जिस 'विश्व के क्रन्दन' की ओर जागरूक करने का प्रयत्न किया गया है वह 'शृंखला की कड़िया' आदि के क्रन्दन से भिन्न नहीं । कवि और गद्यकार महादेवी की आत्मा एक ही है शरीर ही दो है । इन दोनों में इतना ही अन्तर है जितना गद्य और कविता में । गद्य और कविता की प्रकृति को जानकर ही महादेवी ने लिखा है—अपने करुणा-बहुल दर्शन के बौद्धिक निरूपण के लिये गद्य को और भावात्मक निरूपण के लिये पद्य को चुना है ।

अन्त में हम इतना ही कहेंगे कि महादेवी कोमल भी है, कठोर भी, उनमें आग भी है पानी भी, और वे दीन भी है, अभिमानिनी भी—
 ऐसा विरोधाभास उनके व्यक्तित्व में परिलक्षित होता है—

नभ में गवित झुकता न शीश ।

पर अंक लिए है दीन क्षार,

मन गल जाता नत विश्व देख,

तन सह लेता है कुलश भार ।

कितने मृदु कितने कठिन प्राण ।

—सांध्य गीत

महादेवी की भाव-धारा तथा उस के प्रेरक तत्त्वों का संक्षेप में विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है ।

महादेवी के दुःखवाद के प्रेरक प्रभाव—

१. महादेवी पर करुणा के संस्कार प्रारम्भ से थे ।
२. महादेवी पर आध्यात्मिक संस्कार भी थे जिस कारण आत्मा का परमात्मा के प्रति विरह मिलता है ।
३. महादेवी पर बुद्ध के दुःखवाद का प्रभाव है, (किन्तु उसके अनात्मवादी, निर्वाण-सिद्धान्त का नहीं) ।
४. संसार की असारता से उत्पन्न स्वाभाविक दुःख ।
५. व्यक्तिगत विषमताजन्य दुःख, जिसका काव्य में उदात्तीकरण (Sublimation) हो जाता है और वेदना, सवेदना अथवा करुणा का रूप धारण कर लेती है ।
६. युगीन परिवेश, जिसमें रुढ़िवादी अथवा परम्परागत के स्थान पर बौद्धिक अध्यात्म मिलता है । इस बौद्धिक अध्यात्म का विश्लेषण इस प्रकार हो सकता है—
 क. इस युग के सर्वप्रसिद्ध अद्वैतवादी विवेकानन्द ने अद्वैत दर्शन के व्यावहारिक रूप मानववाद पर बल दिया । रवीन्द्र और गांधी का अध्यात्म भी समाज से बाहर अन्तर्साधनामूलक नहीं, वह लोक मंगलात्मक मानववादी अध्यात्म है ।
 ख. 'मानव में ईश्वर-दर्शन ही सच्चा ईश्वर-दर्शन तथा मानव प्रेम ही ईश्वर प्रेम है । मानव का मानव से अर्थात् विश्व से बन्धन ही मुक्ति है । महादेवी के ही शब्दों में "विश्व जीवन में अपने जीवन को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार जल बिन्दु सागर में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है ।"
 ग. इस भूतल को ही स्वर्ग अथवा मुक्ति-लोक बनाने का भी आग्रह ।
 घ. आज व्यक्ति को अपने प्रति वीतरागी होकर भी संसार ¹लिये गृही होना है ।

च. लोक-संग्रह और आत्म-संग्रह दो भिन्न मार्ग न होकर एक ही सांस्कृतिक मार्ग के युग्म पार्श्व हैं ।

महादेवी की मूल भावनाएँ तीन हैं—

१. आत्मा की परमात्मा के प्रति विरह भावना ।
२. विश्व के प्रति संवेदना (करुणा) ।
३. त्यागमयी साधना—घनवत् घुलने अथवा दीपकवत् जलने की भावना ।

वस्तुतः पहली दोनो भावनाएँ एक ही हैं क्योंकि महादेवी विश्व रूप ब्रह्म के साथ एकरूपता चाहती है—विश्व के साथ एकरूपता तथा ब्रह्म को पाने में कोई भेद नहीं समझती ।

क्योंकि—

विश्व में वह कौन सीमा हीन है

हो न जिसका खोज सीमा में मिला ।

तीसरी भावना उक्त साध्य की साधन है ।

अन्य सन्तव्य तथा निष्कर्ष—

१. महादेवी का दुःखवाद वस्तुतः करुणा-तरंगित आनन्दा-नुभूति है ।

२. महादेवी के गद्य-पद्य में मूल अन्तर नहीं । भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम गीतिकाव्य होने के कारण जीवन-जगत् का वस्तुगत चित्रण नहीं हुआ और न ही तथ्यों का व्योरा उपस्थित करने का प्रयत्न किया गया है, जैसे गद्य में हुआ है, किन्तु गद्य और पद्य दोनों में सामान्य प्रेरणा करुणा (संवेदना) है । काव्य का औचित्य गद्य के औचित्य से भिन्न होता है, उन्होंने सदैव इसका ध्यान रखा है ।

३. महादेवी में दुःखवाद, सर्वात्मवाद तथा अद्वैतवाद का अद्भुत समन्वय हुआ है ।

४. महादेवी आध्यात्मिक है किन्तु उन्हें कबीर और मीरा की परम्परा में लाना ठीक नहीं, क्योंकि प्रत्येक युग का अपना अध्यात्म है। जहाँ तक काम-वासनाओं का प्रश्न है, महादेवी और मीरा में कोई अन्तर नहीं क्योंकि मूल में सभी साधक मानव ही हैं, और मानव ही थे। प्रत्येक युग की साधना का स्वरूप भिन्न है, अतएव महादेवी में मीरा अथवा कबीर का आत्म-समर्पण खोजना व्यर्थ है।

५. महादेवी की प्रथम कविता पुस्तक 'नीहार' की अनेक कविताओं में निराशा अवश्य मिलती है किन्तु एक तो यह निराशा अस्थायी रूप में आती है जो मानवीय शक्तियों की सीमा का स्वाभाविक परिणाम है। दूसरे निराशा भी उस शूल का कार्य करती है जो फूल को दुलारता और विकसित होने की शक्ति प्रदान करता है। यही कारण है कि यह निराशा भी प्रायः ऐसे उदात्त-दीप्त रूप में अभिव्यक्त होती है जो उस निर्मम के गर्व का भी खर्व कर सकती है—

चिंता क्या है निर्मम ,
बुझ जाये दीपक मेरा ।
हो जायेगा तेरा ही ,
पीड़ा का राज्य अन्धेरा ।

—नीहार

उनसे कैसे छोटा है ,
मेरा यह भिक्षुक जीवन ।
उनमें अनन्त करुणा है,
इसमें असीम सुनापन ।

—नीहार

निस्सन्देह यह सूक्ष्म की होड़ भी अद्भुत है जो प्रियतम की करुणा के अभिमान को भी तोड़ सकती है। यही गौरवमय दीप्त चित्र

‘नीहार’ की ८, १५, १७, २४ नं० की कविता में देखे जा सकते हैं ।

६. मेरे विचार में किसी रचना के स्वरूप की निरख-परख में रचनाकार का उल्लेख उतना ही करना चाहिये जितना आवश्यक हो, कृति से अधिक कर्त्ता का निर्देश हमारे निष्कर्षों को प्रभाववर्दी तथा आलोचक की तटस्थता को भंग कर देता है ।

महादेवी की विचार-धारा

भावधारा और विचारधारा में विभाजक रेखा खींचना कठिन है । गीति काव्य जिसमें साधारण कविता से भी भावाधिक्य होता है, यह और भी असम्भव हो जाता है । इसके अतिरिक्त छायावादी कवि आँग्ल-आलोचकों की भाँति विषयगत तथा विषयीगत भेद प्रायः नहीं मानते और बौद्धिकता और हार्दिकता अथवा भाव-प्रवणता को एक मानते हैं । अतएव महादेवी के किञ्चित् विचारों का परिचय 'भावधारा' में मिल ही चुका है । फिर भी आत्मा-परमात्मा जीवन-जगत् के विविध पक्षों के प्रति उनका दृष्टिकोण समझना आवश्यक हो जाता है ।

महादेवी का काव्य आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों की विवेचना करता है । महादेवी निराकार की आराधिका हैं । उन्होंने जिस निराकार के प्रति रागात्मक सम्बन्धों को व्यक्त किया है, उसकी पूजा-अर्चना की किसी बाह्य मन्दिर में क्या आवश्यकता है जब जीवन ही मन्दिर हो—

क्या पूजा क्या अर्चन रे !

उस असौम का सूना मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे !

—नीरजा

आत्मा परमात्मा अभिन्न थे कि परमात्मा को सूनोपन का भान हुआ 'एकोऽहंबहुस्याम्'—एक से बहुत होने की इच्छा जागी और मकड़ी बन उसने अपने अन्तर से बाह्य का निर्माण कर दिया । क्रमशः दोनों उदाहरण लीजिये—

१. हुआ यों सुनेपन का भान
प्रथम किसके उर में अम्लान
और किस शिल्पी ने अनजान ✓
विश्व प्रतिमा कर दी निर्माण ✓
२. स्वर्ण लूता सी कब सुकुमार
हुई उसमें इच्छा साकार ?
उगल जिसने तिनरंगे तार
बुन लिया अपना ही संसार ।

इस मानव जगत् का पाँच भौतिक प्रसार उसीने तो किया है—

नील नभ का असीम विस्तार
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल के निर्भर बीच-विलास
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास
धरा से ले परमाणु उधार
किया किसने मानव साकार ।

इन पंक्तियों में पाँच तत्त्वो-आकाश, अग्नि, पानी, वायु तथा धरा-
का क्रमशः उल्लेख हुआ है ।

किस प्रकार इस जगत् का अग-जग उसीका है तथा उस परम
सत्ता के लीलाभाव के सन्तोष के लिये ही इसका सृजन-सहारा होता
रहता है, यह सब नीरजा की एक ही कविता में उस परम शक्ति के
नृत्य-रूपक द्वारा सुन्दर-रूप में व्यक्त हुआ है :—

लय गीत मंदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर-गर्जन रुन-भुन मंजीर,
उड़ता भंभा में अलक-जाल,

मेघों में मुखरित किकिणि स्वर,
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर ।

× × ×

युग है पलकों को उन्मीलन
स्पन्दन में अगणित लय जीवन;
तेरी श्वाँसों का नाच-नाच
उठता बेमुध जग सराचर ।

× × ×

जड़ कण-कण के प्याले भलमल,
छलकी जीवन मदिरा छल-छल,
पीती थक भुक-भुक भूम-भूम,
तू घूँट-घूँट फेनिल शीकर ।

× × ×

तेरे हित जलते बीष-प्राण
खिलते प्रसून हँसते विहान
श्यामांगिनि ! तेरे कौतुक को
बनता जग मिटमिट सुन्दर तर
प्रिय-प्रेयसी ! तेरा लास अमर !

अथवा

सिन्धु को क्या परिचय दें देव
बिगड़ते बनते वीचि-विलास
क्षुद्र हैं मेरे बुद-बुद-प्राण
तुम्हीं मे सृष्टि तुम्हीं में नाश ।

वस्तुतः सर्वत्र उस आधार का ही प्रतिबिम्ब है, फिर आत्मा
परमात्मा और प्रकृति में विभिन्नता तथा सौदाबाजी कैसी ?

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पर्शन;
 यह रज क्या ? नव मेरा मृदुतन,
 यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण;
 प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन;
 मेरे सब सब में प्रिय तुम
 किससे व्यापार कहूँगी मैं ?
 आँसू का मोल न लूँगी मैं ?

—नीरजा

इस प्रकार महादेवी सर्वात्मवादी-अद्वैतवादी है । वैसे तो जीव ब्रह्म
 अभिन्न हैं, अद्वैत हैं—

चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम;
 मधुर राग तू मैं स्वर संगम
 तू असीम मैं सीमा का भ्रम;
 काया छाया मैं रहस्य मय ।
 प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?

—नीरजा

किन्तु

अपने दो आकार बनाने
 दोनों का अभिसार बिलाने
 भूलों का संसार बसाने

—नीरजा

के लिये उस निरूपम किन्तु निर्मम प्रियतम ने मायारूपी झिलमिल
 दर्पण दे डाला है । जब तक माया का यह दर्पण बना है, जीव में
 अपनेपन अथवा अहंकार जन्य द्वैत भाव है, प्रेयसि-प्रियतम का अभिनय
 तथा रीझने-रूठने का क्रम चलतारहेगा । किन्तु इसके टूटने पर घूँघट
 पट के खुलने पर कौन प्रेयसी और कौन प्रियतम ? कौन साधक और

कौन साध्य ?

आज कहीं मेरा अपनापन,
तेरे छिपने का अवगुंठन;
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझमें अपना सुख देखो
मैं तुम में अपना सुख प्रियतम ।
टूट गया वह दर्पण निर्मम !

—नीरजा

तात्पर्य यह कि माया के दर्पण के टूट जाने पर आत्मा-परमात्मा मिलकर एक हो जाते हैं ।

जीव का संसार में जन्म ही 'प्रियतम' के वियोग का परिचायक है—आत्मा का परमात्मा से अलग होना ही जोव का जन्म है । 'रश्मि' की इन पंक्तियों में यही तथ्य व्यक्त हुआ है—

जन्म ही जिसको हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास
चुरा लाया जो विश्व समीर ✓
वही पीड़ा की पहली साँस

नीरजा की इन पंक्तियों का भी यही रहस्य है—

विरह का जल जात जीवन, विरह का जल जात ।

वह प्रियतम भी कितना निष्ठुर है, जिसने स्वयं अपने हृदय में अभाव की भावना जागृत होने से, धूलि की प्रतिमा में वेदना के प्राणों का संचार किया और अब जानकर अनजान बनकर इन्हीं जीवों से परिचय पूछने लगा । कैसी निर्मम विस्मृति है—

काल-सीमा-हीन सूने में रहस्यनिधान,
मूर्तिमान कर वेदना तुमने गढ़े जो प्राण,

धूल के कण में उन्हें बन्दी बना अभिराम
पूछते हा अब अपरिचित से उन्हींका नाम ।

अथवा

किसी नक्षत्र लोक से टूट
विश्व के शतदल पर अज्ञात
दुलक जो पड़ी ओस की बूँद
तरल मोती सा ले मृदुगात
कहो क्या परिचय दे नादान ।

किसी निर्मम कर का आघात,
छेड़त। जब वीणा के तार,
अनिल के चल पंखों के साथ,
दूर जो उड़ जाती भंकार ।
जन्म ही उसे विरह की रात
सुनावे क्या वह मिलन-प्रभात

— रश्मि

विश्व के कण-कण की यही करुण-निष्ठुर कहानी है—

क्या नई मेरी कहानी !
विश्व का कण-करण सुनाता
प्रिय वही गाथा पुरानी !
सजल बादल का हृदय-कण,
चू पड़ा जब पिघल भू पर;
पी गया उसको अपरिचित
तृषित बरका पंक का उर;
मिट गई उससे तड़ित् सी,
हाय वारिद की निशानी !

करुण यह मेरी कहानी !
जन्म से यह मूढकंज—उर में
नित्य पाकर प्यार लालन;
अनिल के चल पंख पर फिर
उड़ गया जब गंध उन्मन;
बन गया तब सर अग्रिचित
हो गई कैलिका बिरानी !
निठुर यह मेरी कहानी !

—नीरजा

इसीलिए जीव परमात्मा के मिलने के लिये आकुल-व्याकुल है और
युग-युग से—जब से वह परमात्मा से अलग हुआ है तब से—नीर बहा
रहा है :—

प्रिय इन नयनों का अश्रु नीर !

× × ×

युग युग से बहता है अधोर !

—नीरजा

लौकिक विषाद न होने से यह विरह भी मधुर है, 'मधुर पीर' है ।
इसलिये जीव के लिये 'चरम सत्य' उस प्रियतम की 'सुधि का दंशन'
है । क्योंकि इसके द्वारा प्रियतम की प्राप्ति सम्भव है । जिससे पृथक्
होने से जीव विरह-व्याकुल है उसीको प्राप्त करने पर यह विरह
शान्त भी हो सकती है—

जो तुम्हारा हो सके लीलाकमल यह आज;
खिल उठे निरुपम तुम्हारी देख स्मित का प्रात !
जीवन विरह का जल जात !

—नीरजा

जीव के स्वरूप के सम्बन्ध में महादेवी रश्मि की भूमिका में इस प्रकार लिखती है—‘मनुष्य में जड़ और चेतन दोनों एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्यकार पार्थिव और सीमित संसार का भाग है और अन्तस्तल अपार्थिव असीम का—एक उसको विश्व में बाँध रखता है तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता ही रहना चाहता है।’

जड़-चेतन के बिना विकास शून्य है और चेतन जड़ के बिना आकार शून्य। इन दोनों की क्रिया और प्रतिक्रिया ही जीवन है—इसी तथ्य को निम्न पंक्तियों में देखिये—

चेतना से जड़ का बन्धन
यही संस्कृति की हृत्कम्पन

—रश्मि

अथवा

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में;
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में;
प्रलय में मेरा पता पद चिन्ह जीवन में;
शाप हूँ जो बन गया वरदान बन्धन में;
कूल भी हूँ कूल हीन प्रवाहिनी भी हूँ !

—नीरजा

अथवा

प्रिय में हूँ एक पहेली भी ।
जितना मधु जितना मधुर हास
जितना मद तेरी चितवन में,
जितना क्रंदन जितना विषाद,
जितना विष जग के स्पन्दन में

पी पी में चिर दुःख व्यास बनी,
 सुख सरिता की रंग रेली भी ।
 मेरे प्रति रोमों से अविरल
 भरते हैं निर्भर और आग
 करती विरक्ति आसक्ति प्यार
 मेरे श्वासों में जाग जाग
 प्रिय में सीमा की गोद पली
 परहूँ असीम से ेली भी !

परमात्मा के साथ मानव का भी अपना महत्व है । आखिर इस
 की सुधि द्वारा ही तो परमात्मा का महत्व है । 'नीरजा' से कुछ उदा-
 हरण लीजिये :—

तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना !
 कम्पित कम्पित,
 पुलकित पुलकित,
 परछाईं मेरी से चित्रित,
 रहने दो रज का मञ्जु मुकुर,
 इस बिना श्रृंगार—सबन सूना !
 मेरी सुध बिन क्षण क्षण सूना !

—नीरजा

यहाँ 'रज' के 'मञ्जु मुकुर' से तात्पर्य मानव शरीर से है । यह
 तथ्य इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है :—

चिन्ता क्या है, हे निर्मम
 बुझ जाये दीपक मेरा ।
 हो जायेगा तेरा ही
 पीड़ा का राज्य अन्धेरा ।

—नीहार

मे बह सौरभ हूँ जो उड़कर
कलिका में लौट नहीं पाता,
पर कलिका के नाते ही प्रिय जिसको जग ने सौरभ जाना ।

—नीरजा

महादेवी पर बौद्धमत का सीमित मात्रा में प्रभाव है । बौद्धों के
समान उन्होंने जगत को दुःखमय स्वीकार किया है—

१—जीवन जलकण से निर्मित सा

× × ×

सजल मेघ सा धूमिल है जग

२—बाहर घन सम, भीतर दुःख तम

—नीरजा

‘करुणा’ को भी महत्त्व दिया है । वे गौतम बुद्ध की करुणा द्वारा
अज्ञानी जग को इस प्रकार जगाती हैं :—

जाग बेसुध जाग !

अश्रुकण से उर सजाया त्याग हीरक हार,

भीख बुख की माँगने फिर जो गया प्रति द्वार ।

फूल जिसने शूल छू चन्दन किया संताप,

सुन जगाती है उसी सिद्धार्थ की पदचाप ।

करुणा के बुलारे जाग ।

इसलिये इन्होंने ब्रह्म को भी करुणा के रूप में पाने की आकांक्षा
प्रकट की है—

तुम को पीड़ा में डूँदा तुममें डूँदूंगी पीड़ा !

—निहार

तुम मानस में बस जाओ,

छिप बुख की अवगुण्ठन से ।

—रश्मि

मे तुम्हें खोजने के मिस,
परिचित हो लूँ करण करण से ।

—रश्मि

तुम दुख बन इस पथ से आना,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिधवाना !

—नीरजा

मे करुणा की वाहक अभिनव ।

—दीर्पाश्रवा

यही कारण है कि महादेवी की काव्य-भूमि कल्याणी करुणा से सिंचित है । इसी करुणा से वह विश्व से एक रूप होना चाहती है आर जगत के विषाद को करुणः-धारा से धोना चाहती है :—

तुम्हें बांध पाती सपने में ।

तो चिर जीवन प्यास बुझा लेती इस छोटे क्षण अपने में ।

पावस घन सी उमड़ बिखरती,

शरद निशा-रसी नीरव घिरती ।

घो लेती जग का विषाद इस ढुलते लघु आँसू करण अपने में !

—नीरजा

इस प्रकार ब्रह्म से मिलना और जगत के साथ एकरूप होना एक ही बात है । इसलिये महादेवी ने परमात्मा से प्रार्थना की है कि वह कही उनकी जीवन-वीणा को सुख से झंकृत न करदे क्योंकि ऐसी स्थिति में संसृति के साथ एकरूपता संभव न हो सकेगी :—

कुहरा जैसे घन आतप में,

यह संसृति मुझ में लय होगी ।

अपने मधु रागों से,

यह लघुवीणा न जग जाना ।

तुम दुख बन इस पथ से आना । —नीरजा ।

इस करुणा ने मानववादी भावनाओं को प्रश्रय दिया है—

जिनसे कहती बीती बहार,
मतवाले जीवन है असार ।
जिन भंकारों के मधुर गान,
ले गया छीन कोई अजान ।
उन तारों पर बन कर विहाग,
मँडरा लेने दो हे उदार !
फिर एक बार, बस एक बार ।

—नीहार

मेरे लघु आँसुओं—क्षुद्र करुणा— का भला उस त्यागी-मानववादी
वारिद (बादल) के आगे क्या अस्तित्व जो—

लक्ष्य हीन सा जीवन पाते,
घुल औरों की प्यास बुझाते ।
अणुमय हो जगमय हो जाते,

—रश्मि.

‘अणुमय हो जगमय हो जाते’ पवित्र अत्यन्त सार्थक है । पर-सेवा
की साधना में मनुष्य का चरम लक्ष्य यही है कि स्वयं त्याग कर
आत्म प्रसार करना, इतना कि अहं का दृढ़ मे पर्यवसान हो जाय
इसलिए महादेवी निम्न व्यक्ति का ही स्वागत कर सकती है—

जो उजियाला देता हो ।
जल जल अपनी ज्वाला में;
अपना सुख बाँट दिया हो ।
जिसने इस मधुशाला में,
हंस हलाहल ढाला हो ।
अपनी मधुसी हाला में,

मेरी साथों से निर्मित ।

उन अश्वरो का प्याला हो ।

—नीरजा

✓ महादेवी ने बौद्धों की करुणा को तो अवश्य महत्व दिया है, किन्तु वे उनके समान अनात्मवादी नहीं और वे जन्मान्तरवाद में विश्वास रखती हैं । उनकी ये कामनाएँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं—

वर देते हो तो कर दो ना ,
चिर आँख-मिचौनी यह अपनी ।
जीवन में खोज तुम्हारी है ,
मिटना ही तुमको छू पाना ।

—नीरजा

उन्हे नित्य घनवत घिरना-धुलना ही अच्छा लगता है, इसलिए यही वरदान माँगा है—

नित धिरूँ भर भर मिटूँ प्रिय ,
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय ।

इन्हे निर्वाण अथवा मुक्ति की अपेक्षा नहीं अपितु जीवन के शत बन्धनों से अनुरक्ति है—

तप सा नीरव नभ से विस्तृत ,
हास-रुदन से दूर अपरिचित ।
वह सूनापन हो उनका ,
यह सुख-दुःखमय स्पंदन मेरे हों ।
भरते नित लोचन मेरे हों ।
जिसमें कसक न सुधि का दर्शन ।
प्रिय में मिट जाने के साधन ,
वे निर्वाण-मुक्ति उनके

जीवन के श बन्धन मेरे हों ,
भरते नित्र लोचन मेरे हों ।

—नीरजा

यह न भंभा से बुझेगा ,
बन मिटेगा मिट ॥ १

+ +

भय यही है हो न जावे, प्रिय तुम्हारा पंथ काला ।

—सांध्य गीत

अंतिम पंक्ति में भारतीय नारी का कैसा उज्ज्वल आदर्श है !
'सांध्य गीत' की एक पूरी कविता ही अत्यन्त सुन्दर रीति से
मुक्ति की उपेक्षा पर लिखी गई है, कुछ अंश लीजिये—

देव अब वरदान कैसा ।

बेध दो मेरा हृदय माला बनूँ, प्रतिकूल क्या है ।

मे तुम्हें पहचान लूँ इस कूल तो उस कूल क्या है ॥

छीन सब मीठे क्षणों को ,

इन अथक अन्वेषणों को ।

आज लघुता ले मुझे ,

दोगे निठुर प्रतिदान कैसा ।

जन्म से यह साथ मैंने इन्हीं का प्यार जाना ।

स्वजन ही समझा दृगों के अश्रु को पानी न माना ॥

इन्द्रधनु से नित सजी-सी ,

विद्यु हीरक से जड़ी-सी ।

मे भरी बदली रहूँ ,

चिर मुक्ति का वरदान कैसा ।

महादेवी की यह भावना प्रारम्भिक रचना नीहार से ही है—

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ,
रहने दो हे देव अरे ,
यह मेरा मिटने का अधिकार ।

—नीहार

इस 'मिटने के अधिकार' का तात्पर्य मृत्यु से है । महादेवी को मृत्यु से कोई भय नहीं । बल्कि वह तो यहाँ तक कहती है—

अमरता है जीवन का ह्रास ,
मृत्यु जीवन का चरम विकास ।

नीहार की एक कविता केवल मृत्यु पर है, जहाँ वह अतिथि के रूप में सम्मानित है—

ज्यों श्रांत पथिक पर रजनी छाया-सी आ मुस्काती ।
भारी झलकों में धीरे निद्रा का मधु ढूलकाती ॥

त्यों करना बेसुध जीवन ।
प्राणों के अन्तिम पाहुन ॥

इस प्रकार मृत्यु इस श्रात-बलांत जीवन के लिए एक विश्राम-स्थली है, और विश्राम के उपरान्त विकास का क्रम भी—

सृष्टि का है यह अमिट विधान ,
एक मिटने में सौ वरदान ।
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास ,
विफलता में है पूर्ति विकास ।

—रश्मि

गल जाता लघु बीज असंख्यक ,
नश्वर बीज बनाने को ।

तजता पल्लव वृक्ष पतन के ,
हेतु नए विकसाने को ।
मिटता लघु पल, प्रिय देखो ,
कितने युग कल्प मिटाने को ।

—नीरजा

महादेवी मृत्यु के इसी रहस्य को जान-पहचान कर, तथा निर्भय
होकर विश्वास से कह सकती है—

प्रिय चिरन्तन है सजनि ,
क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी में !
श्वास में मुझको छिपाकर वह असीम विशाल चिरधन ।
शून्य में जब छा गया उसकी सजीली साध सा बन ॥
छिप कहाँ उसमें सकी ।
बुझ-बुझ जली चल दामिनी में ॥

—सांध्य गीत

उपर्युक्त उदाहरणों में मृत्यु विश्राम-स्थली, विकास का क्रम तथा
'क्षण-क्षण नवीनता' के रूप में वर्णित हुई है । इसके अतिरिक्त मृत्यु
के स्वीकृष्ट स्वरूप आत्मोत्सर्ग को भी महत्व प्रदान किया है । मिटने
वालों की बेसुध रंगरलिया ही विश्व को सुरभित-आलोकित कर
सकती है—

हंस बेता नव इन्द्र धनुष की—
स्मित में घन मिटता-मिटता ।
रंग जाता है विश्व राग से,
निष्फल दिन ढलता ढलता ॥
कर जाता संसार सुरभिमय,
एक सुमन भरता भरता ।

भर जाता आलोक तिमिर में,
लघु दीपक बुझता-बुझता ॥

—नीरजा

इसीलिए महादेवी को घन और दीपक के उपमान अति प्रिय हैं ।
एक जलकर और दूसरा घुलकर आत्मोत्सर्ग करके जगत् को हरीतिमा
और प्रकाश प्रदान करते हैं । साधना ही जीवन और जीवन ही
साधना है । साधना की आराधना से वह स्वयं आराध्यमय हो उठी है ।

मैं सजग चिर साधना ले,
सजग प्रहरी से निरन्तर ।
जागते अलि रोम निर्भर,
निमिष के बुद बुद मिटाकर ।
एक रस है समय सागर,

हो गई आराध्यमय मैं विरह की आराधना ले ।

अतएव चिर अतृप्ति मे उन्हें तृप्ति मिलना स्वाभाविक है—

तुम अमर प्रतीक्षा हो में,
पग विरह पथिक का धीमा ।
आते-जाते मिट जाऊँ,
पाऊँ न पथ की सीमा ॥

—रश्मि

यह चिर अतृप्ति की भावना निम्न पंक्तियों में भी स्पष्ट है ।

पाने मे तुमको छोऊँ,
खोने में समझूँ पाना ।
यह चिर अतृप्त हो जीवन,
चिर तृष्णा हो मिट जाना ।

—रश्मि

मिलन का मत नाम ले, मैं विरहमें चिर रहूँ ।

—सांध्य गीत

जलना ही रहस्य है बुझना है नैसर्गिक बात ।

—रश्मि

जलना ही प्रकाश, उसमें सुख ।

बुझना ही तम है, तम है दुख ॥

—नीरजा

क्यों जग कहता मतवाली ?

क्यों न शलभ पर लुट-लुट जाऊँ ।

झुलसे पंखों को चुन लाऊँ ,

उन पर दीप शिखा अंकवाऊँ ।

अलि ! मैंने जलने ही में जब ,

जीवन की निधिपाली ।

—नीरजा

रश्मि की एक कविता केवल इसी अतृप्ति के दृष्टिकोण को व्यक्त करने के लिए ही लिखी गई है । कवयित्री समझती है—

चिर तृप्ति कल्पनाओं का,

कर जाती निष्फल जीवन,

बुझते ही प्यास हमारी ।

पल में विरक्ति जाती बन ॥

पूर्णाता यही भरने की,

ढुल, कर देना सुने घन,

सुख की चिर पूर्ति यही है ।

उस लघु से फिर आवे मन ॥

चिर ध्येय यही जलने का,

ठंडी विभूति बन जाना,

है पीड़ा की सीमा यह ,
दुख का चिर सुख हो जाना ॥

अन्त मे साधना-निष्ठा की यह अमर पंक्तियाँ आस्वादनीय है
जो महादेवी के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है—

युग गुगान्तर की पथिक में छू कभी लूँ छाँह तेरी ।
ले फिरुं सुधि दीप-सी, फिर राह में अपनी अधेरी ॥

लौटता लघु पल न देखा ,
नित नये क्षण रूप रेखा ।
चिर बटोही में मूँके ,
चिर पंगुता का दान कैसा ।
देव अब वरदान कैसा !

इस साधना-मार्ग पर चलना शूलों के पथ पर चलना है ।
भला—

क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिधवाना ।
इसलिए महादेवी ने साधना-मार्ग की कठिनाइयों का वर्णन कर
साधक को सजग कर दिया है । 'नीहार' की निम्न कविता अत्यन्त
सरल-सरस है—

कामना की पलकों में भूल,
नवल फूलों के छूकर अंग ।
लिए मतवाला सौरभ साथ,
लज्जिली ललितकार्ये भर अंक ॥
यहां मत आओ मत समीर,
सोरहा है मेरा एकान्त ।
लालसा की मदिरा में चूर,
क्षणिक भंगुर यौवन पर भूल ।

साथ लेकर भौरों की भीर,
 खिलासी हे उपवन के फूल ।
 बनाओ इसे न लीलाभूमि,
 तपोवन है मेरा एकान्त ॥

अपने पथ से विचलित करने के लिये जग क्या-क्या प्रलोभन देता
 तथा भय दिखाता है, इसका वर्णन नीरजा की ४४ कविता में दर्शनीय
 है । 'कुछ' पक्तियाँ लीजिये—

कहता जग दुख को प्यार न कर ।
 अनबीधे मोती वह दृग के,
 बंध पाये बन्धन में किसके ?
 पल पल बनते पल-पल मिटते,
 तू निष्फल गुथ-गुथ हार न कर ॥
 + + +

सुख मधु में क्या दुख का मिश्रण ।
 दुख विष में क्या सुख-मिश्रीकण ॥
 जाना कलियों के बेश तुझे ,
 तू शूलों से शृंगार न कर ।
 कहता जग दुख को प्यार कर ॥

महादेवी ने साधना-पथ की कठिनाइयों की ओर सजग-सचेत ही
 नहीं किया वरन उत्साह-अनुप्रेरणा भी दी है—

आई दुख की रात मोतियों की देने जयमाल,
 सुख की मन्द वाता॥ खोलतीं पलकें बे-बे ताल;
 डर मत रे सुकुमार !
 तुझे दुलराने आये शूल ।
 अरे तू जीवन-पाटल फूल ॥

—नीरजा

प्रिय-पथ के यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं ।

होरक सी वह याद ,

बनेगा जीवन सोना ।

जल-जल तप-तप कितु,

खरा इसको है होना ।

चल ज्वाला के देश जहाँ अंगारे ही हैं ।

—सांध्य गीत

महादेवी ने सच्चे साधक के लक्षण इस प्रकार बताए हैं—

प्रिय जिसने दुःख पाला हो ।

जिन प्राणों से लिपटी हो ,

पीड़ा सुरभित चन्दन सी ।

तूफानों की छाया हो ,

जिसकी प्रिय आलिंगन सी ।

वरदो यह मेरा आंसू ,

उसके उर की माला हो ।

जो उजियाला देता हो ,

जल-जल अपनी ज्वाला में ।

अपना सुख बाँट दिया हो ,

जिसने इस मधुशाला में ।

हँस हलाहल ढाला हो ,

अपनी मधु-सी हाला में ।

मरी साधों से निर्मित ,

उन अधरों का प्याला हो ।

—नीरजा

साध्य गीत में यही लक्षण हिमालय पर लिखी कविता 'हे चिर महान' में बताए हैं—

टूटी है कब तेरी समाधि ,
 भंभा लौटे शत हार हार ।
 बह चला दृगो से किन्तु नीर ,
 सुन कर जलते कण की पुकार ।
 सुख से विरक्त दुख में समान ॥

नीरजा की आठवी कविता में महादेवी ने साधक के लिए यह आवश्यक माना है कि वह दूसरों की साधना से नहीं वरन अपने भीतर की साधना-ज्वाला से ही आलोक-प्रसार कर सकता है । इस संबंध में शलभ का दृष्टान्त दिया है—

शलभ अन्य की ज्वाला से मिल ,
 झुलस कहाँ हो पाया उज्ज्वल ।
 कब कर पाया वह लघु तन से ।
 नव आलोक-प्रसार ,
 ओ पागल संसार ।
 अपना जीवन-दीप मृदुलतर ,
 बर्ती कर निज स्नेह सिक्त उर ।
 फिर जो जल पाये हँस-हँस कर ॥
 हो आभा साकार ,
 ओ पागल संसार ।

इस जीवन-वाटिका में कभी पतझर का प्रसार होता है तो कभी बसन्त का विस्तार । 'उर की डाली' में कभी सुख के तरुण फूल हैं तो कभी दुख के करुण-शूल । जब व्यक्ति का जीवन इस उषा-सांझ के जग में व्यतीत होता है तो सुख-दुःख को सहज रूप में क्यों न लिया जाय । जब मानव चेतना का प्रवाह 'दुःख से अविल और सुख से पंकिल' (नीरजा १) हो तो दोनों का स्वागत श्रेयस्कर है । अतएव सुख-दुःख में

से किसी एक का अभाव होने पर विश्व का आँगन सूना दिखाई देने लगता है—

इन मिलन विरह शिशुओं के बिन ,
जग का विस्तृत आँगन सूना ।

—नीरजा

इस दुःख-सुख की भावना का नीहार से दीपशिखा तक निरन्तर विकास-परिष्कार हुआ है । नीहार में वेदना ही अधिक है । 'रश्मि' ही भूमिका में महादेवी लिखती है—“मेरा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि मैं जीवन भर आँसू की माला ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा ।

परिवर्तन का ही दूसरा नाम जीवन है, जिस प्रकार जीवन के उषा काल में मेरे सुखों का उपहास-सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है, इसी प्रकार सान्ध्य काल में जब लम्बी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर कातर क्रन्दन कर उठेगा तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्करा पड़ेगा । ऐसा ही मेरी स्वप्न है ।”

यही तथ्य 'रश्मि' की इन पंक्तियों में व्यक्त हुआ है—

सोते जो असंख्य बुदबुद से,
बेसुध सुख मेरे सुकुमार ।
फूट पड़ गे दुख सागर की,
सिहरी धोमी स्पन्दन में ॥
मूक हुआ जो शिशिर निशा में,
मेरे जीवन का संगीत ।
मधु-प्रभात में भर देगा वह,
अन्तहीन लय कण-कण में ॥

यही नहीं 'रश्मि' में ही महादेवी ने सुख-दुःख की अनिवार्यता को हृदयंगम कर लिया है—

क्यों इस तारों को उलझाते ?
 अनजाने ही प्राणों में क्यों ,
 आ आ कर फिर जाते ?
 लय में मेरा चिर करुणान्धन ,
 कम्पन में सपनों का स्पन्दन ।
गीतों में भर चिर सख चिर दुख,
 कण कण में बिखराते !
 मेरे शैशव के मध में तुल ,
मेरे आँसु रिमन में झिलमिल ।
 मेरे क्यों - कहाते ?

और वह दुःख-सुख के सामञ्जस्य की समर्थक है । 'नीरजा' ही में नहीं, जैसा कि कुछ आलोचकों का मत है, 'रश्मि' में भी यही कामना है—

चिर मिलन-विरह पुलिनों की ,
 सरिना हो मेरा जीवन ।
 प्रतिपल होता रहता हो ,
 युग कूलों का आलिगन ।

अथवा

गूँथे विषाद के मोती,
 चाँदी सीरिमत के डोरे ।
 हो मेरे लक्ष्य-क्षितिज की,
 आलोक तिमिर दो छोरों ॥

पर रश्मि की जिस कविता में उक्त पंक्तियाँ हैं उसी में दुख को

इस प्रकार महत्त्व दिया है कि वे ब्रह्म को भी दुःख रूप म पाना चाहती है—

‘तुम मानस में बस जाओ,
छिप दुःख की अवगुण्ठन से ।’

ताकि वे विश्व के साथ तादात्म्य कर सकें—
में तुम्हें ढूँढने के मिस ,
परिचित हो लूँ करण-करण से ।

इस प्रकार दार्शनिक स्तर पर वे दुःख को अधिक महत्त्व प्रदान करती है । रश्मि की पाँचवी कविता में केवल दुःख के संसार के साथ आत्मीयता-एकात्मकता स्थापित करने वाले रूप पर ही प्रकाश डाला गया है—

रजत रश्मियों की छाया में धूमिल घन सा वह जाता
इस निदाघ से मानस में करुणा के श्रोत बहा जाता ॥

उसमें मर्म छिपा जीवन का ,
एक तार अगणित कम्पन का ।
एक सूत्र सब के बन्धन का ॥

समृति के सूने पृष्ठों में करुण काव्य वह लिख जाता ।

वह उर में आता बन पाहुन ,
कहता मन से अब न कृपण बन ।
मानस की निधियाँ लेना गिन ,

रंग-द्वारों को खोल विश्व भिक्षुक पर हँस बरसा जाता ।

- + + +

मृग मरीचिका के चिर पथ पर ,
सुख आता प्यासों के पग धर ।
ठढ़ हृदय के पट लेता कर ॥

गर्वित कहता 'मैं मधु हूँ मुझ से क्या पतझर का नाता' ।

दुख के पद छू बहते भरभर ,

करण-करण से आंसू के निर्भर ।

हो उठता जीवन मृदु उर्वर ॥

लघु मानस मे वह असीम जग को आमन्त्रित कर लाता ॥

इस प्रकार सुख जहा यह कहता है कि मैं बसन्त हूँ और मेरा पतझर से कोई नाता नहीं—सुखी व्यक्ति सुख को अकेले ही भोगना चाहता है—वहाँ दुःख सब को एक सूत्र में बाधकर ससीम व्यक्ति का असीम जग के साथ तादात्म्य करा देता है और यही धरा पर 'मुक्ति' है।

दार्शनिक स्तर पर दुःख को महत्त्व देते हुए—और यही महादेवी का दुःखवाद है—वह सामान्य स्तर पर दुःख-सुख के समन्वय की ही आकांक्षा रखती है :—

यह पतझर मधुवन भी हो ।

दुख सा तुषार सोता हो ,

बेसुध-सा जब उपवन में ।

उस पर छलका देती हो ,

वन श्री मधुभर चितवन मे ।

शूलों का बंशन भी हो ,

कलियों का चुम्बन भी हो ।

—नीरजा

उक्त कविता के समान नीरजा की अनेक कविताओ मे ऐसा हुआ है । यथा निम्न पंक्तियों मे यह भावना कितनी प्रबल है :—

१—एक घड़ी गालूँ प्रिय मैं भी ।

मधुर वेदना से भर अन्तर ।

दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय ।

उपल बने पुलकित से निर्भर ।

२—यह सूनापन हो उनका ,
यह सुखदुखमय स्पन्दन मेरे हों ।
भरते नित लीचन मेरे हों ॥

३—मूक सुख-दुख का रहे ।
मेरा नया शृंगार सा क्या ?

४—सुख दुख से भर आया लघु उर ।
मोती से उजले जल कण से ,
छाये मेरे विस्मित लोचन ।
लाये कौन संदेश नया धन ॥

५—खेल सुख-दुःख से चपल थक ,
सो गया जग-शिशु अचानक ।

६—जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर !
दोनों मिलकर देते रजकण ,
चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर ।
जग पतझर का नीरवरसाल ,
पहने हिमजल की अभ्रमाल ।
मैं पिक बन गाती डाल डाल ।
सुन फूट फूट उठते पल पल ,
सुख-दुःख-मंजरियों के अंकुर ।

७—दुख में जाग उठा अपनेपन का सोता संसार ।
सुख में सोई री प्रिय-सुधि की अस्फुट सी झंका
हो गये सुख दुख एक समान ।

८—हंसने में छू जाते तुम ,
रोने में वह सुधि आती ।
मैं क्यों न जगा अणु-अणु को ,
हंसना रोना सिखलाऊँ ।

नीरजा से सांध्यगीत और सांध्य गीत से दीपशिखा में यह प्रवृत्ति बढ़ती ही गई है। सुख-दुःख को इस प्रकार सहज रूप में ग्रहण करने से जीवन में संतुलन जन्य आनन्द ही नहीं मिलता, मनुष्य निर्भय होकर कर्म-पथ पर तत्पर रहता है—ऐसी अवस्था में निर्जन गह्वरों में पलायन नहीं कर सकता—

जिसको पथ-शूलों का भय हो ,
वह खोजे नित निर्जन गह्वर ।
प्रिय के सदेशों के वाहक ,
मैं सुख दुख भेटूँगी भुजभर ।

—सांध्य गीत

इस प्रकार महादेवी को सुख-दुःख प्रिय के सदेशों के वाहक जान पड़ते हैं। साधक अन्ते साध्य की साधना में ऐसा सज्जित-मजित होता है कि दुःख-सुख उसको प्रिय का प्यार-उपहार जना पड़ते हैं—‘मधुर प्रिय’ की भावना से वे मधुर हो उठते हैं—

दुःख सुख में कौन तोखा ,
मैं न जानी और न सीखा ।

मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले ।

—सांध्य गीत

और यही बात ‘नीरजा’ में है—

तेरा अघर विचुम्बित प्याना ,
तेरी ही स्मित मिश्रित हाला ।
तेरा ही मानस मधुशाला ,
फिर पूछूँ क्यों मरे साती ।
देते हो मधुमय विषमय क्या ?

महादेवी और मीरा

प्रथम इस विषय पर कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ दी जाती हैं—

महादेवी जी के काव्य का आधार उसी अर्थ में काल्पनिक कहा जा सकता है जिस अर्थ में कबीर और मीरा का काव्याधार काल्पनिक कहा जा सकता है, जिसे अर्थ में गीतांजलि और आँसू काल्पनिक है।

मीरा और महादेवी के काव्य का आधार बहुत अंशों में एक ही है, किन्तु ये दोनों दो युगों की सृष्टियाँ हैं। अपने अपने युगों के अनुरूप ही इन दोनों का काव्य व्यक्तित्व है। मीरा का काव्य नैसर्गिक भावोद्रेक का नमूना है। वह अलौकिक प्रेम और विरह से भीगे हुए हृदय का उद्गार है। उसमें काव्य कला की बारीकियाँ हमें नहीं मिलती, मर्तिमान विरह की तड़प और मिलन के स्पन्दन सुन पड़ते हैं प्रकृति और कल्पना की सहायता से भावों का चित्रण वे नहीं कर बैठी मध्य-युग के सभी समुन्नत कवियों की यह अप्रतिम नैसर्गिकता उनकी अपनी चीज है। उस तरह की चीज आज इस बौद्धिक विकास के युग में ढूँढना दोनों युगों का अपमान करना है। महादेवी जी भी अनुभूति की सच्चाई और गृहराई हैं, किन्तु वह काव्यकला में सफल हो आई हैं। मीरा अपने प्रियतम की खोज में राजमहल छोड़कर

है। काव्य-कला से सज्जित होने पर भी उनकी कविता में तीव्र नैसर्गिक उन्मेष नहीं। साथ ही उसमें एकांगिता भी है***।

मीरा का काव्य दिव्य प्रेम और विरह पर आश्रित है जो एक और उसे सहज हृदयग्राही बनाता है और दूसरी ओर काव्य के विषय को विस्तीर्ण कर देता है। महादेवी के काव्य में वैराग्य भावना का प्राधान्य है...।—नंददुलारे वाजपेयी

उनकी (महादेवी की) कविता में आत्म निवेदन है किन्तु मीराबाई जैसी निरपेक्ष तन्मय आत्मविस्मृति नहीं, असीम की खोज और हल्का स्पशानुभव है, चिन्तन है, किन्तु रहस्यवादियों का अटपटा, अनगढ़ तेजस्वी, दार्शनिक असन्तोष नहीं। मीराबाई की व्याकुलता इतनी व्यक्तिगत है कि कला की निर्व्यक्तिक कसौटी पर खरी नहीं उतरती।

—अज्ञेय

एक दृष्टि से मीरा को महादेवी जी की समकक्षता में रखना अधिक संगत नहीं प्रतीत होता क्योंकि मीरा भक्त है और महादेवी रहस्यवादिनी। फिर भी कुछ ऐसा है कि जब कभी महादेवी का नाम जिह्वा पर आता है तब मीरा का स्मरण स्वतः हो आता है। इसका कारण यही प्रतीत होता है कि स्त्री कवियों में आज तक जो ख्याति मीरा को मिली वह किसी को नहीं, अतः महादेवी जी ने इस युग की जब उनसे भी बड़ी ख्याति की स्थापना की तब यह स्वाभाविक लगा कि मीरा और महादेवी जी को एक दूसरे के सामने खड़ा करके देखा जाय।

—विश्वंभर मानव

“महादेवी को मीरा की परम्परा में बतलाना भी इसी प्रकार कलाकार महादेवी को हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में “युगो पीछे फेंक देना है।” मीरा की भक्ति साधना-मूलक थी। महादेवी की काव्य

साधना कला मूलक है। उनका तथाकथित सूक्ष्म प्रिय क्या मीरा के जोगी का पर्याय हो सकता है ?” विनय मोहन शर्मा

महादेवी जी की पीड़ा चाह कर अपनाई हुई है, मीरा की अनिवार्य। मीरा अपने मे बेबस और अपनी पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए विकल है। वे प्यासी है इसलिए उनमें पानी की पुकार है। महादेवा प्यास को ही चाहती मालूम होती है, इससे अनुमान होता है कि प्यास को उन्होंने जाना नहीं। घायल घाव नहीं चाहता। जो अर्भा घाव ही चाहता हो, मालूम होता है उसकी गति घायल की है नहीं। महादेवी जी विरह और वियोग में रस अधिक ढूँढती है। इसका अर्थ है विकलता उतनी अनुभव नहीं करती। मीरा तो अपने गिरधर गोपाल के पीछे सारी लाज छोड़ा बैठी है। महादेवी के लिए सामाजिक सम्भ्रान्तता उतनी नगण्य वस्तु नहीं है। कोई गिरधारी उनके लिए इतना मूर्त और वास्तव नहीं बन सकता जो उन्हें उधर से असावधान कर दे। यानी अपने इष्ट को वह विचार रूप में ही ग्रहण कर सकती है, प्रत्यक्ष रूप में नहीं चाह सकती। प्रत्यक्ष होकर उसे शरीर तब मिलने की दुस्संभावना हो आती। महिला जनोचित उनके स्वभाव व के लिए वह सर्वथा असह्य है। इस तरह मीरा और महादेवी श्री पीड़ में किसी प्रकार की समकक्षता नहीं देख पाता हूँ।”

—जैनेन्द्र

“असल में ऐसी (महादेवी और मीरा जसी) तुलनाओं के मूल। सबसे बड़ी भूल यह है कि दो कवयित्रियाँ या साहित्यकार बहुत अलग-अलग देशकाल-परिस्थितियों के परिपार्श्व में पनपे हैं। उन समता-विषमता खोजना ही व्यर्थ है, क्योंकि बहुत-सी बातें तो उन युग के प्रभावरूप में रहती हैं। मीरा आज पुनः जीवित होती तो वह महादेवी ही बनती या और कुछ यह कहना उतना ही कठिन है जितन

महादेवी जी के काव्य में उपनिषद और वेदान्त के ब्रह्म-तत्त्व को खोजने का निरर्थक यत्न करना ।

—प्रभाकर भाचवे

मीरा के बाद भारतीय साहित्य में महादेवी जी का स्थान माना जाता है । भक्ति काल में मीरा प्रकट हुई थी । जमाने को देखते हुए मीरा पहली विद्रोहिणी भारतीय नारी थी । राजनीतिक विरोध की तुलना में सामाजिक विरोध अधिक कठिन कार्य है । उस युग में मीरा अत्यंत साहसी और कृत निश्चय नारी हुई है, लेकिन दृष्टिकोण के अभाव में वे पत्थर पर ही सिर पटक कर रह गईं । महादेवी जी की त्रुटि यही है । इस सड़ाँद भरी समाज व्यवस्था में अनेक चित्र-वचित्र, अवास्तविक धाराएँ आदर्श और नैतिक मानी जाती हैं । जीवन के स्वाभाविक कार्यक्रम को समाज विरोधी करार दिया जाता है । इन्हीं मान्यताओं की शिकार महादेवी जी भी हैं । मैं जिम्मेदारी के साथ यह कह सकता हूँ कि मीरा के अधूरे समर्पण को महादेवी जी पूर्णता दे सकती, तो....” ।

—भानुकुमार जैन

मीरा और महादेवी हिन्दी साहित्य के दो विभिन्न युगों की दो महान् कवयित्रियाँ हैं । जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं लेकिन दो भिन्न युगों की विभिन्न परिस्थितियों में मे रहने के कारण दोनों का कवि व्यक्तित्व अलग अलग है ।

—रघुवीरप्रसाद सिंह

“मीरा से लोग मेरी तुलना कर लेते हैं । मैं इस विषय में क्या कहूँ ? वह स्त्री बड़ी महान् थी और उसे संघर्ष भी बहुत करना पड़ा था । उसे तो इतना बड़ा दण्ड मिला कि लोग यह भी नहीं जानते कि वह कहाँ मरी, इतनी महान् विभूति का इस प्रकार अज्ञात रूप से मर जाना कम दण्ड नहीं है । मुझे या किसी स्त्री को वैसा दण्ड नहीं

मिला । हमारा संघर्ष उसके सामने कुछ भी नहीं है । जो राजस्थान में पूजी जानी चाहिए थी उसे ऐसा कठोर दण्ड मिला । यह अत्यन्त दुःख की बात है ।”

—महादेवी

भारतीय साहित्य में ही नहीं विश्व साहित्य में भी नारियों की संख्या कम रही है । किन्तु जो भी हुई है उनमें से किसीने भी महाकाव्योचित विराट् प्रतिभा का स्पर्श नहीं किया, सदैव गीति कोमल प्रवृत्ति का ही परिचय दिया है । और इस तथ्य का सजग प्रमाण है हिन्दी साहित्य की दो उज्ज्वल तारिकाएँ मीरा और महादेवी जिन्होंने अपने अपने युग में विशेष ख्याति लाभ की । इन दोनों का कोमल उद्गीतियाँ साश्रु और गीली है—वेदना से आवृण है । और यह वेदना भी है किसी के प्रेम के कारण—वेदना के विकल हाथों से ही तो प्रेम का निर्माण हुआ है । अतएव ये दोनों प्रणय की दीप शाखाएँ अश्रुकणों से सुसज्जित हैं ।^१ एक ने यदि अँसुअन जल से सींच सींच कर प्रेम बेली बोई है^२ तो दूसरी ने निरन्तर मोती बरसाकर नयन-कोषों को रीता किया है ।^३

दोनों का प्रेम मूलतः विरह-गभित है । इस वेदना का स्वरूप भी अलौकिक-आध्यात्मिक है, लौकिक-भौतिक नहीं । इसीलिए मीरा ने बार-बार ‘जनम जनम की चेरी, ‘जनम जनम की दासी’ पूरब जनम की प्रीत पुराणी’ आदि पंक्तियाँ कही हैं और महादेवी ने भी युग युग से—जब से आत्मा परमात्मा से विलग हुई है तब से—निरन्तर नीर बहाया है—

१. “आग हूँ जिसस दुलकते बिन्दु हिमजल के” (महादेवी)

२. अँसुअन जल सींचि सींचि-प्रेम-बेलि बोई (मीरा)

३. आँखों के कोष हुए मोती बरसाकर रीते (महादेवी)

प्रिय इन नयनों का श्रृङ्खलीर
युग युग से बहता है अधीर

—नीरजा

और अधिक समानता के लिए, दोनों की उपासना माधुर्य भाव की है। एक यदि अपने 'गिरधर गोपाल' अथवा 'साँचो प्रीतम' की दासी है ^१ तो दूसरी अपने अलबेले सुन्दर प्रिय की मतवाली प्रिया। ^२

दोनों ने ही, मीरा ने अपने साकार 'साँचो प्रिय' का तथा महादेवी ने अपने निराकार होते हुए भी 'अलबेले प्रीतम' की सौंदर्य सुषमा का वर्णन किया है। यथा महादेवी के अनुसार सृष्टि का सौंदर्य उस 'चिर सुन्दर' की छाया मात्र है। रवि की कनक रश्मियों की उज्ज्वलता एव शीशि की रजत ज्योत्स्ना की शुभ्रता उसकी आभा के एक कण की भी समता-तुलना नहीं कर सकती। उनके चरणों की नख ज्योति ने हीरक जालों को लजा दिया है और नक्षत्रों का आलोक भी इनके सामने मन्द पड़ जाता है।

शृङ्गार, बिना प्रेम के कोरा हास-विलास अथवा कामुकता-लोलुपता है। इसलिए चाहे तीव्रता की दृष्टि से परकीया प्रेम अधिक प्रभावपूर्ण हो किन्तु स्वकीया प्रेम ही सच्चा प्रेम माना जा सकता है। उसी में ही वास्तविक परिष्कृति सम्भव है। मीरा और महादेवी दोनों का प्रेम स्वकाया का प्रेम है—शुभ्र-सात्विक है। दोनों ने अलौकिक प्रियतम के प्रति लौकिक भावनाओं से जो आत्मनिवेदन किया है उसमें नारी हृदय का पूर्ण स्पन्दन है।

दोनों की प्रणय भावनाओं में प्रकृति सहायक सिद्ध हुई है और इसीलिए प्रकृति पर प्रेम-भावनाओं का आरोप भी हुआ है। यदि सावन में मीरा का मन उमड़ता है तो महादेवी के लिए भी धन ऐसा

१— गिरधर म्हारो साँचो प्रीतम। मीरा

२— मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है।

—नीरजा

सन्देश लाते हैं कि हृदय में 'पुलकों का सावन उमड़ने लगता है । यदि मीरा कहती है—

“उमग्यो इन्द्र चहुँ दिति बरसै

दामिण छोड़ी लाज ।

धरती रूप नवा-नवा धरिया,

इन्द्र मिलण के काज ।

तो महादेवी में भी कुछ इसी प्रकार व्यक्त हुआ है—

“भूम गर्वित स्वर्ग देता,

नत धरा को प्यार सा क्या ।

आज पुलकित सृष्टि क्या,

करने चली अभिसार लय में ?”

—नीरजा

स्थूल रूप से देखा जाय तो दोनों के काव्य में ऐसी कुछ पंक्तियाँ भी मिल जायेंगी जो समान-सी प्रतीत होती हैं—

तुम बिना हम बिच अंतर नाँही,

जैसे सूरज धाम ।

—मीरा

मैं तुम से हूँ एक, एक है

जैसे रश्मि प्रकाश ।

—महादेवी

सखी मेरी नाँब नसानी हो

पिय को पंथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो ।

—मीरा

पथ देख बिना दी रैन में प्रिय पहचानी नहीं ।

—महादेवी

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिखियो न जाय,

कलम धरत मेरो कर काँपत है नैनन है भर लाय”

—मीरा

कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती
 दृग जल की सित मसि है अक्षय,
 मसि प्याली भरते तारक द्वय,
 पल-पल के उड़ते पृष्ठों पर,
 सुधि से लिख साँसों के अक्षर,
 मैं अपने ही बेसुध-पन में,
 लिखती हूँ कुछ-कुछ लिख जाती।

—नोरजा

दोनों के काव्य में एक प्रकार की एकरसता भी मिलती है।

प्रो० रघुवीरसिंह ने दोनों की काव्यगत मूल प्रेरणा में भी समानता देखी है—“जहाँ तक काव्यगत मूल प्रेरणा का प्रश्न है दोनों एक-दूसरे से अभिन्न है, लेकिन दो भिन्न युगों की विभिन्न परिस्थितियों में रहने के कारण दोनों का कवि व्यक्तित्व अलग-अलग है।” मीरा और महादेवी दोनों की जीवनी पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह मालूम हो जाता है कि दोनों पर बचपन में भगवान के भावमय भजन का प्रभाव पड़ा है। महादेवी का कथन है, ‘एक व्यापक विकृति के समय निर्जीव संस्कारों के बोझ से जड़ी भूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनापूत आस्तिक और भावुक माता और दूसरी ओर सब प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ तथा दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा विकास दिया उसमें भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बधने वाली चेतना पर ही स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी ही पार्श्व भूमि पर माँ से पूजा-आरती के समय सुने हुए मीरा, तुलसी आदि के तथा उनके स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद-रचना आरम्भ की थी। मीरा के विषय में तो यह जनश्रुति प्रसिद्ध ही

ह कि वह बचपन में ठाकुर जी के विग्रह पर अपना तन मन वार चुकी थी और साधुओं के समाज में सम्मिलित होकर भगवान के भजन में उसने तल्लीनता का अनुभव किया था। स्वयं मीरा के पद इस बात के साक्षी हैं।”

वस्तुतः महादेवी की उपर्युक्त उक्ति के आधार पर उनकी काव्यगत मूल प्रेरणा को मीरा से अभिन्न बताना सर्वथा भ्रमपूर्ण है। कविता में तो आध्यात्मिकता का प्रसार स्वीकार भी किया जा सकता है किंतु उन के संस्मरणों में और गद्यात्मक रचनाओं के विषय में क्या कहा जायगा जिसमें पीडित-शोषित तथा अपमानित नारियों की मूक व्यथा को लौह लेखनी से मुखरित किया गया है। उनके गद्य को भी इस काव्यगत मूल प्रेरणा से बाहर नहीं किया जा सकता। वस्तुतः महादेवी की उक्ति का भली-भाँति निरीक्षण-परीक्षण करने की आवश्यकता है। इस उक्ति के अनुसार तो स्पष्ट है कि जहाँ तक भावुकमाता के भक्ति के गीतों ने उन पर प्रभाव विस्तार किया वहाँ कर्मनिष्ठ पिता के कारण उनकी आस्तिकता एक सक्रिय चेतना पर ही स्थित हो सकी। यही सक्रियता अपनी पूर्ण तीव्रता में गद्य में दिखाई देती है और पद्य भी इससे अछूता नहीं रहा। महादेवी और मीरा में इसी सक्रिय आस्तिकता की भावना ने एक बड़ा अन्तर ला दिया है (इस युग की सक्रिय आस्तिकता को प्रथम लेख में स्पष्ट किया जा चुका है)। महादेवी की कर्मण्यता गद्य में बौद्धिक रूप में और पद्य में भावात्मक रूप में व्यक्त हुई है। महादेवी की प्रथम उक्ति की पूरक स्वरूप निम्न उक्तियों पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है — “माँ से सुनी एक करुण कथा का प्रायः सौ छन्दों में वर्णन कर मैं ने मानो खण्ड-काव्य लिखने की इच्छा भी पूर्ण करली।..... उसके उपरान्त ही बाह्य जीवन के दुखों की ओर मेरा विशेष ध्यान जाने लगा था। पड़ोस की एक विधवा बधू के जीवन से प्रभावित हो कर मैं ने ‘अबला’ ‘विधवा’ आदि शीर्षकों से

उस जीवन के जो शब्द-चित्र दिए थे वे उस समय की पत्रिकाओं में भी स्थान पा सके। पर जब मैं अपनी विचित्र कृतियों तथा तूलिका और रंगों को छोड़कर विधिवत् अध्ययन के लिए बाहर आई तब सामाजिक जागृति के साथ राष्ट्रीय जागृति की किरणे फैलने लगी थी। अतः उनसे प्रभावित होकर मैंने भी 'श्रृंगारमयी अनुरागमयी भारत जननी भारत माता' 'तेरी उतारूँ आरती माँ भारती' आदि जिन रचनाओं की सृष्टि की वे विद्यालय के वातावरण में ही खोजने के लिए लिखी गई थी।

“करुणा बहुल होने के कारण बुद्ध सम्बन्धी साहित्य भी मुझे बहुत प्रिय रहा है। उस समय मिले हुए संस्कारों और प्रेरणाओं का मैंने कभी विश्लेषण नहीं किया है, इसलिए उनके सम्बन्ध में क्या बताऊँ। इतना निश्चित कह सकती हूँ कि मेरे जीवन ने वही ग्रहण किया जो उसके अनुकूल था और आगे चलकर अध्ययन और ज्ञान की परिधि के विस्तार में भी खोया नहीं वरन् उसमें नवीनता ही आई।”

“मेरे सम्पूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्ध प्रसूत चिन्तन का भी विशेष महत्त्व है जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा।”

“कह दे माँ क्या अब देखूँ ।
देखूँ खिलती कलियाँ या,
प्यासे सूखे अधरों को ।
तेरी चिर यौवन-सुषमा,
या जर्जर जीवन देखूँ ।

×

×

×

सौरभ पी-पीकर बहता,
देखूँ यह मन्द समीरण ।

दुःख की घूँटे पीती या,
ठंडी सांसों को देखूँ ।

×

×

×

कलियों की धन जाली में,
छिपती देखूँ लतिकाएं
या दुर्विन के हाथों में ।
लज्जा की कहरना देखूँ ।”

—रश्मि

यह कंठ-स्वर नहीं, हृदय के अतल तल की मर्मभेदी पुकार है, यह वह संवेदना साधित सक्रिय आस्तिकता है जो महादेवी का सांस्कारिक स्वभाव है । महादेवी जो इस क्षणभंगुर जीवन की सार्थकता केवल परोपकार में देखती है—

“भिक्षुक सा यह विश्व खड़ा पाने कहरना प्यार,
हँस उठ रे नादान खोल दे पंखुरियों के द्वार ।
रीते कर ले कोष,
नहीं कल सोना होगा धूल ।
अरे तू जीवन पाटल फूल ।”

—नीरजा

इस प्रकार महादेवी मीरा के समान केवल स्वकेन्द्रित या आत्म-लीन ही नहीं । उन्होंने संसार के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह सुचारु रीति से किया है । वस्तुतः मीरा में केवल वेदना है, महादेवी में वेदना और संवेदना (कहरना) दोनों ।

महादेवी ने नीरजा की ‘२१’ कविता में मीरा को प्रशंसा दी है वहाँ भी मीरा को कहरना का झगल घट’ लाने को कहा है ताकि विश्व का ‘मह शेष हुआ मानस सर’ फिर से लहरा उठे और ‘हास जर्जर पतझर सम संसार पुनः वासंतिक वैभव से लहलहा उठे—

जग ओ मुरली की मतवाली !
 दुर्गम पथ हो ब्रज की गलियाँ,
 शूलों में मधुवन की कलियाँ;
 यमुना हो वृग के जल कण में;
 वंशी-ध्वनि उर की कम्पन में;
 जो तू करुणा का मंगल घट ले,
 बन आवे गोरस वाली ।
 जग ओ मुरली की मतवाली ।”

इस प्रकार महादेवी में केवल आत्मा-परमात्मा के सम्बन्धों का गान ही नहीं, जीवन का व्याख्यान भी है । दुःख तो दोनों में है किन्तु महादेवी में इसका एक अलग स्वरूप है, उसने 'वाद का रूप धारण कर लिया है ।

मीरा में संसार से विरक्ति की भावना अति प्रबल है । 'भगति' देख वह राजी होती है 'जगति' देखकर रो देती है—

भगति दे राजी हुई, जगति देखि रोई ।

दासी मीरा लाल गिरधर, तारो अब मोही ।

यह भी स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि संसार-सागर से पार जाने की रहती है, यमराज के फदे को तोड़ वह आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाना चाहती है । निम्न उदाहरणों से यह स्पष्ट है—

१ मीराँ दासी राम भरोसे, जम का फंदा निवार ।

२— मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सँ छुटकी ।

३— मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कटो जम की फांसी ।

किन्तु महादेवी में संसार के प्रति एक प्रकार की सहज अनुरक्ति, श्वास-श्वास में शतशः जीवन का उन्माद और कष्ट-कष्टको में भाँ गुलाबी मस्ती की प्रफुल्लता है—

रोम-रोम में नन्दन पुलकित,

सांस सांस में जीवन शत शत ?

स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय ?
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या ।

(१) “कण्टकों की सेज जिसका आंसुओं का ताज,
सुभग हंस उठ उस प्रफुल्ल गुलाब-सा ही आज ।
बीती रजनी प्यारे जाग”

—नीरजा

निस्सदेह ऐसे ही फूल संसार का शृंगार है । प्रसाद जी ने कामा
यनी में भी यही तो लिखा है—

“प्रकृति के यौवन का शृंगार,
करेंगे कभी न बासी फूल”

महादेवी ऐसी लय-मुक्ति-नही चाहती जहाँ कर्मण्यता न हो । और
वे चाहे भी क्यों ? जब एक एक अंग में इन्द्रवाटिका और गुलाब की
प्रफुल्लता, सुख-दुःख को ‘भुज भर’ मेटने का अप्रतिम उत्साह और ‘है
मृत्यु मूक, जीवन सुख दुःखमय मधुरगान’ की तान सुनाई दे रही हो
तो बन्धनों की कामना कितनी सत्य है, और जन्म-मरण की—धनवत्
घिरने और घुलने की—आकांक्षा कितनी स्पृहणीय—

घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !
जलधि मानस से नव जन्म पा !
सुभग तेरे ही वृक्ष व्योम में ।
सजल श्यामल मन्थर मूक सा !
तरल अश्रु विनिर्मित गात ले !
नित धिखूँ भर-भर मिटूँ प्रिय ।
घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय !

इस प्रकार मीरा में जहाँ केवल विरक्ति और ‘गिरधर गोपाल’

का गान है वहाँ महादेवी जी में अलौकिक के गान के साथ जीवन का सम्मान भी है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होगा कि महादेवी में मीरा-वत केवल वियोग शृंगार ही नहीं करुण रस और वीर रस भी हैं।

महादेवी निराकार की प्रेमिका है, मीरा साकार की आराधिका। एक रहस्यवादिन है दूसरी भक्तिन। एक का मन ही मन्दिर है, दूसरी बाह्य मंदिर में सुध-बुध खोकर नाचती है—

क्या पूजा क्या अर्चन रे

उस असीम का सूना मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे।

मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे।

—महादेवी

में तो साँवरे के रंग रांची

साजि सिंगार बाँधि पग घुँघरू लोक लाज तजि माची।

—मीरा

मीरा में भी रहस्य भावना है। अवश्य ही कुछ पदों में उनके इष्टदेव निर्गुण से प्रतीत होते हैं और 'हरि अविनासी' को हृदयस्थ भी बताया है। वे योगियों के समान कभी-कभी 'सुरत निरत' का 'दिवला' भी संजोती हैं और 'प्रेम हटी' के तेल में 'मनसा' की 'बाती' 'दिन-राती' जगाने का आग्रह भी करती हैं। किन्तु ऐसी शब्दावलियों से हम उन्हें संतमार्गी नहीं कह सकते क्योंकि इसी 'अविनासी' को उन्होंने ने ब्रज का छलिया गिरधर गोपाल कहा है। कुछ पदों में लीलाओं का गान भी है। वे मोर मुकुट धारी कृष्ण के रूप पर लुब्ध हैं और ऐसे उत्कट प्रेम के लिए निराकार भी साकार हो जाता है।

वस्तुतः "मीराँ बाई को उस प्रियतम के रूप का आध्यात्मिक रहस्य अवश्य ज्ञात है किन्तु उनके प्रेम की तीव्र भावना उसे अमूर्त मानकर अपनाने नहीं देती।

... .. उनके भगवान की परिभाषा कदाचित् वही है जो श्रीमद्भागवत के निम्नलिखित प्रसिद्ध श्लोक द्वारा प्रकट होती है—
जैसे,

वदन्ति यत्तत्त्वितदस्तत्त्वं, यद्ज्ञानमव्ययम् ।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्दयते ॥

अर्थात् जिसवस्तु को तत्त्वज्ञानी लोग तत्त्व अव्यय, ज्ञान, ब्रह्म वा परमात्मा नाम से अभिहित करते हैं उसीको भगवान भी कहा जा सकता है। उनका इष्टदेव इस प्रकार निर्गुण होता हुआ भी भगवान है।”

—परशुराम चतुर्वेदी

सत्य तो यह है कि मीरा ‘दरद दिवाणी’ थीं, भावुक-भोली थीं, इतनी तन्मय-तल्लीन थी कि निर्गुण-सगुण और ज्ञान-भक्ति के तार्किक भेद का आकलन हो ही नहीं सकता था।

महादेवी और मीरा की प्रणय भावना में भी कुछ अन्तर है। मीरा में आत्मसमर्पण की भावना बड़ी प्रबल है किन्तु महादेवी अपने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सदैव सजग बनी रहती है। इन्हे बिन्दु में सिन्धु भर लाने का आग्रह है सिन्धु में बिन्दु विलीन करने का नहीं। अपनी हार में ये (अनिच्छापूर्वक) निर्वासित ही हो सकती हैं स्वेच्छापूर्वक अवसित नहीं —

हाऊँ तो खोऊँ अपनापन,

पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,

वस्तुतः देवी जी बंधना नहीं चाहती, प्रियतम को बाँधना चाहती है। वे अनुरागिनी के साथ मानिनी भी हैं —

सजनि मधुर निजत्व वे,

कैसे मिलूँ अभिमानिनी में,

विश्वम्भर मानव ने ठीक ही लिखा है “महादेवी के प्रेम में पत्न का आत्मसमर्पण नहीं, प्रेमिका का गर्व है—

द्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं,

क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो ?

उसकी प्रियतमा होने में अतुल ऐश्वर्य है। साथ ही महादेवी परमात्मा की महत्ता के साथ जीव को भी महत्त्व देती है, उन्हें रजमय मंजुल मुकुट (शरीर) के बिना शृंगार सदन तथा अपनेपन के अवगुण के बिना ‘अपलक आनन’ सूना दिखाई देता है। ठीक भी है जीव ही तो परमात्मा की सुधि कर सकता है और उसके महत्त्व को पहचानता है। मीरा के प्रेम में कही-कही दैन्य भाव भी झलकता है। वे दासी ही नहीं उनमें कही २ दास भाव भी है—

(१) मैं तो हूँ बहु औगण हारी,

औगण चित्त मत दीजो जी ।

(२) तुम गुणवंत बड़े गुण सागर,

मैं हूँ जी औगुण हारो ।

मैं निगुणी गुण एको नाहीं,

तुझ मैं जी गुण सारा ।

(३) तुम सरणागत परम दयाला,

भव जल तार मुरारी ।

मीरा दासी तुम चरणन की,

बार बार बलिहारी ।

“महादेवी के साध्य की एक विशेषता जिसे हम प्रेम का प्राण कह सकते हैं यह है कि वह प्रेम पात्र ही नहीं प्रेममय भी है। उस के हृदय भी हैं। वह प्रेम लीला का साक्षी ही नहीं, अभिनेता भी है। वह आकर्षित करता ही नहीं, आकर्षित होना भी जानता है। जिस प्रकार आत्मा-परमात्मा के प्रेम में विह्वल रहती है उसी प्रकार परमा-

त्मा भी आत्मा के लिए आकुल । रात्रि में सुरभि बनकर वह थपकियाँ देता और प्रभातकाल में वही स्वप्नशाला में यवनिका डालकर अपने कोमल करो से प्रेमिका के दृगो को खोलता है । इसी प्रकार भङ्गा की ध्वनि में भी उसका मौन निमंत्रण मिलता तथा संध्या उस ओर से दूती के समान मनुहार करती प्रतीत होती है—

नव इन्द्रधनुष सा चीर,

महावर अंजन ले ।

अलि गुंजित मीलित पकज,

नूपुर सनभुन ले ।

फिर आई मनाने साँझ,

में बेसुध मानी नहीं ।^{११}

किन्तु मीरा के प्रभु निरपेक्ष है, अपनी मरजी के मालिक—

मीरा के प्रभु हरि अविनासी,

अपणी गरज के मीत ।

महादेवी के प्रेम में आतरिक-मानसिक पक्ष की ही प्रधानता है शारीरिक पक्ष अति न्यून है । मीरा में ऐन्द्रिय अभिव्यक्ति स्पष्ट है प्रेम की रेखाएं अधिक मूर्त-मांसल हैं । यथा—

(१) मीरा दासी जनम जनम की अंग से अंग लगावो हो ।

(२) भुरमुट में मोहे श्याम मिलेंगे खोल मिलूँ तन गाती ।

किन्तु ऐसे शारीरिक प्रेम में भी मीरा को सुरा की नहीं सुधा की आवश्यकता है; इसका प्रमाण है उनका अनन्य आत्म-समर्पण, प्रियतम के लिये मिट जाने की भावना । अतएव मीरा में प्रेम की जो उन्मुक्त स्पष्टता और तीव्रता है वह महादेवी में नहीं । मीरा में भावना प्रबल है, महादेवी में बुद्धि सजग । एक का भावावेश बुद्धि का तिर

स्कार कर सकता है 'लोक लाज' खो 'कुल कानि' होने की व्यवस्था भी दे सकता है दूसरे की बुद्धि भावुकता का नियंत्रण करती है, संतुलन बनाये रखती है। मीरा में पवित्रपागलपन है (Dijive madness) है महादेवी में सहज-संतुलन। इसी में इन दोनों की गरिमा है और अपने-अपने युग का गौरव भी।

यदि कवि की शक्तियों की परीक्षा की जाय तो महादेवी के पास प्रतिभा, शिक्षा, अभ्यास सभी कुछ है, किन्तु मीरा में प्रतिभा ही है शिक्षा और अभ्यास नहीं। इसी कारण इन दोनों की कला में अन्तर आ गया है। मीरा केवल साधिका है—कविता करना उसका लक्ष्य नहीं। महादेवी की साधना भी सौंदर्य-साधिका है—वे कलाकार भी है। अतएव महादेवी के गीतों में कल्पना का जो रंग-रूप, भाषा की जो लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, स्वर की जो सूक्ष्म तरल योजना, अलंकृति का जो सौंदर्य-सभार और कला का जो अतिशय परिष्कार मिलता है वह मीरा में ढूँढ़ना व्यर्थ है। किन्तु मीरा के गीतकाव्य में जो सहजता और स्पष्टता, अन्विति और संक्षिप्तता तथा संक्षिप्तता और सजीवता मिलती है वह महादेवी में नहीं। इसका कारण है मीरा का प्रबल भावावेश, सशक्त अनुभूति, आकुल तन्मयता, अचल निर्भीकता और सहज स्वच्छन्दता जो बरबस अनायास गीत का रूप धारण कर लेती है; संगीत भी हृदय के अंतराल से फूट पड़ता है और भाषा और भाव में भी कोई व्यवधान नहीं रहता। 'रुदन का हँसना ही तो गान'—गुप्त जी की यशोधरा की पक्ति और बच्चन की निम्न पक्तियाँ—

मे रोया तुम कहते हो गाना,

मे फूट पड़ा, तुम कहते छंद बनाना।

मीरा ही में पूर्णतः चरितार्थ होती है। महादेवी के गीतों में जिस साकेतिक लक्षणा-व्यंजनात्मक शैली का प्रयाग हुआ है उसका मूल सम्बंध

कल्पना एवं बुद्धि तत्त्व से अधिक है जो गीतकाव्य के इतने अनुकूल नहीं जितना कि रागात्मक भाव तत्त्व । वैसे भी उनमें दार्शनिकता का आग्रह और एक प्रकार का आत्म संकोचन भी है । इसी से महादेवी के गीत अपेक्षाकृत अधिक सहृदय संवेद्य नहीं हो सके और उनमें उस मदिर मार्मिकता का अभाव मिलता है जो मीरा के गीतों की विशेषता है । फिर भी मीरा के समान महादेवी भी अपने युग की सर्वश्रेष्ठ गीति कवयित्री हैं दोनों में अपने-अपने युग की अभिव्यक्ति-शैली है । महादेवी के कला-गीत हैं और मीरा के लोक-गीतों के अधिक निकट ।

महादेवी का प्रकृति-चित्रण

मनुष्य का पालन-पोषण प्रकृति की क्रीड़ा में हुआ है। पल-पल परिवर्तिनी, विविध-रूप धारिणी प्रकृति की सुन्दरता-विचित्रता, विराटता-रहस्यमयता मनुष्य को सनातन काल से प्रभावित-आन्दोलित करती रही है। फिर भला सवेदनशीलता का प्रतिरूप कवि इस से कैसे असम्भ्रित रह सकता है। जब नीहार के अवगुठन को अनावृत कर रश्मि छवि दिखाती है, विहग रव मंगल गान गाता है, प्रातः सुनहरे अंचल में रोली बिखेर हँस देता है और लहरो की बिछलन पर भोली किरने मचल पड़ती है, तब कवि की भाव-लहरियाँ भी मचलने लगती हैं। जब इन्द्रधनुषी-चीर सजाये, महावर अजन लगाये, अलि-गुंजिन मीलित पंकज के नूपुरों से रुन-भुन करती हुई साँझ, अन्धकार से मिलने आती है, गोधूल नभ के आगन में अगणित झिल-मिल दीपक जलाती है, निशा की अलको को राकश चाँदनी से घोने लगता है, तब कवि भी चाँदनी की सित-सुधा भरी बादल की प्यालियों में अपनी तूलिका डुबो कर चित्राकन के लिये लालायित हो उठता है। कोकिल को काकली, पक्षियों का कलरव, भ्रमरो का गुञ्जन और पपीहे का 'पी कहा' का अनोखा संगीत उसे लुब्ध ही नहीं करता, उसके अतस्संगीत को प्रबुद्ध भी कर देता है। महादेवी की सौंदर्य-साधित कविता भी प्रकृति की वर्ण-छटा से सज्जित तथा उस के संगीत से मुखरित है।

महादेवी 'नीहार' से 'दीपशिखा' तक—प्रत्यूप की चित्रित नीहा-

रिक से रजनी की दीपशिखा की भव्य-ज्योति तक—प्रकृति को स्थान देती रही है। रचनाओं के नाम रूपी बाह्य कलेवर से लेकर भावना-रूपी अन्तर्जगत के अणु-अणु प्रकृति से अनुप्राणित है।

अब प्रश्न यह उठता है कि महादेवी ने प्रकृति वर्णन क्यों किया ?

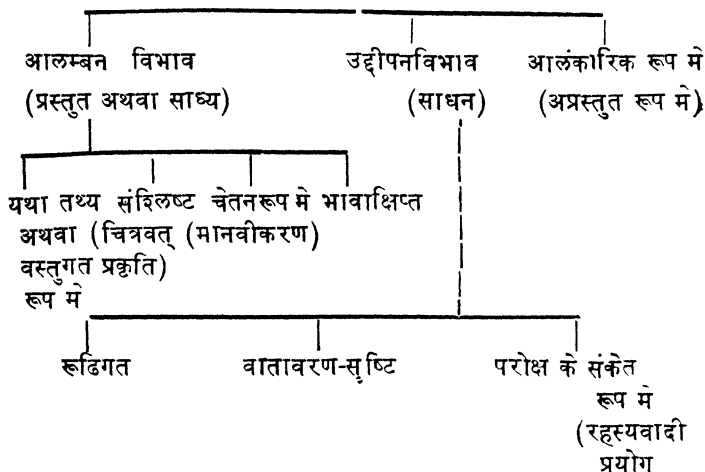
छायावादी काव्य में प्रकृति का प्राधान्य रहा है। 'छायावाद, स्थूल से विमुख हो कर सूक्ष्म के प्रति आग्रह' का नाम है।^१ द्विवेदी युगीन कविता में बहिर्मुखी दृष्टि कोण इतना बढ़ गया था कि अन्तर्मुखी-प्रवृत्तियों ने छायावादी कवियों को प्रकृति की ओर आकृष्ट किया। प्रकृति के माध्यम से वे अपनी भावाभिव्यक्ति भी कर सके—स्थूल को सूक्ष्म रूप भी दे सके। महादेवी—प्रसाद, पन्त निराला से बाद में ही साहित्य क्षेत्र में आई इसलिए नूतन, परम्परा-मुक्त प्रकृति-वर्णन की परम्परा महादेवी को उत्तराधिकार में मिली। महादेवी ने छायावाद की जो परिभाषा दी है, उसमें प्रकृति को विशिष्ट स्थान प्राप्त है—“छाया-वाच जीवन का प्रकृति के बीच उद्गीथ है।”

दूसरा कारण यह है कि महादेवी ने संस्कृत साहित्य का विशेष अध्ययन किया था। कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति आदि की रचनाओं में प्रकृति के सुन्दर संश्लिष्ट चित्र मिलते हैं। उनको कालिदास का 'रघुवश' तथा भवभूति का 'उत्तर राचरित' और उषा-माखन के गीत भी विशेष प्रिय रहे हैं। इस प्रकार संस्कृत साहित्य से भी उनको प्रकृति चित्रण की प्रेरणा मिली।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि महादेवी पर तो अद्वैतवाद का प्रभाव है जिसके अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन में प्रकृति व्यवधान डाल सकता है, किन्तु जैसा हम आगे देखेंगे कि प्रकृति उनकी रहस्य-भावना में विशेष सहायक सिद्ध हुई है, मधुर प्रिय की भावना से उनको सुख-दुख जड़-चेतन—सभी प्रिय हो गये हैं, प्रकृति को वे न

अपने से अलग देखती हैं और न ब्रह्म से । वह अद्वैत-वाद के साथ सर्वात्मवादी भी है जिस के अनुसार उन्हें एक ही प्रवि प्रवेग की लहर सर्वत्र बहती दिखाई देती है ।

काव्य मे प्रकृति का चित्रण अनेक रूप से हुआ है, जैसा कि निम्न चक्रके स्पष्ट है—



आलम्बन विभाव के रूप मे—

जहाँ प्रकृति वर्णन ही लक्ष्य होता है वहाँ प्रकृति आलम्बन रूप मे आती है । यहाँ प्रकृति का स्वतन्त्र वर्णन किया जाता है और आश्रय रूप से कवि होता है ।

जहाँ प्रकृति का निर्जीव यथातथ्य वर्णन होता है वहाँ वस्तु परिगणनात्मक प्रवृत्ति मिलती है । इसमे प्रकृति का चित्र उपस्थित नहीं होता । महादेवी मे ऐसा प्रकृति चित्रण कही नहीं हुआ ।

जहाँ कवि अपनी चयन वृत्ति के आधार पर प्रकृति का चित्र उपस्थित करता है वहाँ प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र होता है । यहाँ वस्तुओं का नाम नहीं गिनाया जाता, बिम्ब-ग्रहण कराया जाता है ।

इसमें कवि का सूक्ष्म निरीक्षण और हृदय का योग दिखाई देता है । महादेवी ने प्रसाद की 'बीती बिभ्रती जागरी' (लहर) के समान कोई भी स्वतन्त्र प्रकृति-गीत नहीं लिखा । इसका कारण है, उनकी व्यक्ति-वादी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति जिसका सहज माध्यम गीति काव्य ही बन सका । गीतकाव्य और प्रबन्ध काव्य के प्रकृति-प्रयोग में भिन्नता रहनी स्वाभाविक है । प्रबन्ध काव्य वस्तुगत होता है, गीत काव्य भावमय । गीति काव्य का मूल तत्त्व है, आत्माभिव्यञ्जन । गीति काव्य में आनेवाले सभी उपकरणों को आत्मानुभूति की तीव्रता में सहायक होना आवश्यक है, अतएव स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण का गीतकाव्य में स्थान नहीं हो सकता । यदि प्रकृति आती भी है तो वह कवि-वृत्ति से रंजित होती है । तात्पर्य यह कि प्रकृति वर्णन भी भावाक्षिप्त होता है । बाह्यप्रकृति भी कवि के चित्तरे हृदय का चित्र बन कर आती है । यथा निम्न उदाहरण में कवयित्री की अन्तर्वृत्तियों के अनुरूप ही प्रकृति चित्रण हुआ है—

फँलते हैं सांध्य नभ में भाव ही मेरे रंगीले
निमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले”

—नोरजा

इस उदाहरण में भी कवयित्री के हृदय की वेदना परिलक्षित होती है :—

सिन्धु का उच्छ्वास घन है,
तड़ित-तम का विकल मन है,
भीति क्या नभ है व्यथा का
आंसुओं से सिक्त अंचल !
दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अचंचल !

—दीपशिला

पन्त में प्रकृति के प्रति एक स्वतन्त्र मोह बना रहता है, महादेवी में सदैव अन्तर्भावना ही कलित हुई है; पन्त में प्रकृति के साथ

तादात्म्य, सौन्दर्य के कारण भी है किन्तु महादेवी ने यह प्रायः रहस्य प्रवृत्ति के कारण ।

प्रकृति ऐसे व्यापारो से युक्त है कि कवि की भावुकता उस से उपदेश-सन्देश ले सकती है । फूल चाहे हँसे अथवा नही किन्तु कवि हँसने का मूल्य समझता है । अतएव भावुक कवि अपने पुलकित भावों का आरोप फूल पर कर गा उठजा है—“फूलों से तुम हँसना सीखो” चाहे इस में कुछ फूल की भी विशेषता रहती है । वड्डस्वर्थ को कानन का क्षुद्रतम कुसुम भी गम्भीर तम प्रेरणा दे सकता है—“To me the meanest flower that blows, can give thoughts that do often lie too deep for tears” इसे उपदेशात्मक प्रकृति-वर्णन भी कहा जा सकता है । महादेवी भी अपने जीवन-दीप को प्रकृति से उद्बोधित करती है—

जलते नभ में देख अश्रुस्थक,
स्नेह-हीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत् ले घिरता है बाबल !
बिहँस-बिहँस मेरे दीपक जल !

—नीरजा

अथवा

कंठकों की सेज जिस का, आसुओं का ताज
सुभग ! हंस उठ प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज !

—नीरजा

उक्त पंक्तियों की तरह ‘नीहार’ की पाँचवी कविता में कवयित्री ने प्रकृति से व्यञ्जनात्मक सन्देश (अभिधात्मक उपदेश नहीं) लिये हैं । कुछ पंक्तियाँ पठनीय हैं—

देकर सौरभ बान पवन से
 कहते जब मुरझाये फूल
 जिस के पथ में बिछे वही
 क्यों भरता इन आँखों में धूल ?

अब इन में क्या सार, मधुर जब गाती भौरों की गुञ्जार,
 मर्मर का रोदन करता है कितना निष्ठुर है संसार ।

महादेवी मे 'सान्ध्यगीत' मे केवल एक ऐसी कविता है जहाँ प्रकृति,
 'हिमालय', का सुन्दर स्वतन्त्र चित्रण हुआ है—

तथा:—

हे चिर महान् !
 यह स्वर्ण रश्मि छू श्वेत भाल,
 बरसा जाती रगोन ह्रास;
 सेली बनना है इन्द्रधनुष,
 परिमल मलमल जाता वातास !
 पर रागहीन तू हिम निधान !
 टूटी है कब तेरी समाधि,
 भङ्गा लौटे शत हार-हार,
 बह चला वृगों से किन्तु नीर,
 सुन कर जलते कण की पुकार,
 सुख से विरक्त दुख में समान !

किन्तु इस गीत में भी अन्त में, वह हिमालय से तादात्म्य करने
 की ही इच्छा है—

मेरे जीवन का आज मूक,
 तेरी छाया से ही मिलाप ।
 तन तेरी साधकता छू ले,

मन ले करणा की थाह नाप !

उर में पावस दृग में विहान !

इस प्रकार महादेवी में ऐसी कोई कविता नहीं जहाँ प्रकृति का भाव-निरपेक्ष चित्रण हुआ हो । वैसे गीतों में भावनाओं के साथ-साथ प्रकृति का सुन्दर संश्लिष्ट चित्रण भी हुआ है । नीरजा की १६ वी कविता में तो एक मनोरम चित्र-माला ही मिलती है । तम, प्रभात, और साँझ के चित्र देखते ही बनते हैं । निम्न पंक्तियाँ आस्वादनीय हैं—

(१) तम ने धोया नभ पंथ,
सुवासित हिम जल से ।
सूने आँगन में दीप,
जला दिये झिलमिल से ।

(ii) धर कनक-थाल में मेघ,
सुनहला पाटल सा ।
कर बालारुण का कलश,
विहग रव मंगल सा ।
आशा प्रिय पथ से प्रात,
सुनाई कहानी नहीं ।
मे प्रिय पहचानी नहीं ।

(iii) नव इन्द्र धनुष सा चौर,
महावर अंजन ले ।
अलि-गुञ्जिन मीलित कज-
-नूपुर रुनभुन ले ।
फिर आई मनाने सांझ,
मे बेसुध मानी नहीं ।
मे प्रिय पहचानी नहीं ।

इन चित्रों में भी कवयित्री की वेदना तथा रहस्य-वृत्ति का रागात्मक योग स्पष्ट परिलक्षित है। प्रकृति के ऐसे चित्रों को मूर्तिमान करने के लिये इन्द्रियों के विषयों—रंग, गंध, ध्वनि आदि—का समावेश आवश्यक है और यही उक्त उदाहरणों में है। कनक, सुनहला, महावर, अंजन तथा इन्द्रधनुष में वर्ण-योजना की सुरुचि (Sense of colour) स्पष्ट है। तीसरे चित्र की ध्वनि योजना भी सुन्दर है। प्रथम चित्र में 'झिलमिल' शब्द से टिमटिमाते तारे सामने आ जाते हैं। 'सुवामित' में गंध की विशेषता है।

महादेवी ने अधिकतर मानवीकरण कर के ही आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण किया है। उपर्युक्त उदाहरणों में भी प्रात' प्रियतम के पथ से आता है, 'साक्ष' प्रियतम की दूतिका के रूप में कवयित्री को मनाने आती है और निम्न उदाहरणों में रजनी-नायिका शृंगार कर के प्रियतम से मिलने—

धीरे धीरे उतर क्षितिज से,

आ वसन्त रजनी।

तारकमय नव खेणी बन्धन;

शीश-फूल कर शशि का नूतन।

रश्मिबलय सित धन-अवगुण्ठन;

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे,

चितवन से अपनी।

पुलकती आ वसन्त-रजनी।

सौन्दर्यास्वादन के लिये पावस ऋतु का सद्यः स्नातः नायिका के रूप में निम्न चित्र भी अवतरणीय है:—

रूपसि तेरा धन केश-पाश।

श्यामल श्यामल कोमल कोमल,

लहराता सुरभित केश-पाश।

नभ गंगा की रजत धार में,
 धो आई क्या इन्हें रात ?
 कम्पित है तेरे सजल अंग,
 सिहरा सा तन है सद्यस्नात !
 भीगी अलों की छोरों से,
 चूती बूँदों कर विविध लास !

—नोरजा

यह प्रकृति का चेतनीकरण-मानवीकरण क्यों हुआ है, इसके निम्न कारण हो सकते हैं—

१. स्वाभाविक कारण—भावना और कल्पना के अतिरेक में कवि प्रकृति को अपने ही प्राणों से अनुप्राणित कर उसका मानवीकरण कर देता है ।

✓ २. दार्शनिक कारण—महादेवी ने छायावाद का आधार सर्वात्मवाद बताया है जिसके अनुसार जड़-चेतन में एक ही सत्ता व्याप्त है । महादेवी के अनुसार 'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये, जो प्राचीन काल से बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती थी । छायावाद की प्रकृति घट, कूप आदि में भरे जल की एकरूपता के समान अनेक रूपों में प्रकट एक महाप्राण बन गई, अतः अब मनुष्य के अश्रु, मेघ के जल-कण और पृथ्वी के ओस-बिन्दुओं का एक ही कारण, एक ही मूल्य है । प्रकृति के लघु तृण और महान वृक्ष, कोमल कलियाँ और कठोर शिलायें, अस्थिर जल और स्थिर पर्वत, निविड़ अन्धकार और उज्ज्वल विद्युत रेखा, मानव की लघुता, विशालता, कोमलता, कठोरता, चंचलता और निश्चलता मोहज्ञान का केवल प्रतिबिम्ब न होकर एक ही विराट् से उत्पन्न सहोदर हैं । जब प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में कवि ने ऐसा तारतम्य खोजने का

प्रयास किया, जिसका एक छोर किसी असीम चेतन और दूसरा उसके सनीम हृदय में समाया हुआ है, तब प्रकृति का एक-एक अंश अलौकिक व्यक्तित्व ले कर जगमगा उठा। छायावादी कविता में इसी सर्ववादी प्रकृति-दर्शन की प्रधानता है। महादेवी को एक तो प्रसाद पन्त, निराला से प्रकृति के मानवीकरण की परम्परा मिली। दूसरे उन्होंने संस्कृत का गम्भीर अध्ययन किया था जहाँ प्रकृति पर चेतना का आरोपण हुआ है। वैसे पश्चिम के कुछ रोमानी कवियों और दार्शनिक कवियों का दृष्टिकोण भी सर्ववादी (Panttheistic) रहा है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि महादेवी और प्रसाद ने प्रेरणा वहाँ से नहीं ली चाहे पन्त ने ली हो। 'कमलेश' को इण्टरव्यू देते हुए महादेवी कहती हैं "विदेशी लेखक मुझे कोई पसन्द नहीं। शेली, बायरन आदि 'फिन फिन' करते नजर आते हैं। उनमें मुझे कुछ नहीं मालूम पड़ता, मेरा सर्वप्रिय ग्रन्थ तो ऋग्वेद है। बचपन से तो संस्कृत पढ़ती रही और अंग्रेजी कवियों को पढ़ने से पहले ही नीहार लिख चुकी थी। वह ७—८—९ दर्जे की रचना है।"

३. छायावाद स्थूलगत सूक्ष्म का चित्रण है। 'छायावाद सूक्ष्म का स्थूल के प्रति विद्रोह है किन्तु यथार्थ के प्रति नहीं' अतएव सौन्दर्य, स्वतन्त्रता, दिव्यता करुणा आदि की जो भावनाएं छायावादी कवि वास्तविक जगत में न देख सके, श्री-संयुत प्रकृति में उनको खोजने लगे। कवि प्रकृति पर अपनी ही भावनाओं का आरोप कर देता है।

किस प्रकार यह समस्त प्रकृति मानव से अभिन्न है और जड़-चेतन में कवियित्री को तद्रूपता भासित होती है, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट है—

× अज्ञेय-प्रियंकु

यह क्षण क्या ? द्रुत मेरा स्पन्दन;
 यह रज क्या ? नव मेरा मृदुतन;
 यह जग क्या ? लघु मेरा दर्पण;
 प्रिय तुम क्या ? चिर मेरे जीवन;
 मेरे सब, सब में प्रिय तुम;
 किस से व्यापार करूँगी मैं ?
 आँसू का मोल न लूँगी मैं !

—नीरजा

नीरजा की ५८ कविता में सारभूत सत्ता अथवा विराट सत्ता की अप्सरा के रूप में कल्पना की गई है, जिसमें सृष्टि-प्रलम्ब, ससीम-असीम, आलोक-तिमिर एक संतुलित नृत्य का रूप धारण कर लेते हैं—

लय गीत मंदिर, गति ताल अमर,
 अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !
 आलोक तिमिर सित असित चोर,
 सागर गर्जन रुनझुन मंजीर !
 उड़ता झंझा मे अलक जाल,
 मेघों में मुखरित किकिणि स्वर !
 अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

यहाँ समस्त प्रकृति, ब्रह्म का ही अंग है। इस प्रकार प्रकृति, ब्रह्म और मानव दोनों से अभिन्न है। अतएव महादेवी की रहस्य-भावना में, आत्मा परमात्मा की मिलन-साधना में, प्रकृति विशेष सहायक सिद्ध हो सकती है। यही नहीं महादेवी ने अमर प्राकृतिक उपकरणों से अपना ही शृंगार कर लिया है—

कमल दल पर किरण अंकित
 चित्र हूँ मैं क्या चितरे ?
 बादलों की प्यालियाँ भर
 चांदनी के सार से;

* तलिका का कर इन्द्र-धनु
 तुम ने रंगा उर प्यार से;
 काल के लघु अश्रु से
 धुल जायेंगे क्या रंग मेरे ?
 तड़ित सुधि में, वेदना में
 करुण पावस रात भी;
 आंक स्वप्नों में दिया
 तुम ने वसन्त प्रभात भी;
 क्या शिरीष-प्रसून से
 कुम्लायेंगे यह साज मेरे ?

—नीरजा

ऐसी अवस्था में महादेवी में प्रकृति के साथ तादात्म्य भावना के अनेक चित्र मिलते हैं। ऐसा दिखाई देता है कि प्रकृति उन के जीवन का अविभाज्य अंग बन गई —

'मैं बनी मधुमास आली
 आज मधुर विषाद की घिर करुण आई यामिनी,
 बरस सुधि के इन्दु से छिटकी पुलक की चाँदनी
 उमड़ आई री दृगो में
 सजनि कालिन्दी निराली'।

—नीरजा

अथवा

विरह का जल जात जीवन, विरह का जलजात
 वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास
 अश्रु चुनता दिवस इस का अश्रु गिनती रात
 जीवन विरह का जल जात।

—नीरजा

अथवा

मैं नीर भरी बुल की बबली—सांध्यगीत

नीरजा की एक अन्य कविता में कवयित्री तादात्म्य भावना के लिए विरोधी तत्वों को चुन अपनी महत्ता अनोखी विधि से व्यक्त करती है—

जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर ।
 दोनों मिल कर देते रजकण,
 चिर करुण मधुर सुन्दर सुन्दर ।
 जग पतझर का नीरव रसाल,
 पहने हिमजल की अभ्र माल ।
 मैं पिक बन गाती डाल डाल,
 सुन फूट फूट उठते पल पल,

सुख-बुख मञ्जरियों के अंकुर ।

यहाँ कवयित्री प्रकृति से अधिक सुखी-समृद्ध है, अतएव वह करुण प्रकृति को भी माधुर्य प्रदान करती है ।

उद्दीपन रूप में प्रकृति कवि के भावों को उद्दीप्त करती है । महादेवी में यह उद्दीपन का रूप ही सर्वाधिक है । किन्तु यहाँ प्रकृति का उद्दीपन रूप वैसे नहीं है, जैसे रीतिकाल में था । रीतिकालीन कवि प्रकृति का स्वतन्त्र सौन्दर्य देखने में असमर्थ थे । किन्तु यहाँ उद्दीपन रूप में भी प्रकृति अपनी स्वतन्त्र सत्ता-महत्ता बनाये रखती है । निम्न उदाहरण से यह स्पष्ट है ।—

पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन,
 आज नयन आते क्यों भर भर ?
 सकुच सजल खिलती शेफाली;
 अलस मौलश्री डाली डाली;
 बुनते नव प्रवाल कुञ्जों में
 रजत श्याम तारों से जाली;
 शिथिल मधु-पवन, गिन-गिन मधु-कण
 हर सिंगार भरते हैं भर भर ।
 आज नयन आते क्यों भर भर !

ज्योत्स्ना-स्नात वासंती निशा में शेफाली का किसी के स्पर्श से सकुचाना, लजाना और खिलना, मौलश्री का अलसाकर शयन करना आदि—ये सब मादक वातावरण यदि उद्यान में एकाकी घूमती हुई नायिका को कम्प रोमांच और अश्रु सात्विकों का सम्भार न दे तो और क्या दे ? यहाँ प्रकृति ने केवल उद्दीपन के निर्जीव उपकरण ही नहीं जुटाये अपितु वह भी सप्राण है, हास-विलास में मग्न है ।

इस प्रकार उद्दीपन रूप में भी प्रकृति का चेतनीकरण-मानवीकरण हुआ है । इसी से वह मूक से मुखर बन गई है । अब वह दूतिका नहीं सगिनी है, सुख-दुःख में साथ देने वाली सहचरी है । उद्दीपन रूप में भी कवि का पूरा तादात्म्य प्रकट होता है । यथा निम्न उदाहरण में जीवन को विरह का जलजात बने देख, काल (समय) शुभाकांक्षी बनकर पल (क्षण) रूपी आंसुओं का हार उपहार स्वरूप देकर उसकी कुशल-क्षेम, और पवन परम निश्वासे भरता हुआ उसकी व्यथा-कथा पूछता है :—

काल इस को दे गया, पल-आंसुओं का हार;

पूछता इस की कथा निश्वास ही में घात !

जीवन विरह का जल जात ।

रीतिकाल में नायक-नायिका उद्दीप्त होते थे, अब कवि स्वयं आश्रय होता है । इस प्रकार 'भावाक्षिप्त' तथा 'उद्दीपन रूप' दो ही प्रकृति के साथ तादात्म्य हो जाता है और यही रूप महादेवी सर्वांगिक है ।

महादेवी में परोक्ष के संकेत के रूप में प्रकृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है । प्रकृति उस प्रणेत की प्रतिकृति है । प्रकृति का अनन्त सौन्दर्य, उसका विपुल व्यापार, उस अनन्त-अज्ञात की ओर इंगित (संकेत) करता दिखाई देता है । पन्त जी को वह रहस्यमय नक्षत्र-मौन निमन्त्रण देता है, तड़ित से इंगित करता है, सौरभ से सन्देशा भेजता है, लहरों से कर उठाकर बुलाता और खद्योतों से पथ दिख

लाता है । यही नहीं ओस में दुलककर कवि का ध्यान भी खींचता है ।
महादेवी को भी आकाश मुस्का कर प्रियागमन की सूचना देता है—

मुस्काता संकेत भरा नभ

अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ? -

इसीलिये तो प्रकृति उल्लास-मग्न है—

विद्युत् के छल स्वर्णपाश में बँध हँस देता, रोता जलधर

अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर;

दिन निशि को, देती निशि दिन को

कनक-रजत के मधु-प्याले हैं ।

अलि क्या प्रिय आने वाले हैं ?

—तीरज

नये घन' भी प्रियतम से सन्देश लाते हैं —

लाये कौन सन्देश नये घन !

अम्बर गवित

हो आया नत

चिर निस्पन्दन हृदय में उस के उभड़े री पुलकों के साधन ।

लाये कौन सन्देश नया घन ।

जड़ जग स्पन्दित

निश्चल कम्पित

फूट पड़े अवनी के संचित अपने मनुतम

अंकुर बन बन ।

लाये कौन सन्देश नया घन ।

परोक्ष के सकेत के अतिरिक्त परोक्ष की अभिव्यक्ति-आभास के रूप में भी प्रकृति-चित्रण हुआ है । इसीलिए वह 'निर्भर' कण-कण में बिखरा' हुआ है (नीहार) । अतएव परोक्ष से मिलने के लिए वे प्रत्यक्ष के कण-कण से परिचित हो गई हैं—

अलि, मैं कण-कण को जान चली !

सब का क्रन्दन पहचान चली !

—दीपशिखा

आलंकारिक रूप में महादेवी ने प्राकृतिक उपमानों के चयन में विशेष सुरुचि का परिचय दिया है । प्रकृति के नाना पदार्थ कवयित्री की अलंकरण-वृत्ति के उपकरण-उपादान बने हैं । इसका कारण यह है कि मन के शतरंगी स्वप्नों को प्रकृति की रंगमयी वर्णच्छटा आकने में पूर्ण समर्थ हो सकती है । प्रिय-मिलन के साधना-पथ पर बढते हुए महादेवी की जिस हर्षोल्लास तथा विरह-वेदना का अनुभव होता है उसको व्यक्त करने के लिए क्रमशः वसत और वर्षा ऋतुओं के उपकरणों का उन्होंने अधिक प्रयोग किया है । यथा निम्न पक्तियों में विरह की तीव्रता की व्यंजना में 'अधिक' अलंकार में प्रयुक्त प्राकृतिक उपकरणों, 'झझावात' और 'प्रलय के घन', ने कितना योग दिया है—

मेरी निश्वासों से बहती रहती झंझावात

आँसू में दिन रात प्रलय के घन करते उत्पात'

उपरोक्त प्राकृतिक उपमानों के चयन में महादेवी की दृष्टि प्रभाव-साम्य पर विशेष रूप से रही है । प्रसाद ने भी 'आँसू' में अपनी वेदना-व्याकुलता को 'झंझा झकोर' के द्वारा व्यक्त किया था—

‘झंझा झकोर गर्जन है

बिजली है नीरद माला

पाकर इस शून्य हृदय को

सबने आ डेरा डाला’

महादेवी को करुणा के कारण घन का उपमान बड़ा प्रिय है—

(१) घन बनूँ घर दो मुझे प्रिय

—नीरजा

(२) मैं नीर भरी दुःख की बदली

—सांध्यगीत

घन की इसी कल्याणी प्रकृति की परिचायक ऋग्वेद का निम्न-पंक्ति है—

सुजातासो जनुषा एकमवक्षसो दिनो अर्था ग्रमृतं नाम मेजिर ।

अर्थात् “कल्याणार्थ उत्पन्न, ज्योतिर्मय वक्षवाले इन आकाश के गायकों की ख्याति अमर है।” महादेवी पृथ्वी पर ही उन आकाश के गायकों की अमर गायिका हैं।

✓ छायावादियों ने प्रतीकात्मक शैली के द्वारा अपनी भावनाओं और विचारों को स्पष्ट किया है। ये प्रतीक प्रायः प्रकृति के क्षेत्र से लिए गए हैं। इन प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग इस प्रबलता से हुआ है कि इनको साथ रखकर ही छायावाद के अस्तित्व की सम्भावना हो सकती है। एक बात उल्लेखनीय है कि छायावादी कवियों ने प्रतीकों का प्रयोग जहाँ शैली के रूप में किया है वहाँ अनेक स्थानों पर शैली तथा विषय वस्तु दोनों रूपों में भी और ऐसा होने से दुहरा अर्थ निकलता है। यथा महादेवी की निम्न कविता लीजिए जिसमें परोक्ष सत्ता को नारी का स्वरूप दे दिया गया है—

रूपसि तेरा घन केश-पाश
भीगी झलकों की छोरों से,
चूती बूँदे कर विविध लास

—नीरजा

यदि कोई इसमें परोक्ष सत्ता का आभास न भी पा सके, तब भी यह चित्र मनोरम है।

महादेवी ने गहन-गूढ़ आध्यात्मिक विचारों को प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से किस सरल-सुबोध रीति से व्यक्त किया है, इसके लिये निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

क्या नई मेरी कहानी।
सजल बादल का हृदय कण।
चू पड़ा जब पिघल भू पर,
पी गया उसको अपरिचित
तृषित बरका पंक का उर,
मिट गई उस से तड़ित सा,

हाथ वारिद की निशानी ।
करुण वह मेरी कहानी ।

जीव के ब्रह्म से पृथक् होने की अवस्था का जो अप्रिय परिणाम हो सकता है वही उपर्युक्त कविता से स्पष्ट है ।

इसी प्रकार निम्न पक्तियों में मुर्झाई कलियां पीड़ित-उपेक्षित नारियो की प्रतीक है—

मेरे गोल पलक छुओ मत,
मुर्झाई कलियां देखो ।

मानसिक और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का प्रतीकात्मक चित्रण सांध्य गीत की इन पक्तियों में स्पष्ट है—

“कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो ।
जग पड़ा छू अश्रु धारा
हत परोँ का विभव सारा
अद्य अलस बन्दी गुँ का
ले उड़ेगा शिथिल कारा
पख पर वे सजल सपने तोल दो ।”

अनेक प्राकृतिक उपकरणों का प्रसंगानुकूल सुन्दर प्रयोग हुआ है । नीरजा की प्रथम कविता में ही भाव-व्यञ्जक प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग हुआ है और यही क्रम आगे की कविताओं में भी देखने को मिलता है ।

इस प्रकार विषय और अभिव्यक्ति में अतुल योग देने के कारण महादेवी की कविता के लिए प्रकृति वरदान सिद्ध हुई है । किन्तु प्रकृति भी महादेवी की लेखनी के स्वर्णिम स्पर्श से जगमगा उठी है, वह नीलम तथा पद्मरागों से खेलने लगी है । जिस साधिका का ‘चिर सुन्दर’ से नाता हो, उसकी सहयोगिनी प्रकृति वैभव-वेष्टित न हो तो

और किसकी होगी ? प्रकृति का निम्न वैभव-वलित स्वरूप आस्वा-
दनीय है—

मत अरुण घूँघट खोल री ।
तरल सोने से धुली यह
पद्मरागों से सजी यह
उलभ अलकें जायेगी
मत अनिल पथ में डोल री ।
निशि गई मोती सजाकर
हाट फूलों में लगाकर
लाज से गल जायेंगे
मत पूछ इन से मोल री
स्वर्ण कुम कुम में बसा कर
है रंगी नव मेघ चूनर.....।

उनके निशिदिन, रजत और कंचन से आंगन को लीपते हैं और
आत्म विभोरता में मधु से पूर्ण रजत-कनक के प्यालों का विनिमय
भी करते हैं। इतना ही नहीं, इनका अलि और अन्धकार भी नीलम
सा है।

✓ डा० नगेन्द्र ठीक ही लिखते हैं “कि महादेवी की कला तितली के
पंखों और फूलों की पंखड़ियों से चुराई हुई है।” निस्सन्देह इनकी रंगीन
कल्पनाओं और कला के साज-शृंगार का आधार प्रकृति है—छिन्न मुक्ताव-
लियों के मंजुल बन्दनवार, सौरभ का केश जाल, बुद बुद की लड्डियों
में ग्रथित श्यामल केशकलाप, मकरंदपगी केसर पर जागृत मधुपरियां,
संध्या के शुभ्र-मुख पर किरणों की फुलझडिया, नभ की दीपावलियां,
मर्मर का मधुर संगीत, अलिगुंजित मीलित पंकज के नूपुर, अलिगुंजित
पक्षों की किकिणीं, चन्द्रमा की चाँदनी की थाली, मरकत का सिंहासन,
कुन्दकुसुम के मधु पुञ्ज, नव इन्द्र-धनुष सा शतरंगी चीर, मन्द मल-

यानिल के उच्छ्वास, छलकता मधु का कोष, शशि का नूतन शीश-फूल तारकमय नव वेणी-बन्धन, नीलम मन्दिर की हीरक प्रतिमा सी चपला मेघो का मतवालापन, अवनि अम्बर का रुपहलापन—ऐसे सौन्दर्य और ऐश्वर्य से महादेवी की सभी कृतियां जगमगा रही हैं। यह भी स्पष्ट है कि महादेवी ने अधिकांशतः साध्यकालीन उपकरणों को ही लिया है।

रहस्यवादी होने के कारण महादेवी ने प्राकृतिक क्षेत्र में अधिकांशतः मांगलिक सामग्री का, पूजा की सामग्री का प्रयोग किया है तथा (नी० ६।)

रंगों में महादेवी को रजत और स्वर्णम-वर्ण बहुत प्रिय हैं और फूलों में कमल, हर सिंगार और पाटल। वैसे अशोक वकुल, मौलश्री, रजनी गन्धा, परिजात पुष्प भी आए हैं। पक्षियों में उनको पिक. चातक, मयूर और मधुप प्रिय हैं।

सारतः महादेवी की कविता प्रकृति से इतनी अनुप्राणित है कि ऐसा देखाई देता है कि प्रकृति को इन्होंने आत्मसात कर लिया है और वह वय भी उसमें समाहित हो गई है। यद्यपि महादेवी का प्राकृतिक क्षेत्र सीमित है—पंत, प्रसाद और निराला का क्षेत्र विस्तृत है—और उन्होंने केवल मनोरम रूप ही लिए हैं, प्रसाद और निराला के मान परुष विराट नहीं, पंत की मीनाकारी भी उनमें नहीं, तथापि प्राकृतिक सीमित सामग्रियों की विविध आकर्षक संयोजनाएँ तथा रंगों का तरल मिश्रण उनकी अपनी वस्तु हैं।

महादेवी का गीत काव्य

मानव के उच्चारण प्रयत्न का सर्वप्रथम स्फुरण गीत रहा होगा। जैसे प्रभात की 'प्रथम रश्मि' का स्पर्श पाकर रंगिणी चहचहा उठती है, मेघों को उमड़ता-धुमड़ता देख मयूर नाच उठता है, बसन्त को आता देख कोकिल कूक उठती है, उसी प्रकार मानव के हर्ष-हूक के साथ गीत भी फूट पड़ा होगा क्योंकि मानव हृदय के हर्ष-विषादमय स्पंदनों के साथ गीत का सहज सम्बन्ध है। इन कवियों की निम्न पक्तियाँ गीत के मूल को भली-भाँति व्यक्त कर रही हैं—

वियोगी होगा पहला कवि,
 ग्राह से उपजा होगा गान
 उमड़ कर आँखों से चूषाप,
 बही होगी कविता अजान।

—पन्त, पल्लव।

मैं रोया तुम कहते हो गाना।
 मैं फूट पड़ा, तुम कहते छन्द बनाना ॥

—बच्चन

मैं अश्रु-तरल,
 × × × ×
 मैं फूट पड़ी ले स्वर वैभव

महादेवी, दीप-शिक्षा

रवन का हँसना ही तो गान

गुप्त, यशोधरा

मानव के सुख-दुःख जितने सनातन हैं, गीत भी उतने ही पुरातन हैं। गीत के मूल में मनुष्य की सहज-प्रवृत्ति है। गायक अपने सुख-

दुःखों को अधिक सँ अधिक व्यापकता देने की इच्छा करता है और यह गाने की अनिवार्यता सिद्ध करता है। “आनन्द से मनुष्य जब चंचल होता है तब भी गाता है और व्यथा से जब हृदय भारी हो जाता है, तब भी गाता है, क्योंकि एक उसके हर्ष को बाहर फँलाकर जीवन को संतुलन देता है और दूसरे उसकी निस्तब्धता में संवेदन की लहर पर लहर उठाकर जीवन को रूढ़ होने से बचाता है।”^१

डा० नगेन्द्र ने ठीक ही लिखा है, हिन्दी में—विश्व के लगभग सभी साहित्यों में—गीत परम्परा आदि काल से ही चली आती है। या यों कहिए कि कविता का मूल रूप ही गीत है।

महादेवी ने एक मात्र गीत ही लिखे हैं। इसके कारण निम्न-लिखित हो सकते हैं:—

१. आत्म-निवेदन का सहज माध्यम— “मेरे गीत मेरा आत्म-निवेदन मात्र है।”^२

वैसे भी गीत की शक्ति वाणी से अधिक है, क्योंकि वह शब्दों के चयन को लय में संतरण देकर उनकी व्यापकता और बढ़ा देता है।

२. गीति काव्य की स्त्रैण प्रकृति—गीतिकाव्य की हार्द (Spirit) कोमल है जो नारी के स्वभावानुकूल है। “बंसे तो विश्व-साहित्य में ही संख्या और गुण के परिमाण में लेखिकाएँ और कवयित्रियाँ कम ही हुई हैं, परन्तु जो हुई उन्होंने सदा मुक्तक गीति-काव्य को ही अपनाया। गार्गी वाचकनवी हो या स्ट्रावों मुक्ताबाई हो या हला, घोषा हो या शीला-भट्टारिका, दया हो या ताज, सुभद्रा कुमारा चौहान हो या सरोजिनी नायडू, क्रिस्चिना रोजेटी हो या एला-वीलर विलकाक्स, एलिजाबेथ ब्राउनिंग हो या तोरुदत्ता किसी कवयित्री ने कोई महाकाव्य लिखा हो ऐसा उल्लेख साहित्य के इतिहास में

१ महादेवी-विवेचनात्मक गय पृष्ठ १०२.

२ (महादेवी, सांध्य-गीत की भूमिका)

नहीं मिलता । यानी नारी की काव्य-प्रतिभा ही गीति-काव्य परक है, यह स्पष्ट है ।”

महादेवी भी इसका अपवाद नहीं है । महादेवी में कोमल रस—वियोग शृंगार और करुणा-भाव ही प्रमुख हैं, जो गीत के अनुकूल हैं ।

३. संस्कार और शिक्षा — ‘नीरजा’ को अपनी माता को भेंट करते हुए महादेवी लिखती है—“जिनके मधुर कण्ठ से निकले हुए मीरा के पद प्रभाती और लोरी के समान बचपन में मुझे जगाते सुलाते रहे हैं, उन्हीं जननी को गीतो की एक अर्किचन भेंट ।”

वैसे भी महादेवी ने बचपन में “गाना सीखा था” सितार भी जानती है और कुछ दिनों तक इसराज भी सीखा । इसके अतिरिक्त महादेवी अपने विस्तृत-व्यवस्थित अध्ययन के बल पर भारतीय समृद्ध गीति-परम्परा से परिचित रही हैं, उषा और मारुत के गीत तो उन को विशेष प्रिय रहे हैं । दीप-शिखा की भूमिका में वे लिखती हैं—माँ की भावभरी गीताञ्जलियाँ, घर में जन्म-विरह, निवाह आदि शुभ अवसरों पर गाए जाने वाली गीत कथाएँ, परिचारको में ऋतु, पर्व आदि से सम्बन्ध रखने वाले लोक-गीत, कलाविदों का ध्वनि-संगीत, प्राचीन ज्ञान और सौन्दर्य द्रष्टाओं के वेद-छन्द, माधुर्य भरे संस्कृत और प्राकृत पद और पिछले अनेक वर्षों में सुने सहज ग्राम गीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहा है ।”

४. द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया—महादेवी जब साहित्य क्षेत्र में आईं तब तक छायावाद के प्रमुख कवि प्रसाद पंत, निराला गीति-रचना कर रहे थे । यह परम्परा महादेवीके अनुकूल थी । इन कवियों का दृष्टि-कोण वस्तुगत बहिर्मुखी न होकर भाव-गत-अन्तर्मुखी था । इनकी व्यक्तिवादी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का सहज-माध्यम गीति काव्य ही बन सका । महादेवी

ने लिखा भी है “हिन्दी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत प्रधान ही कह जायगा। हमारा व्यस्त और व्यक्ति प्रधान जीवन हमें काव्य के किसी अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपने प्रत्येक सांस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं अपने प्रत्येक कम्पन को अंकित करने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं सम्भव है यह उस युग (द्विवेदी युग) की प्रतिक्रिया हो जिसमें कवि का आदर्श अपने विषय में कुछ न कहकर संसार भर का इतिहास कहना था, हृदय की उपेक्षा कर शरीर को आदृत करना था।”

अब हम गीत के स्वरूप का विश्लेषण करेंगे।

महादेवी ने गीति काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है—“सुख दुःख की भावावेश-मयी अवस्था विशेष का, गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।” इस परिभाषा में गीति-काव्य के मूलतत्त्व स्पष्ट हैं। प्रथम तत्त्व जिस पर महादेवी ने बल दिया है, वह है सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था। प्रायः भावावेश मयी अवस्था वैयक्तिक सुख दुःखों को ध्वनित करने में देखी जाती है, अतएव गीति-काव्य का प्रथम तत्त्व है—आत्माभिव्यंजन अथवा आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति। गीति काव्य आत्म-गत अथवा अन्तर्भाव व्यञ्जक है, परार्थ-निरूपक अथवा परगत नहीं। भावावेशमयी अवस्था से गीति-काव्य की सशक्त अनुभूति—अनुभूति की सत्यता-नव्यता अथवा सचाई-ताजगी—की ओर संकेत भी है। इसी में गीत की निरायास बरबस अभिव्यक्ति की ओर इंगित है। गीत बनाया नहीं जाता, वह स्वयं बन जाता है।

जैसे हर्षातिरेक अथवा दुःखातिरेक में हास्य-रुदन अनिवार्य हो उठते हैं, फूट पड़ते हैं, उसी प्रकार गीत भी फूट पड़ता है। इसीलिए गीत का सम्बन्ध कल्पना अथवा बुद्धितत्त्व से उतना नहीं, जितना कि हृदय की रागात्मक भावनाओं से है, जो सहज ही उच्छ्वसित हो उठती है। फिर भी गीत-रचना की सहजता अथवा भावावेशमयी

अवस्था के साथ एक प्रयत्न या संयम की भी आवश्यकता है। इसी तथ्य की ओर संकेत करती हुई महादेवी लिखती हैं—“कवि को संयम की परिधि में बंधे हुये जिस भावातिरेक की आवश्यकता होती है वह सहज प्राप्य नहीं, कारण हम प्रायः भाव की अतिशयता में कला की सीमा लाँघ जाते हैं, और उसके उपरांत भाव के संस्कार-मात्र में मर्म-स्पर्शिता का शिथिल हो जाना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ—दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति, आर्त-क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका प्रकाशन एक दीर्घ निश्वास में भी है, जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती और उसका प्रकटीकरण निःस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त-क्रन्दन के पीछे छिपे हुए भावातिरेक को दीर्घ-विश्वास में छिपे हुए संयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा। § “इस प्रकार गीति काव्य अनायास किन्तु कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह कला भी बाह्यारोपित नहीं होती, अन्तर्स्फुरित होती है—यह संयम भी भीतर से आता है।

यह समझ लेना आवश्यक है कि आत्माभिव्यक्ति का यह अर्थ नहीं कि कवि आत्म-चरित्रमूलक भावों की अभिव्यक्ति करे, वह समाज की अभिव्यक्ति भी अपने ‘मैं’ के माध्यम से करता है। ऐसी अवस्था में उसकी ‘मैं’ का ‘पर’ के साथ तादात्म्य हो जाता है और व्यक्ति के द्वारा समष्टि की अभिव्यक्ति होने लगती है। इसका कारण यह है कि गीतिकार को केवल व्यक्तिगत परिस्थितियाँ ही प्रभावित नहीं करती, वह सामाजिक प्राणी है, सामाजिक परिस्थितियाँ भी उसमें आवेश लाती हैं; किन्तु समाज अथवा वस्तु से प्रभावित होने के पश्चात्

समाज अथवा वस्तु गौण हो जाती है तज्जन्य रागात्मक अनुभूति ही प्रमुख हो जाती है। गीति-काव्य की आत्म-निष्ठता अथवा आत्म-भिव्यक्ति का यही अर्थ है। निराला की निम्न पंक्तियां गीतिकार की 'मैं' को, अधिकरण निष्ठता को, भली भाँति स्पष्ट कर रही हैं—

मैंने "मैं" शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
भट उमड़ बेवना आई।

—अधिवास, परिमल

महादेवी की परिभाषा में दूसरा तत्व है, "अवस्था विशेष का।" निःसन्देह गीति-काव्य के लिये एक विशेष क्षण, गीति-काव्यात्मक वृत्ति (Lyrical mood) की अपेक्षा है। इस समय तारतम्य पूर्ण, अविच्छिन्न-अखण्ड, मानसिक स्थिति होती है। एक ही भाव होता है जो उस समय के लिए पूर्ण सत्य होता है, चाहे वह चिर सत्य न रहे। अनुभूति ही लक्ष्य में रह जाती है, उस अनुभूति के कारण-साधन भी अलक्ष्य हो जाते हैं। यही अनुभूति की इकाई या अन्विति है। गीति-काव्य में इस तीव्रतम अवस्था, क्षणिक किन्तु तीव्र ज्योति का विशेष महत्व है। क्योंकि इस अनुभूति-ऐक्य से ही प्रभावान्विति आती है।

महादेवी की उक्त परिभाषा में 'गिने' शब्द का भी अपना महत्व है। इसका तात्पर्य गीति-काव्य की संक्षिप्तता से है! भावावेशमयी अवस्था या अनुभूति की तीव्रतम स्थिति की भावधारा बहुत दूर तक नहीं चल सकती। विस्तार से भाव सघनता में शैथिल्य आ जाता है। मानव का स्वभाव चांचल्य भी उसे एक अवस्था में अधिक देर तक मग्न नहीं रहने देता। दूसरे मुख्य भाव के अतिरिक्त इतर भावों का

इसमें स्थान नहीं। अतएव सशक्त अनुभूति सदैव संक्षेप में अभिव्यक्त होती है।

‘चुने’ शब्दों का सम्बन्ध शब्दों के चयन से है। एक तो शब्द भावानुकूल हों—गीति-काव्य की कोमल प्रकृति के अनुकूल कोमल-कांत पदावली हो, दूसरे ये शब्द संगीत के अनुरूप हों। गीति-काव्य में शब्द-चयन के सम्बन्ध में राम खेलावन पाण्डेय लिखते हैं—“भावना प्रवाहमान प्रवाह की भांति है और कविता उस प्रवाह में बाँध लगा नहर काटने के कृत्रिम प्रयास जैसा। भाषा का अतः कृत्रिम बांधन स्वीकार कर भावना अभिव्यक्त होती है, ऐसी अवस्था में शब्दावली और उनका सामंजस्य केवल ऐसा नहीं होना चाहिए कि अर्थ स्पष्ट हो जाय बल्कि भावना अपनी सम्पूर्ण कल्पना-क्षमता के साथ सहसा प्रकाशित और चमत्कृत हो उठे। इस चमत्कार उत्पन्न करने में शब्दों का विशिष्ट मिश्रण ही क्षम हो सकता है और इस क्षमता के सफल-प्रयास में ही गीति-काव्य की सफलता है। कथा प्रवाह के कारण प्रबन्ध-काव्यों में निस्तेज पंक्तियाँ भी खप जाती हैं। गीति-काव्य में ऐसा सम्भव नहीं क्योंकि न तो इस में कथा प्रवाह के कारण वेग है और न कुछ पंक्तियों के निस्तेज होने के कारण उनकी पृष्ठ-भूमि पर अन्य पंक्तियों के अधिक चमत्कृत होने का अवसर है।” शब्द योजना के सम्बन्ध में पंत जी का यह कथन भी उल्लेखनीय है—“जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक-दूसरे पर अवलम्बित है, ऋणानुबंध है, उसी प्रकार शब्द भी, इनका आपस का सम्बन्ध, सहानुभूति, अनुराग-विराग, जान लेना, इनकी पारस्परिक प्रीति मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है? प्रत्येक शब्द एक कविता है: लक्ष और मील द्वीप की तरह कविता भी अपने बनाने वाले शब्दों की कविता को खा-खाकर बनाती है।” §

§ पल्लव की भूमिका

‘स्वर साधना के उपयुक्त’ से संगीतात्मकता व्यंजित होती है। संगीत गीति-काव्य का एक प्रमुख उपादान है। कविता में छंद की आवश्यकता संगीत की महता की स्वीकृति है। “गीति-काव्य तो कविता की कविता है।” यहाँ इसकी अनिवार्यता और भी सिद्ध है। किन्तु संगीत से तात्पर्य यहाँ शास्त्रीय संगीत—जिसका लक्ष्य स्वर प्रसार होता है—की रक्षा से नहीं, केवल संगीतात्मक होना आवश्यक है, संगीतमय होना जरूरी नहीं, क्योंकि यह संगीत भी शब्द और अर्थ से स्वनः ही ध्वनित हो उठता है। महादेवी की इस दूसरी परिभाषा से यह स्पष्ट है—“साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सूख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में ही गेय हो सके।” इस प्रकार यह संगीत भी अन्तर्द्रवित होता है, बाह्यारोपित नहीं और भावनाओं के प्रसार तथा छंद की गति के संतुलन-सामंजस्य से उत्पन्न होता है।

इस प्रकार क्षणिक किन्तु तीव्र आत्मानुभूति की, गिने चुने शब्दों में निरायास किन्तु समन्वित एवं संगीतात्मक अभिव्यक्ति को गीत कहते हैं।

महादेवी एक मात्र गीत रचयिता है। ‘नीहार’ और ‘रश्मि’ की कुछ कविताएँ स्फुट भी हैं—जैसे ‘रश्मि’ की “तुम हो विधु के विम्ब” पंक्ति वाली बीसवी कविता। इन्होंने काव्य के किसी अन्य माध्यम से अभिव्यक्ति नहीं की—पंत, निराला प्रसाद अन्य माध्यमों की ओर भी गए हैं।

महादेवी ने गीतों में सदैव आत्माभिव्यक्ति ही की है, ‘मैं’ रूप में अभिव्यक्ति की है। ऐसी वैयक्तिक चेतना अन्य छायावादियों में पूर्ण रूपेण नहीं। निराला के गीत बाह्य-वर्णन प्रधान हैं, पंत और प्रसाद में भी ऐसे गीत मिल जाते हैं। यही कारण है कि महादेवी में कहीं स्वतन्त्र प्रकृति वर्णन नहीं हुआ। प्रसाद के ‘बीती विभावरी

जाग री' जैसा गीत यहां नहीं मिल सकता । किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि महादेवी ने व्यक्ति के माध्यम से सामूहिक भावना की अभिव्यक्ति नहीं की । वस्तुतः छायावादियों ने स्वात्मक और परात्मक भेदों को प्रायः नहीं माना । बौद्धिकता और हादिकता अथवा भाव-प्रवणता को पन्त और निराला एक मानते हैं । “रश्मि” की भूमिका में महादेवी लिखती है:—

‘मेरे लिए तो मनुष्य एक सजीव कविता है, कवि की कृति तो उस सजीव कविता का एक शब्द-चित्र मात्र है, जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जा सकती है ।—जिस प्रकार वीणा के तारों के भिन्न-भिन्न स्वरों में एक प्रकार की एकता होती है जो उन्हें एक साथ मिलकर चलने की और अपने साम्य से संगीत की सृष्टि करने की क्षमता देती है उसी प्रकार मनुष्य के हृदयों में एकता छिपी हुई है । यदि ऐसा न होता तो विश्व का संगीत ही बेसुरा हो जाता..... ।

जो कुछ हो मेरा विश्वास है कि यदि हृदयवाद में हम वाह्य विश्व का अस्तित्व एक दम भूल जायें तो सम्भव है कि कुछ दिनों बाद हम अपने वाह्य रूप की अभिव्यक्ति के लिए उतने ही आकुल हो उठें जितने पहले हृदय के लिए थे ।” § निस्संदेह महादेवी के गीतों में हमें हित-समन्वित हृदयवाद के ही दर्शन होते हैं । हम रामखेलावन पाण्डेय के इस कथन से सहमत नहीं हैं—“महादेवी के गीतों में मानवता के प्रति जो सहृदयता है, वह उसके सामूहिक रूप अथवा जन-साधारण के लिए नहीं है । साधना का एकान्तिक रूपग्रहण करने वाली कविता में मानवता के सामान्य दर्शन सम्भव नहीं हो सकते” वस्तुतः पाण्डेय जी की “साधना का एकान्तिक स्वरूप” महादेवी के उक्त कथन के आलोक में परखना चाहिए । वैसे इस ‘साधना’ के स्वरूप का स्पष्टी

हरण पुस्तक के प्रथम लेख में हो ही चुका है। 'नीरजा' की इस कविता में पीडित-शोषित तथा उदास-उन्मन मानवता से कवयित्री की एकात्मकता दर्शनीय है :—

मेरे हँसते अधर नहीं जग—

की आँसू-लड़ियाँ देखो ।

मेरे गोले पलक छुओ मत ,

मुझाँई कलियाँ देखो ॥

इसी प्रकार "नीरजा" की १०, २१, २९, ३३, ५२, ५७ आदि कविताओं के सम्बन्ध में समझना चाहिए ।

महादेवी में भाव-प्रवणता तथा अन्तः स्फूर्ति (Spontaneity) पर्याप्त है, किन्तु पूर्ण नहीं। ये न तो प्राचीन कवयित्री मीरा के समान है और न आधुनिक कवियों, बच्चन, नरेन्द्र और अंचल के समान। इन कवियों की अभिव्यक्ति अधिक मुखर है, महादेवी के समान, प्रतीकों के माध्यम से प्रच्छन्न नहीं। प्रतीकों के अतिरिक्त चित्तन और कल्पना भी महादेवी की अन्तर्ज्वाला को शान्त कर देते हैं। किन्तु यहाँ पन्त के समान शान्ति तथा आवेग हीनता भी नहीं, निराला ही उद्दामता का प्रश्न भी यहाँ नहीं उठता। साकेत के नवम सर्ग के गीतों की कृत्रिम अनुभूति भी यहाँ नहीं।

यदि पन्त के गुंजन, निराला की गीतिका तथा महादेवी की नीरजा के गीतों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो महादेवी के गीतों की मार्मिकता सहज स्पष्ट हो जाती है। तात्पर्य यह है, कि कल्पना, चित्तन और सांकेतिक शैली के होते हुए भी इन गीतों में अपेक्षित मार्मिकता का अभाव नहीं। महादेवी के अनेक ऐसे गीतों में से कुछ गीत लीजिए—

१.

शलभ में शापमय घर हूँ,
किसी का दीप निष्ठुर हूँ ।

—सांध्य गीत

२. जाने किस जीवन की सुधि ले ,
लहराती आती मधुर बयार ।
—सांध्य गीत
३. विरह का जल-जात जीवन विरह का जल-जात ,
—नीरजा
४. क्या पूजा क्या अर्चन रे ।
—नीरजा
५. प्रिय सुधि भूले री में पथ भूली ।
—नीरजा
६. तुम्हें बांध पाती सपने में ।
—नीरजा
७. पथ देख बिता दी रैन ,
में प्रिय पहचानी नहीं ।
—नीरजा
८. मेरा सजल मुख देख लेने ,
मेरा करुण मुख देख लेते ।
—सांध्य गीत
९. में नीर भरी दुःख की बदली ।
—नीरजा
१०. प्रिय जिसने दुःख पाला हो ।
—नीरजा
११. अलि वरदान मेरे नयन ।
—नीरजा
१२. श्री अरुण वासना ।
—सांध्य गीत

यह कह देना आवश्यक है कि महादेवी के गीतों की मार्मिकता

विशुद्ध भावों के कारण नहीं, जैसी मीरा में है। मीरा में विशुद्ध भाव-गीत है, महादेवी में कला-गीत। शुद्ध भाव-गीत लोक गीतों के अधिक निकट तथा अधिक संवेदनीय होते हैं। महादेवी में भाव-मिश्रित कल्पना और विचार के माधुर्य को ही गेय बनाया गया है।

‘क्या पूजा क्या अर्चन रे’ गीत का आधार भाव है। महादेवी के गीतों में कल्पना प्रायः अनुभूति को गम्भीरता प्रदान करती है, पन्त के अधिकांश गीतों के समान स्वरूप निर्देशिका के रूप में नहीं आती। नीरजा के ‘कमल-दल पर किरण अंकित चित्र हूँ मैं क्या चित्तेरे’ गीत में भाव से अधिक कल्पना की कमनीयता है। “धन बनूँ वर दो मुझे प्रिय” गीत का आधार मधुर विचार है।

“प्रिय मैं हूँ एक पहेली भी।”

“बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।” *

आदि गीतों में विरोधी भावों का चमत्कार ही अधिक है। निम्न लिखित पंक्तियों में उक्ति-चमत्कार और वक्र अभिव्यंजना का जो आग्रह दिखाई देता है वह गीति काव्य के लिए उपयुक्त नहीं—

“नाश भी हूँ मैं अनंत विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी।
तार भी आघात भी भंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुर विस्मृति भी।
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

यही अवस्था नीरजा के गूढ व्यञ्जना प्रधान गीत नम्बर २४ की है। प्रथम पंक्ति—“मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है” जितनी सरल-स्पष्ट तथा मोहक है उतनी ही आगे की पंक्तियाँ दुरुह हो गई हैं।

महादेवी गीतों में यत्र-तत्र दार्शनिक तथ्य भी कहती रहती हैं, फिर

भी यह दर्शन-चिन्तन ऐसा नहीं जैसा कि पंत के गुंजन में चितन अनु-भूति को दबाने लगता है । नीरजा का एक उदाहरण लिखिए

प्राण-पिक प्रिय नाम रे कह ।
 मे मिटी निस्सीम प्रिय में ,
 बह गया बंध लघु हृदय में ।
 अब विरह की रात को तू ,
 चिर-मिलन का प्रात रे कह ।
 बुख-प्रतिधि का धो चरण-तल ,
 विद्व रसमय कर रहा जल ।
 यह नहीं क्रन्दन हठीले ,
 सजल पावस मास रे कह ।
 + + + +
 चल क्षणों का क्षणिक संचय ,
 कह न जीवन तू इसे ।
 प्रिय का निठुर उपहास रे कह ॥

यहाँ दार्शनिकता के आग्रह के कारण अन्तिम अवस्था तक पहुँचते पहुँचते गीत विचार प्रधान हो उठा है । “मे ऐसा नही कहता कि कवि जान-बूझकर चेतन अवस्था में ऐसा करता है, किन्तु ऐसा अचेतन रूप में हो जाता है और स्वयं कवि को इसकी सूचना नहीं रहती, “चल क्षणों ‘‘उपहास रे कह’’ में दार्शनिकता का यही मोह निहित है, किन्तु एक बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि दार्शनिकता के आग्रह से प्रारम्भ कर दार्शनिकता की परिणति दिखाना, दार्शनिकता का असत्य आरोप अथवा क्रम-विकास की हीनता और उसके स्वाभाविक विकास का अभाव यहाँ नहीं । ऐसा नहीं जान पड़ता कि महादेवी ने बलपूर्वक दार्शनिकता का यह भार पाठकों के सिर लाद दिया है ।^१

यही अवस्था नीरजा के गीत नम्बर, ५, १३, १६, आदि की है जहाँ अन्तिम अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते गीत विचार प्रधान हो उठते हैं, किंतु फिर भी यहाँ सहजता परिलक्षित होती है। 'दीपशिखा' में चितन अधिक बढ़ गया है जो गीति-काव्य के अननकूल है।

महादेवी के कुछ गीत सौंदर्य से जगमगा रहे हैं। यहाँ न दार्शनिकता का मोह है और न गूढ़ व्यंजनाएँ। महादेवी के इन गीतों की कांत कलात्मकता पंत से कहीं अधिक सहज है। इस दृष्टि से नीरजा के कुछ निम्न गीतांश आम्वादनीय हैं—

१

“मत अरुण घूँघट खोल री ,
धृन्त बिन नभ मे खिले जो ।
अश्रु बरसाते हैंसे जो ,
तारकों के वे सुमन ।
मत चयन कर अनमोल री ॥

× × × ×

चाँदनी की सित मुधा भर ,
बाँटता इन से मुधाकर ।
मत कली की प्यालियों मे ,
लाल मबिरा घोल री ।

× × × ×

खेल सुख-दुःख से चपल थक ,
सो गया जग शिशु अचानक ।
जाग मचलेगा न तू ,
कल खग पिकों में बोल री ।

× × × ×

लाए कौन शंदेश नए धन ।

अम्बर गर्वित

हो आया नत ,

चिर निस्पन्द हृदय में उसके उमड़े री पुलकों के सावन ।
लाए कौन संदेश नए घन ।

- (३) मुखर पिक हौले बोल !
हठीले हौले हौले बोल !
जाग लुटा देंगी मधु कलियाँ मधुप कहेंगे 'और'
चौक गिरेंगे पीले पल्लव अम्ब चलेंगे बार
समीरण मत्त उठेगा डोल ।
हठीले हौले हौले बोल !

- × × ×
(४) सौरभ भीना भीना गीला
लिपटा मृदु अञ्जन सा दुकूल
चल अञ्चल से भर भर भरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल
दीपक से देता बार बार
तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास
रूपसि तेरा घन केश-पास

- × × ×
(५) पथ देख बिता दी रैन
मे प्रिय पहचानी नहीं

+ × ×
नव इन्दु धनुष सा चीर
महावर अञ्जन ले.
अलि-ञ्जित मीलित पंकज
नूपुर रुन भुन ले
फिर आई मनाने साँझ
मेँ वसुध मानी नहीं ।
मेँ-प्रिय पहचानी नहीं ।

यही सौन्दर्य 'सान्ध्य गीत' के "जाग जाग सुकेशिनी री" गीत में हैं। ये तो कुछ अंग ही थे, पूर्ण गीतों को पढ़ने से वास्तविक आनन्द आ सकता है।

महादेवी के गीतों में सामान्यतः एक ही भाव मिलता है। इस दृष्टि से 'नीरजा' के निम्न गीत आदर्श हैं :—

- १ घन बनूँ वर दो भुभे प्रिय ।
- २ क्या पूजा क्या अर्चन रे ।
३. तुम्हें बाँध पाती सपने में ।
४. बिरह का जल जूझ जीवन...
५. इस जादू गरणी वीणा पर
६. प्रिय मे हूँ एक पहेली भी
७. प्रिय सुधि भूले मे पथ भूली
८. मत अरुण घूँघट खोल रो
९. मधु बेला है आज...आदि आदि ।

किन्तु कुछ गीतों में भाव-ऐक्य नहीं मिलता। जैसे नीरजा गीत नम्बर ७, ११ और ४८। वैसे तो नीरजा के लम्बे-लम्बे गीतों में भी भाव-ऐक्य है, जैसे गीत नम्बर १६।

महादेवी के गीत पर्याप्त संक्षिप्त हैं। इस सम्बन्ध में शम्भुनाथ सिंह लिखते हैं, "छायावादी कवियों में इस दृष्टि से महादेवी से बड़ा कलाकार कोई नहीं है।"

जहाँ तक संगीतात्मकता का प्रश्न है, महादेवी के गीतों में इसकी रक्षा पूर्णतया हुई है। हमारा तात्पर्य संगीत के शास्त्रीय पक्ष की रक्षा से नहीं, महादेवी में अन्तस्संगति है जो हृदय की रागात्मक भाव-नाओं से ही ध्वनित होता है। महादेवी ने कहीं भी निराला के समान छन्दों के बाह्य साँचे तैयार नहीं किए वरन् वर्ण, शब्द, वाक्य और छन्द

उनकी भावनाओं के अनुवर्त्ती हैं। यद्यपि उन्होंने निराला के समान विविध छन्दों का प्रयोग नहीं किया परन्तु सीमित छन्द-रूपों की परिधि में जिस लयात्मक विविधता का परिचय दिया है वह सराहनीय है।

महादेवी ने हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। हृदय की भाव-लयानुसार चरणों एवं पदों का विन्यास और क्रम-स्थापन हुआ है। कभी पहले और दूसरे चरण का तुकांत मिलता है—

१. सजल रोमों में बिछे हैं पांवड़े, मधुस्नात से;
 आज जीवन के निमिष भी दूत है अज्ञात से;
 क्या न अब प्रिय की बजेगी
 मुरलिका मधुर राग घाली
 में बनी मधमास आली ।

कभी दूसरे और चौथे चरण का तुकात मिलता है :—

इन श्वासों को इतिहास
आँकते युग बीते;
रोमों में भर भर पुलक
लौटते पल रीते
यह दुलक रही है याद
क्षयन से पानी नहीं
में प्रिय पहचानी नहीं

— नीरजा

किम्प्रायः संकीर्ण स्पर्हिः महादेवी मे अधिक मिलते हैं। इस उदाहरण से पहले दूसरे और तीसरे चरण का तुकात देखिए—

नाम कर्मणा तस्य तस्मै होतुं चैव छाया का क्षय
नाम के कर्मणा सौमित्र की वशील में चिर लय
रुद्र तस्य प्रकाश मुक्त हाथ में होइति रात जय

* सजनि ! बिश्व का करण करण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी !
आ मेरी चिर मिलन-यामिनी ।

—नीरजा

अब एक उदाहरण लीजिए जिसमें पहले दूसरे तथा तीसरे चौथे
चरणों को समतुकात रखा है :—

दुर्गम पथ हो ब्रज की गलियाँ;
शूलों में मधुवन की कलियाँ;
यमुना हो दृग के जल कण में;
वंशी-ध्वनि उर की कम्पन में;
जो तू करुण का मंगल घट ले
बन आवे गोरस वाली ।
जाग ओ मुरली की मतवाली !

—नीरजा

. निम्न गीत में सभी चरण सम तुकांत हैं :—

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सूना मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे ।
मेरी श्वासे करती रहती नित्य प्रिय का अभिनन्दन रे ।
प्रिय प्रिय जपते अधर ताल बेता पलकों का नर्तन रे ।

—नीरजा

महादेवी के कुछ गीतों में गजल के काफ़िए-रद़ीफ़ का सा क्रम
मिलता है जिस में प्रथम चरण विषम तथा द्वितीय समतुकात होता
है। यथा :—

तुम दुख बन इस पथ से आना;
शूलों में नित मृदु पाटल सा;

खिलने देना मेरा जीवन,
क्या हार बनेगा वह जिसने सीखा न हृदय को बिथवाना !

$\times$ $\times$ $\times$

वर देते हो तो कर दो ना
चिर आंख मिचौनी यह अपनी

जीवन में खोज तुम्हारी है, मिटना ही तुम को छु पाना !

—तीरज ।

इस प्रकार महादेवी ने अनेक उर्दू छन्दों का हिन्दीकरण अद्भुत कुशलता से किया है। उपर्युक्त उदाहरणों से यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि महादेवी सामान्य छन्दों का ग्रंथन भी ऐसी अपूर्वता से करती है कि 'सामान्य' भी 'विशेष' बन नूतनता का आनन्द देता है। गीत में पहली पंक्ति संगीत के बोल या टेक के रूप में उपस्थित की जाती है। महादेवी की यह प्रथम पंक्ति अत्यन्त मोहक होती है। बार बार गुन-गुनाने के लिए हृदय बरवस उन्मुख हो जाता है। वैसे संगीत के नियमानुसार इसे अंतरा की कुछ पंक्तियों के बाद दुहराया जाना चाहिए, किन्तु महादेवी ने ऐसे नियम के वशीभूत होकर नहीं स्वतः ही दुहराने को जी चाहता है। नीरजा के कुछ गीतों की प्रथम पंक्तियों के उदाहरण द्रष्टव्य है :—

१. मुखर पिक होले बोल !
२. पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं ।
३. प्राण पिक प्रिय-नाम रे कह ।
४. अलि वरदान मेरे नयन
५. मत अरुण घूँघट खोल री !
६. भरते नित लोभन मेरे हो ।

७. यह पतभर मधुवन भी हो ।
८. आंसू का मोल न लूंगी मैं ।
९. मैं मतबाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है ।
१०. बीन भी हूँ, मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ ।
११. प्रिय सुधि भूले, मैं पथ भूली ।
१२. तुम सो जाओ मैं गाऊँ
१३. पूछता क्यों शेष कितनी रात—दीपशिखा
१४. अलि मैं कण-कण को जान चली—”
१५. जब यह दीप थके तब आना—”

यह प्रथम पंक्ति गीत के सार स्वरूप होती है। और शेष पक्तियाँ जैसे इसी को पुष्ट करने के लिए आती हैं, और यही टेक की सार्थकता और भाव-ऐक्य है। इस प्रथम पंक्ति में अनुभूति तीव्रतम होती है।

भक्ति-कालीन पदों में प्रायः सभी पक्तियाँ सम-मात्रिक तथा सम-तुकांत होती हैं, किन्तु अधिकांशतः छायावादी गीत, शास्त्रीय दृष्टि से, विषम मात्रिक छन्द के ही अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि अन्तरा के विधान में छायावादी कवियों ने स्वच्छन्द मार्ग का अवलम्बन किया है। प्रथम पंक्ति में जो छन्द व्यवहृत होता है, अन्तरा में उन्होंने उसे कभी-कभी बदल भी दिया है। स्वर में उत्कृष्टता और विरोध लाकर प्रभाव उत्पन्न करने के लिए ऐसा किया जाता है। उदाहरण के लिए यह गीत द्रष्टव्य है—

घन बनूँ, वर दो मुझे प्रिय !
जलधि-मानस से नव जन्म पा,
सुभग तेरे ही दूग व्योम में ।
सजल श्यामल मन्थर मूक सा,

तरल अश्रु विनिर्मित गात ले ।

नित धिरु भर झर मिटूं प्रिय !

“इसमे पहली और अन्तिम पक्तियों का छन्द एक है, उनमे १४-१४ मात्राएँ हैं । किन्तु अन्तरा की चारो पक्तियों मे १६-१६ मात्राएँ हैं और उनमे समान अन्त्यानुप्रास भी नहीं है । पहली और अन्तिम पक्ति की गति-लय मे अन्तरा की गति-लय भी भिन्न है । इसमे मगीत के विधान मे तो बाधा अवश्य पड़ती है किन्तु भावना का उतार-चढ़ाव छन्द के परिवर्तन से अवश्य व्यक्त हो जाता है ।”

जैसे उक्त उदाहरण मे टेक परवर्ती चरणो से छोटी है, वही कही भावानुकूल बड़ी भी है—

तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या ?

चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,

मधुर-राग तू मैं स्वर-संगम ।

(नीरजा)

कुछ गीतो मे महादेवी ने परम्परा-मुक्त एकॉत नूतन मगीत-मुरुचि का परिचय दिया है । नीरजा के कुछ गीतो की निम्न पंक्तियाँ उदाहरणीय हैं—

१. प्रिय गया है लौट रात !

सजल धवल अलस चरण,

मूक मदिर मधुर करुण ।

चांदनी है अश्रुस्नात,

प्रिय गया है लौट रात ।

२. ओ विभावरी !

चांदनी का अंगराग,

मांग मैं सजा पराग ।

रश्मि तार बांध मृदुल,
चिकुर-भार री ।

ओ निभावारी !

३. दिशी का चचल,
परिमल—ग्रंचल ,
छिन्नहार से बिखर पड़े सखि ,
जुगनू के लघु हीरक के कण !
लाये कौन संदेश नया घन !

इसी प्रकार नीरजा का 'आ मेरी चिर मिलन यामिनी ! गीत भी अति सुन्दर बन पडा है ।

महादेवी शब्दावली और लय मे स्वाभाविक सौन्दर्य-मूचक लोक-गीतों से भी प्रभावित है । महादेवी 'दीप-शिखा' की भूमिका मे लिखती है—“पिछले अनेक वर्षों' मे सुने सहज ग्राम गीत सभी के प्रति मेरा स्वाभाविक आकर्षण रहता है । . . . मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक-गीतो की धरती पर पले हैं ।” नीरजा के कुछ उदाहरण लीजिए जिसमे लोक गीतो की लय को साहित्यिक रूप प्रदान किया गया है—

१. मुखर पिक हौले बोल,
हठीले हौले हौले बोल ।
२. बताता जा रे अभिमानी ।
३. पथ देख बिता दी रैन, मे प्रिय पहचानी नहीं ।
४. प्राण पिक प्रिय नाम के कह !
५. लाए कौन संदेश नया घन !
६. कहां के आए बादल काले—(दीप शिखा)

७. रे पपीहे पी कहो—साध्य-गीत

८. मं यह न पथ जानती री—बीप-शिखा

इन गीतों की शब्दावली-हौले, भोर, रैन आदि—मे भी ग्राम्य संस्कार है जिससे माधुर्य बढ गया है !

महादेवी लघु-सूक्ष्म ध्वनियों का सगुम्फन-संगठन करनेमें सिद्धहस्त है । ध्वनियों का लयपूर्ण संगठन संगीत को मार्मिक बना देता है । वर्णों शब्दों की योजना वाक्यों में, और वाक्य की योजना छन्द में इस रूप में हो कि एक बृहत्तर लयात्मक सामंजस्य की प्रतीति हो । इस दृष्टि से महादेवी के गीत आदर्श हैं । नीरजा के गीत नम्बर ३, ६ आदि उदाहरण स्वरूप देखे जा सकते हैं ।

महादेवी की भाषा और भाव में व्यवधान नहीं । शब्दों का चयन आंतरिक संगीत के अनुकूल है । महादेवी के संयत आवेगों के अनुरूप ही सुचयनित शब्दों का नादात्मक सौन्दर्य है जिसमें मन्द्र-मन्थर प्रवाह है । भावना और भाषा का स्वाभाविक संतुलन है । महादेवी भाषा में नाद-झंकार की रक्षार्थ वर्ण-मैत्री, शब्द मैत्री, पद मैत्री कोमला-उपनागरिका वृत्तियों आदि का ध्यान रखती है । निम्न उदाहरण दर्शनीय है—

पुलक पुलक उर, सिंहर सिंहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ?
पिक की मधुमय गंशी बोली,
नाच उठी सुन अलिनि भोली ।
अरुण सजल पाटल बरसाता,
तम पर मृदु पराग की रोली ।
मृबुल अंक धर, वर्षण सा सर,
आंज रही निशि वृग-इन्दीवर ।
आज नयन आते क्यों भर-भर !

—(नीरजा)

इसमें उपर्युक्त अधिकांश विशेषताएँ मिलती हैं । निम्न उदाहरण भी आस्वादनीय है—

सौरभ भीना भीला गीला
लिपटा मृदु अंजन सा दुकूल;
चल अचल से भर-भर भरते
पय में जुगनू के स्वर्ण-फूल;
दीपक से देता बार-बार
तेरा उज्ज्वल चितवन विलास !
रूपसि तेरा घन-केश-पाश !

दोनों उदाहरणों में स्वरकी सूक्ष्म-तरल योजना है, गति और प्रवाह भी है, किन्तु सब मर्यादित है, नियंत्रित है । चाहे 'ओंसू भर-भर आएँ और जुगनू के फूल 'झर-झर' झरे फिर भी स्वर-साधना अविच्छिन्न है ।

ऊपर कोमला तथा उपनागरिका वृत्तियों का उल्लेख हो ही चुका है, महादेवी में परुषा वृत्ति नहीं मिलती—'ट' वर्गीय या परुष-कठोर एव संयुक्त वर्णों का प्रायः अभाव है । महादेवी ने जहाँ कहीं उत्साह व्यंजक कविताएँ लिखी हैं वहाँ भी ओज गुण के वाचक वर्ण नहीं प्रयुक्त हुए, किन्तु अर्थ या भाव में विशेष दीप्ति दृष्टि-गत होती है । जैसे नीरजा और साध्य गीत की निम्न कविताएँ—

१. जाग बेमुध जाग

२. चिर सजग आंखें उनींदी, आज कैसा व्यस्त बाना ।
जाग तुझको दूर जाना ।

महादेवी में 'त' 'प' तथा 'च' वर्ग के वर्णों का प्रयोग अधिक मिलता है, और ये सब वर्ण कोमलता-व्यंजक होते हैं । अनुस्वार युक्त स्वर भी अपनी स्वाभाविक कोमलता लिए हुए आए हैं । सत्य तो यह

है कि महादेवी की मंजुल-मंसृण पदावली के लिए यह कहा जा सकता है —

“Repeat my verses again...for I always love to hear poetry twice, first time for sound and the later time for sense.”

गीति-काव्य की सभी विशेषताओं को प्रभाव को अन्वित करने में सहायक होना चाहिए। प्रभान्विति ही रसात्मकता का कारण होती है। छायावादी गीतों में अन्विति बिरल है, क्योंकि कल्पना-क्रीड़ा इस में बाधक हुई है। महादेवी के गीतों में अन्विति पर्याप्त है, किन्तु पूर्ण नहीं। ऐसी नहीं जैसी मीरा के लघु-गीतों में है। मीरा के गीत जैसे शुद्ध राग के द्वारा प्रेषणीय हुए हैं वैसे महादेवी के नहीं। महादेवी के गीतों की किंचित अस्पष्टता भी इससे बाधक सिद्ध हुई है, क्योंकि प्रभाविष्णुता का सरलता-स्पष्टता से भी सम्बन्ध है। महादेवी के गीत ‘प्रतीक-गीति’ के अन्तर्गत आते हैं, क्योंकि प्रायः प्रतीकों के माध्यम से आत्म-व्यंजना हुई है। यह साँकेतिक शैली भी गीति काव्य के अधिक अनुकूल नहीं फिर भी महादेवी में इतनी भाव-प्रवणता, अन्तःस्फूर्ति, संक्षिप्तता तथा तदानुकूल संगीतात्मकता है कि छायावादियों में सर्वाधिक प्रभावान्विति इनके गीतों में है।

महादेवी के गीति काव्य की अनेक विद्वानों ने भूरि-भूरि पशंसा की है। कुछ सम्मतियाँ इस प्रकार हैं—

१. आचार्य शुक्ल—“गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी की हुई वैसी किसी की नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव-भंगी। जगह-जगह ऐसी ढंलौ हुई और अनूठी व्यञ्जना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।

The Ruidments of criticism.

३. डा० नेगेन्द्र—“प्रचलित लोक गीतों की वन्य गतिलय में अमूल्य काव्य सामग्री भरकर महादेवी जी ने खड़ी बोली की कविता में गीत के माध्यम को अमर कर दिया है।”

३. शान्ति प्रिय द्विषेदी—पत ने जिस खड़ी बोली को रमणीयता दी, महादेवी ने उसे मार्मिकता देकर प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। ताज-महल के भीतर उन्होंने दीपक जला दिया। गीतिकाव्य को महादेवी से विशेष गौरव मिला है।

४. विश्वभर मानव—नीरजा की सृष्टि के साथ गीत-काव्य की परम्परा महादेवी में जैसे अपनी पूर्णता को पहुँच गई है। उनका मानस भी तरगायित है, पर तट को नहीं डुबाता; दर्शन की वे भी पण्डिता हैं डुबाना मन के विकारों पर ही दृष्टि गड़ाये रखना उनका काम नहीं; भाव-गाम्भीर्य उनमें भी है, पर शुष्कता बचाकर, भारतीय संगीत से उनका भी परिचय है, पर कलाबाजियों को नमस्कार करके, अलंकारों का प्रयोग वे भी करती हैं, पर अनायास ही अकृत्रिमता से।”

५. डा० शिव मगलसिंह सुमन—हिन्दी साहित्य में गीत-काव्य के वर्तमान स्वरूप के संवारने का श्रेय श्री मती महादेवी जी वर्मा को ही है।”

६. प्रो० विजयेन्द्र स्नातक—नीरजा’ में गीतों के साथ लोक गीतों का और उर्दू शैली से रूपांतर करके नवीन गीतों का प्रयोग दृष्टि-गत होता है। गीत-काव्य की नूतन शैली को दृष्टि में रखकर यदि नीरजा के छंद लय, संगीत, ध्वनि, ताल आदि पर विचार किया जाय तो निस्संदेह वह छायावादी युग की इस दिशा में अन्यतम श्रेष्ठ रचना है। ‘नीरजा’ में गीत-काव्य का पूर्ण विकास है, इसमें तो सन्देह का अवकाश है ही नहीं।”

७. डा० देवराज—छायावादी युग की गीत-सृष्टि में महादेवी सहज ही अद्वितीय है। ‘नीरजा’, ‘साध्य गीत’, ‘दीप-शिखा आदि में कम-से कम पचास ऐसे गीत हैं जो अपने कलात्मक सौष्ठव के कारण हमारे साहित्य की अमर निधि बने रहेंगे। गुण और परिमाण दोनों दृष्टियों

से उनकी यह देन “बिहारी सतसई” से कम नहीं है यद्यपि, अपनी दुरू-हता के कारण वे कभी बिहारी लाल के बराबर पाठकों की संख्या को आकर्षित नहीं कर सकेगी ।

खड़ी बोली हिन्दी की तो बात ही क्या, संगीत-समुद्र, ‘सूर सागर’ में भी इतने संगीत-पूर्ण पद्यों को खोज निकालना सरल नहीं होगा ।

८. डा० इन्द्रनाथ मदान—मीरा के बाद गीत का स्वाभाविक रूप महादेवी में ही मिलता है । यो छायावादी युग में प्रसाद, निराला, पंत तथा अन्य कवियों के सुन्दर गीत भी मिल सकते हैं, परन्तु गीति-काव्य का ऐसा विकास उनमें नहीं है, जो महादेवी की कला को छू सके । उनके गीत निसर्ग सुन्दर हैं, और उनमें अपनी निजी विशेषता है और वह है उनकी स्वाभाविक गति और भाव-भगिमा । महादेवी इस क्षेत्र में अद्वितीय हैं ।

निस्संदेह इस ‘अश्रु तरल’ के पास अपार ‘स्वर वैभव’ है । इसकी ‘प्राण वंशी’ की ‘गूँज’ सब से पृथक् है । ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि इसके ‘लघु हृदय’ में वह अमर छन्द है, जिसके प्रत्येक स्पन्दन में ‘स्वर-लहरी’ अमद है ।

महादेवी की कला

लेखक की सौंदर्यमयी अनुभूति की कुशल अभिव्यक्ति ही कला है। लेखक अज्ञात रूप से जगत की अर्थपूर्ण छवियों का चयन करता रहता है। ये अर्थपूर्ण छवियाँ सुन्दर-कोमल रूपों तक ही सीमित नहीं, करुण-कठोर परिदृश्य भी लेखक को उतना ही प्रभावित करता है। जब इसी हृदयस्थ प्रभाव को जनता के मानस-खण्ड पर मुद्रित करने के लिए कवि तदानुरूप अभिव्यक्ति करता है तो कला का जन्म होता है। तात्पर्य यह है कि कला का कवि की अनुभूति से अटूट सम्बन्ध है। कलाकार बाह्य आन्दोलनों, सर्वसाधारण की अन्य बातों को भी आत्मसात् करके, विशेष रूप से अपनी बना कर, कला के द्वारा सर्वसाधारण का बना देता है। पहले 'पर' भी कवि का 'मैं' बनता है और वही सौंदर्य-युक्त होकर 'पर' का बन जाता है।

महादेवी जी प्रवान रूप से कलाकर्त्री हैं। उनके दृष्टिकोण के अनुरूप ही उनकी कला है। इसलिए पहले उनका दृष्टिकोण परख लेना आवश्यक है।

महादेवी द्विवेदी-युगीन कवियों के समान किसी प्रचारण-शिक्षण अथवा आदेश-निदेश को लेकर नहीं चलीं। वे काव्य-सृजन द्वारा आत्म-भिव्यक्ति का आनन्द पाती हैं। छायावादियों में द्विवेदीयुगीन उपयोगितावाद के स्थान पर सौंदर्यवाद मिलता है। इस सौंदर्य के साथ सत्य और मंगल का सहज सम्बन्ध है। उन्हीं के अनुसार "सत्य काव्य का साध्य है और सौंदर्य उसका साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त, इसी से साधन के परिचय

स्निग्ध खण्ड रूप में साध्य की विस्मय भरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है ।^१

, यह सामंजस्य भारतीय विचारधारा के अनुकूल ही है । इन्हीं की दूसरी उक्ति में यह तथ्य और भी स्पष्ट है—“कला के पारस का स्पर्श पा लेने वाले का कलाकार के अतिरिक्त कोई नाम नहीं, साधक के अतिरिक्त कोई वर्ग नहीं, सत्य के अतिरिक्त कोई पूँजी नहीं, भाव-सौंदर्य के अतिरिक्त कोई व्यापार नहीं और कल्याण के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं ।”^२ इस स्वस्थ दृष्टिकोण के कारण ही महादेवी की कला का मूल्य अक्षुण्ण है । उनके कलात्मक स्तर में कभी कमी नहीं आई ।

छायावादी कवि द्विवेदी-युगीन कवियों से साहित्यिक अनुशीलन में बहुत आगे बढ़े । परम्परागत नियम शृंखलाओं में जकड़ी कला अपनी मुक्ति के लिए अकुला रही थी । भाषा परिष्कृत-परिमाजित तो अवश्य थी किन्तु छायावादियों के सूक्ष्म सौंदर्यबोध और कोमल भावनाओं के लिए उसमें साकेतिकता एवं मंजुलता-मसृणता का अभाव था । छन्द विषयानुरूप होते हुए भी नवीनता-शून्य थे । अतएव छायावाद ने परम्परागत कला को मुक्ति दी । ‘नव गति नव लय ताल छन्द नव’ का आग्रह बढ़ा—एक नूतन कला का सृजन हुआ जो छायावादियों के भावात्मक दृष्टिकोण तथा सूक्ष्म सौंदर्य-बोध के अनुकूल थी । महादेवी भी इसका अपवाद नहीं हैं । महादेवी में छायावादी कला की सभी विशेषताएँ—ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौंदर्यमय प्रतीकविधान, उपचार वक्रता आदि मिलती हैं । किन्तु निराला के समान सभी छायावादियों की ‘मैं’ (स्वतन्त्र) शैली है । ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि सभी कवियों की अपनी वृत्ति है । महादेवी की ‘मैं’ ने उनके काव्य को अन्य कवियों से अधिक मार्मिक बना दिया है ।

कवि के पास कला-सृजन के लिए जिस प्रतिभा, व्युत्पत्ति (अध्ययन) और अभ्यास की आवश्यकता होती है, वह महादेवी के पास पर्याप्त है। महादेवी की प्रतिभा का प्रमाण उनकी प्रथम कृति नीहार को ही देख कर मिल जाता है। उनका कलात्मक स्तर प्रथम कृति से ही उच्च है। महादेवी ने एम. ए. तक शिक्षा पाई है, विधिवत् अध्ययन की दृष्टि से वे अन्य छायावादी कवियों से आगे हैं। अध्ययन अध्यापन उनका मुख्य कार्य रहा है इसलिए उनकी कला विशेष परिष्कृत है।

अपनी अभिव्यक्ति के सौंदर्य के लिए कलाकार जिन साधनों—भाषा, शब्द शक्तियाँ, अलंकार छंद आदि—का प्रयोग करता है वह सब कला के अन्तर्गत आते हैं।

अभिव्यक्ति का सर्वप्रमुख अंग भाषा है जिसके बिना अभिव्यक्ति सम्भव नहीं। जिस कवि को भाषा पर अधिकार होता है वह अपनी अभिव्यक्ति-कुशलता में पूर्ण सफल होता है।

महादेवी प्रारम्भ से ही संस्कृत साहित्य की अध्येता रही है इसलिए इनकी भाषा तत्सम बहुला है। किन्तु उन्होंने संस्कृत शब्दों से भाषा को बोझिल नहीं होने दिया। हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ही लम्बे समास वाले शब्दों तथा कोमल विषय के अनुकूल कठोर पदों का बहिष्कार किया। इस दृष्टि से महादेवी ने सूचयन वृत्ति का परिचय दिया है। महादेवी ने अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं किया जैसा कि गुप्त, निराला, पत और प्रसाद ने किया है। इसलिए कोष की कम आवश्यकता पड़ती है। निराला ने प्रायः नूतनता तथा चमत्कार के लिए, पंत ने सौंदर्य के हेतु गुप्त ने तुक के लिए, प्रसाद ने आवश्यकतावश अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया है किन्तु महादेवी ऐसे शब्दों से बच रही है। निम्न उदाहरण देखिए जहाँ संस्कृत शब्दों का प्रयोग होते हुए भी विषयानुरूप कितनी सरल-प्रसन्न तथा कोमल-कान्त पदावली का प्रयोग गया है—

सजल धवल अलस चरण
मूक मंदिर मधुर कहरण
चांदनी है ग्रन्थ-स्नात !

—नीरजा

इनकी भाषा में कैसा ध्वनि-लालित्य एवं श्रुति कोमलता है यह उक्त उदाहरण से स्पष्ट है। द्विवेदी-युगीन भाषा से इस भाषा में कितना परिवर्तन-परिवर्द्धन हो चुका है।

वर्णसंगीत से भाषा की लय अर्थवती होती है क्योंकि वर्णों से शब्द और शब्द से वाक्य की लय समृद्ध होती है। उक्त उदाहरण में 'ल' और 'म' वर्णों से इसी वर्णसंगीत की सृष्टि हुई है। यह भी ध्यान रहे कि यहाँ भाषा को अनुप्रास के रजत-पाश में बाँधने का प्रयास नहीं किया गया, अनायास ही अनुप्रास ने वर्णसंगीत में योग दिया है। शब्दों के दुहरे प्रयोग से भाषा की प्रभावान्विती कैसे बढ़ जाती है उस के लिए निम्न पंक्तियाँ अवतरणीय हैं—

पुलक पुलक उर सिहर सिहर तन,
आज नयन आते क्यों भर भर ?'

—नीरजा

अथवा—

रूपसि तेरा घन केश पाश !
श्यामल श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश पाश !

—नीरजा

उनकी ध्वनियों का संतुलित संगठन भी अद्भुत है—

(१)

गाती कमल के कक्ष में
मधुगीत मतवाली अलिनि ॐ

(२) "अलि ! मिलन गीत बने मनोरम
नूपुरों की मदिर ध्वनि ।

—नीरजा

भावनाओं के वेगानुरूप अनेक स्थानों पर वीप्सा का अनायास प्रयोग हुआ है । यह शैली का विशेष अंग ही बन गया है । वर्ण तथा शब्द की कोमल मैत्री का महादेवी अवश्य विचार रखती है । पर कहीं कहीं वे चूक भी जाती है और ध्वनियों की शिथिलता दिखाई देती है—

शिथिल मधुपवन, गिन गिन मधु-कण
हर सिंगार भरते हैं भ्रम भर

नीरजा के

—नीरजा

‘लय गीत मंदिरगति ताल अमर,
आप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर,

गीत में शब्द भी नृत्य-निरत दिखाई पड़ते हैं । यथा इस ध्वनि चित्र में ध्वनिया ही अर्थ को स्पष्ट कर रही है—

जड़ कण कण के प्याले झलमल
छलकी जीवन मदिरा छल छल
पीती थक भूक भूक भूम भूम
तू घूंट घूंट फेनिल शीकर ।
अप्सरि तेरा नर्तन सुन्दर !

फिर भी ध्वनि चित्र जैसे पंत और निराला में मिलते हैं वैसे महा-देवी में नहीं । उपरोक्त उदाहरण में शीकर के स्थान पर ‘सीकर’ ध्वनि की दृष्टि से अधिक उपयुक्त हो सकता था ।

महादेवी में कही कही समासयुक्त पदावली भी मिलती है पर प्रवाह में बाधा नहीं आती । यथा—

मैं चिर चंचल !

मुझ से है तट रेखा अविचल !

तट पर रूपों का कोलाहल

रस-रंग-सुमन-तृण-कण-पल्लव

—दीशिखी

माधुर्य गुण के लिए भाषा का समासरहित अथवा लघु समासों से युक्त होना आवश्यक है। महादेवी में भी ऐसा ही है।

महादेवी ने अनेक संस्कृत शब्दों को तद्भव रूप में प्रयोग किया है यथा—

स्वप्न—सपना। रिक्त—रीता। श्वास—साँस। सौभाग्य—सोहाग। प्रतिच्छाया—परछाई आदि। ये तद्भव शब्द उचित मात्रा में आए हैं।

विद्यापति ने कहा था 'देसिल बअना सब जन मिट्ठा'। महादेवी में भी आवश्यकतानुसार देशज शब्द मिल जाते हैं। ऐसा प्रायः उन गीतों में अधिक हुआ है जहाँ ग्राम्य गीत की लय का प्रभाव है। वन्य प्रकृति (Folk element) लाने में ये शब्द सहायक सिद्ध हुए हैं। कुछ शब्द देखिए—बैन, नैन, हौले, मनुहार, अलबेला, भोर, सांझ आदि। इनसे गीतोचित कोमलता-मसृणता की रक्षा में सहायता मिली है। यह ध्यान रहे कि इन शब्दों का प्रयोग केवल कविता में ही होता है।

महादेवी में कही कही प्रचलित उर्दू के शब्द भी मिल जाते हैं यथा—अरमान, साकी, दीवानी, राह, दाग, नादान, प्याला, प्याली, खुमार, बेहोशी, तूफान आदि। यहाँ कुछ उर्दू शब्दों को तद्भव बना दिया गया है साकी, दाग, खुमार, बिरानी आदि ऐसे ही शब्द हैं।

कुछ स्थानों पर संस्कृत शब्दों के मध्य में उर्दू का प्रयोग खटकने लगता है । एक उदाहरण देखिए—

छोड़ कर लघुवीणा कं तार.

शून्य में लटा हो जाता राग ।

विश्व छा लेती छोटी आह,

प्राण का बंदीखाना त्याग ।

कुछ शब्दों के प्रति महादेवी को अत्यधिक-अनुचित मोह है । जैसे—
लूक, चिर, सुभग, स्वर्ण, नव, चल आदि ऐसे ही शब्द हैं । इन शब्दों की आवृत्ति से कविता में एक रसता आ जाती है ।

मात्राओं की पूर्ति तथा तुक के आग्रह ने कुछ शब्दों को विकृत कर दिया है । यथा अधार, ज्योती, कर्णाधार, अन्धाकार आदि ।
नीरजा की दूसरी कविता की ये पंक्तियाँ देखिए—

म रिर की सुमधुर नूपुरध्वनि;

अलि गुंजित पद्मों की किंकणि

भर दगति में अलस तरंगिणि

रेखांकित शब्द तुक के आग्रह के कारण विकृत हो गए हैं । कहीं-कहीं इनकी पंक्तियाँ व्याकरण-व्यवस्थित नहीं । यथा—

१. पथ देख बितादी रैन में प्रिय पहचानी नहीं

—नीरजा

२. मैं आज चुश आई चातक

—सांध्यगीत

कहीं-कहीं पर 'यह' शब्द का प्रयोग बहुवचन में हुआ है ।

मुहावरों के प्रयोग से भाषा में सजीवता आती है । छायादियों में नातीय जीवन का संस्पर्श कम होने से लोकोक्तियाँ-मुहावरों का प्रयोग

अत्यल्प है । महादेवी में भी ऐसा ही है फिर भी कही कही स्वाभाविक रूप से इनका प्रयोग हुआ है । यथा—

सीमा हीं लघुता का बंधन
है अनावि तू मत घड़ियां गिन

—नीरजा

कही मुहावरों को परिवर्तित करके प्रयोग किया है जैसे—

तुम विद्युत बन आओ पाहुन
मेरी पलकों में पग धर धर

—नीरजा

अथवा

रीते कर ले कोष
नहीं कल सोना होगा भूल ।

कही कही अंग्रेजी मुहावरों की छाया भी मिलती है—‘फिर मिट जाते ज्यों विफल धूम’ में ‘To end in smoke’ का प्रभाव है ।

कवि के पास ‘अरथ-आखर’ का ही बल होता है । वह प्रसंगानुसार ऐसे सार्थक शब्दों का प्रयोग करता है कि भाषा भाव को तीव्र बना देती है । यथा—

इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल
भुक सस्मित शीतल चुम्बन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल ।
दुलरा देना बहला देना
यह तेरा शिशु जग है उदास
रूपसि तेरा घन केशपाश ।

कवि माता के वात्सल्य को उद्दीप्त करने के लिए अनुरोधात्मक

अनुनय-विनय करता है । 'ना' के प्रयोग से कवि की उक्ति में बाल-सुलभ आग्रह का माधुर्य मिलता है ।

पर्यायवाची शब्दों में भी कवि प्रसंगानुरूप चुनाव किया करता है । इससे अर्थ में संगति से उत्कर्ष बढ़ जाता है । नीरजा के ये उदाहरण देखिए —

(१) चाँदनी की सित सुधा भर

बाँटता इनसे सुधाकर

(२) प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में ।

(३) समीरण मत्त उठेगा डोल ।

सुधाकर ही सुधा-वितरण कर सकता है । जगत (जो गतिशील है) में ही जागृति का स्पन्दन हो सकता है और समीरण (सम + ईरण) से ही मतवाले नायक का आभास मिल सकता है ।

महादेवी के आराध्य निराकार है किन्तु फिर भी उन्होंने अपनी भावनाओं के अनुकूल उन्हें ऐसे विभिन्न नामों से पुकारा है कि उसके स्वरूप एवं गुणों का बोध हो जाता है । इससे भाषा का अर्थ-सौष्ठव तथा प्रभविष्णुता बढ़ जाती है । यदि इधर 'मतवाली' प्रिया हो तो उधर भी 'अलबेले' प्रियतम की आवश्यकता है । नीरजा की २५ वी कविता में भाषा की विशेषता दर्शनीय है जहाँ 'चिर नूतन' 'सुन्दर' 'छाय'तन' 'चिर चंचल' सम्बोधनों से प्रियतम का स्वरूप बोध होता है—

(१) तुमको क्या देखूँ चिर नूतन

(२) तुम को पहचानूँ क्या सुन्दर

(३) तुमको क्या बाँधूँ छायातन

(४) तुमको क्या रोकूँ चिर चंचल

क्रियाओं के अनुकूल ही नामों का प्रयोग हुआ है । 'सांध्यगीत' की 'जाग जाग सुकेशिनीरी' कविता में रात्रि को जो विशेषण दिए गए हैं

वे अर्थपूर्ण तथा स्वरूप-विधायक है । 'सुकेशिनी' 'वर वेषिनी,' 'स्वप्न निमेषिनी' 'विराग निवेशिनी' तथा 'परदेशिनी' आदि विशेषण प्रसंगानुकूल है । यही सौन्दर्य 'साध्यगीत की 'अरुण वासना कविता में है जहाँ उषा को 'अरुणवासना,' मुकुल-दशना, 'मधुप-रशना' आदि चित्रात्मक एवं क्रिया-बोधक विशेषण दिए गए हैं ।

'नीरजा की 'प्रियगया है लौट रात' कविता में सारी बात विशेषणों में कह दी गई है । महादेवी संज्ञाओं के साथ विशेषणों के प्रयोग में कुशल हैं । इस से विशेष सौंदर्य आ जाता है । यथा 'शीतल चुम्बन' 'हिम अधर' भीगे अधर' 'दीवानी चोट 'सोने के सपने', 'करुण अभाव' आदि साभिप्राय विशेषणों में दीर्घ अर्थ को एक एक शब्द में केन्द्रित कर दिया गया है । कही-कही विशेषणों में विरोध का चमत्कार मिलता है जैसे 'शापमय वर' 'मधुर पीर' आदि ।

'कल्पना प्रवणता' छायावादियों के लिए एक शक्ति सिद्ध हुई है । इसके द्वारा वे अपनी आंतरिक संवेदनाओं की भली भांति मूर्त कर कविता को नूतन वेश-विन्यास से सजा-संवार सकते हैं । महादेवी की नूतन मोहिनी कल्पनाओं के आस्वादनार्थ ये उदाहरण अवतरणीय हैं—

प्रिय तेरे उर में जग जावे
प्रतिध्वनि जब मेरे पी पी की
उस को जग सभभे बादल में
विद्युत का बन बन मिट जाना !

—नीरजा

यहाँ बादल के हृदय की चमक, जिसे प्रेम के रहस्यों से अनभिज्ञ संसार बिजली की कौंध समझता है, वस्तुतः प्रेमी पपीहे की आराध्य बादल के हृदय में उत्पन्न की गई तड़पन है । यह नूतन कल्पना प्रशंसनीय है ।

चौकी निद्रित,
 रजनी अलसित,
 श्यामल पुलकित कम्पित कर में
 बमक उठे विद्युत के कंकण !
 लाए कौन संदेश नये घन !

—नीरजा

रात्रि के सघन अन्धकार में विद्युत की कौध अकस्मात् रात की नींद में चौक उठने से अद्भुत साम्य रखती है । साथ ही विद्युत की चमक को स्वर्ण कंकण से उपमित करने में चित्रात्मकता की पराकाष्ठा है । 'श्यामल पुलकित कम्पित' विशेषण न होते तो चित्र पूरा न हो सकता । 'कम्पित' से विजली की कौंध का रूप खड़ा होता है । 'पुलकित' से कम्प का कारण विदित होता है और 'श्यामल' तथा 'रजनी' में वर्ण-साम्य है ।

नीरजा की कविता १६ भी चित्रों की माला ही है । इन चित्रों में ध्वनि तथा रंगों की योजना भी सुन्दर है । चित्रों में वर्ण योजना की दृष्टि से नीरजा की निम्न पंक्तियाँ भी विशेष सुन्दर हैं—

स्वर्ग-कुमकुम में बसा कर
 है रंगी नव मेघ चूनर
 बिछल मत धुल जाएगी
 इन लहरियों में लील री ।
 चांदनी की सित सुधा भर
 बाँटता इनसे सुधाकर
 मत कली की प्यालियों में
 लाल मदिरा घोल री ।
 मत ग्रहणा घूँघट खोल री ।

चित्रात्मकता, महादेवी की प्रतिभा की सामान्य विशेषता है ।

इनमें भी ये ध्वनि, रंग और गंध का विचार रखती है किन्तु उतना नहीं जितना पंत जी । वे इसमें अधिक सफल हुए हैं । वस्तुतः रुचि भेद के कारण इनकी चित्राकन कला में भी अन्तर है । एक तो पंत के रंगों जैसी चटक इन में नहीं—महादेवी के रंगों में अपेक्षाकृत अधिक गंभीरता है ये रंग गहरे-भास्वर हैं । दूसरे पंत के चित्रों की रेखाएँ अधिक व्यक्त-स्पष्ट अथवा पैनी होती हैं । महादेवी के चित्रों में मृदुलता-तरलता ही अधिक है । ऐसा इस लिए होता है कि पंत जड़िया हैं, वह मीना कारी अधिक करते हैं किन्तु महादेवी में रंगों की समग्रता का सौन्दर्य रहता है । वे मानों इन्द्रधनुषी तूलिका को चाँदनी के सार में डुबो कर चित्र अंकित करती हैं, कमल दल पर किरण-अंकित चित्र ही खेच सकती हैं—उनके चित्रों में एक रंग मिश्रित तरलता ही मिल सकती है । वस्तुतः महादेवी में चित्रमयता भी गीतों के अनुकूल है । गीतों के अनुकूल ही इन में तारल्य है । पंत की अधिक बारीकी उनके मुक्तको के अनुकूल है और यह गीति काव्य के उपयुक्त नहीं । इसीलिए पंत के संश्लिष्ट चित्र अधिक हैं । महादेवी पूर्ण चित्र कम अंकित कर पाती है क्यों कि ये पल-पल परिवर्तित होते जाते हैं । यथा साध्यगीत की यह गत्यात्मक चित्रमाला देखिए—

राग भीनी तू सजनि निश्वास भी तेरे रंगीले !

लोचनों में क्या मदिर नव ?

देख जिसको नीड की फूट निकली बन मधुर रव ।

भूलते चितवन गुलाबी—

में चले घर खग हठीले ।

... ..

आज इन तंद्रिल पलों में ।

उलझती अलक सुनहली असित निशि के कुन्तलों में ।

सजनि नीलम रज भरे रंग चूनरी के ग्रहण पीले ।

राग भीनी तू सजनि ।

रेख सी लघु तिमिर लहरी,
 चरण छू तेरे हुई है सिन्धु सीमा हीन गहरी !
 गीत तेरे पार जाते
 बादलों की मृदु तरीले ।
 राग भीनी !
 कौन छायालोक की स्मृति,
 कर रही रंगीन प्रिय के द्रुत पदों की अंक-ससृति
 सिहरती पलकें किए
 देतीं बिहंसते अधर गीले ।
 राग भीनी !

संध्या के इस झुटमुटे चित्र में महादेवी की चित्रकला की सभी विशेषताएं मिल सकती हैं। संध्या के रंगीले अरुण पीले, असित, सुनहले गुलाबी विशेषणों में वर्ण योजना भी दर्शनीय है। यहाँ चित्रों के संकेत हैं। महादेवी का एक उत्कृष्ट संश्लिष्ट चित्र भी देखने योग्य है—

'पिक की मधु मय गंशी बोली;
 नाव उठी सुन अलिनी भोली;
 अरुण सजल पाटल बरसाता;
 तम पर मृदु पराग की रोली;
 मृदुल झंक धर बर्षण सा सर;
 आंज रही निशि दृग इन्दीवर !

यहाँ व्यापक वातावरण को, उन्नत चयन-वृत्ति के बल पर, छोटे फलक पर चित्रित किया गया है। इस दृष्टि से इस चित्र की कला महान है।

महादेवी में कही कहीं एक शब्द चित्र (One word pictures) मिलते हैं। अपनी व्यापक कल्पना का समाहार कर ये चित्र उपस्थित किए जाते हैं। जैसे उषा को 'अरुण वसना' कहना। साँध्यगीत में

तारों को 'गगन के चार दाग' तथा दीपशिखा में 'बिखरे सित अक्षर' और 'मूक गगन के अश्रु' कहा है। इसी प्रकार रजनी को 'नीलम की निस्सीमपटी' घन को 'सिन्धु का उच्छवास' तथा 'तड़ित को 'तम का विकल मन' (दीपशिखा) कहा है। इन विशेषणों में कलित कल्पना तथा अनुभूति का सुसंयोग हुआ है।

छायावादियों की शैली सांकेतिक है। इसलिए लक्षण-व्यंजना का इनमें बड़ा प्रसार मिलता है। सूक्ष्म-आभ्यन्तर भावों की अभिव्यक्ति के लिए अभिधात्मक भाषा से कार्य नहीं चल सकता लक्षणा-व्यंजना के द्वारा, अभिव्यक्ति की भंगिमा द्वारा ही सूक्ष्म भावों की व्यञ्जना सम्भव हो सकती है।

भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए लक्षणा शक्ति से कार्य चलता है। मुख्यार्थ के असंगत होने पर रूढ़ि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के द्वारा, मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्यार्थ का ज्ञान कराया जाय, उसे लक्षणा कहते हैं। महादेवी के गीतों में भङ्गा के 'उन्मादों' में बेहोशी घुलती है, निर्घोष घटाओं में छिप कर चपला की तड़पन सोती है तथा आँखों के आँसू उजले होते हैं। महादेवी में इस लक्षणा का अनेक रूपों में प्रयोग हुआ है। उनमें से हम कुछ रूप लेंगे। पहले क्रिया के रूप में लक्षणा देखिए। नीरजा की एक पंक्ति है—

‘झरते नित लोचन मेरे हों’

—नीरजा

लोचन नहीं झरते आसू झरा करते हैं। किंतु यहाँ आँसुओं की अधिकता का प्रभाव डालने के लिए यह कह दिया गया आँखें झर रही हैं मानो कि आँखें आँखें नहीं रही अश्रुमय हो गई हैं। साथ ही आँखों से आँसू बहते हैं किन्तु अधिकता व्यक्त करने के हेतु लक्षण का आश्रय ले कह दिया गया 'झरते' है।

विशेष्य अथवा संज्ञा के रूप में लक्षणा निम्न पंक्ति में देखिए—

मृदु रजत-रश्मियाँ देखूँ

उलभी निद्रा-पंखों में

—रश्मि

रजत की रश्मियाँ नहीं होती, अतएव लक्षणा द्वारा अर्थ हुआ चाँदी के समान श्वेत चमकीली रश्मियाँ ।

वाक्य के रूप में लक्षणा—

अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर

—नीरजा

सागर में बड़वाग्नि के रूप में जो ज्वाला है, उसे वह अपने चंचल लहरो की ध्वनि (मानो गीत) से नहलाता है—ठंडा करता है । लक्षणा से चित्र भी उपस्थित हुआ और अर्थगाम्भीर्य भी आया ।

साम्य के रूप में—

कनक से दिन मोती सी रात

लक्षणा से इसका अर्थ होगा सोने के समान उज्ज्वल तथा ली सुनहरी किरणों वाला दिन तथा मोती के समान स्वच्छ एवं चमकी चन्द्रिका स्नात रात—यहाँ उज्ज्वलता तथा स्वच्छता के साम्य पर ही लक्षणा आधारित है ।

आधार के लिये आधेय के रूप में—

कलियों की घन जाली में

छिपती देखूँ लतिकाये

या दुर्दिन के हाथों में

लज्जा की करुणा देखूँ

—रश्मि

अंतिम पंक्ति में नारी आधार के लिए लज्जा आधेय ही उक्त है । अथवा—

जागो बेसुध रात नहीं यह ।
तुम्हें जगाने आई पीडा,
स्वप्नों का परिहास नहीं यह ।

—नीरजा

यहाँ भी पीड़ित नारी (दुखी मानवता) आधार के लिए पीडा
आधेय ही कथित है ।

कार्य कारण के रूप में लक्षणा—

कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उन के हास ।

—नीहार

फूलों में विकास, प्रसन्नता तथा ओस-बिंदू है, ये सब लक्षणा
द्वारा ही स्पष्ट होता है । प्रियतम से मूक मिलन कारण रूप में है ।
अतएव यहाँ कार्य कारण लक्षित होता है ।

विरोध मूलक शब्दों के प्रयोग में लक्षणा—

शलम में शापमय वर हूँ ।
किसी का दीप निष्ठुर हूँ ।

—सांध्यगीत

वरदान और वह भी शापमय ! जलना अवश्य ही शापमय है
किंतु आलौकिक प्रियतम के लिए जलने में वरदान ही है ।
वेदना को वरदान मान कर कवयित्री ने स्वीकार कर लिया है ।
विशेषण-विपर्यय (Transferred epithet) के रूप में
अंग्रेजी में यह एक अलंकार है । यहाँ विशेषण के

परिवर्तन के कारण अर्थ में विशेष चमत्कार उत्पन्न हो जाता है ।
वस्तुतः यह लक्षणा का प्रयोग विशेष ही है ।

निद्रा उन्म^न कर कर विचरणा
लोट रही सपने संचित कर

—नीरजा

यहाँ 'उन्मन' विशेषण निद्रा के लिए प्रयुक्त हुआ जबकि यह व्यक्ति के लिए आना चाहिए था । व्यक्ति उन्मन होता है नींद नहीं । विशेषण के इस विपर्यय ने अर्थ को प्रभावपूर्ण बना दिया है ।

पुलकित स्वप्नों की रोमावाली,
कर में हो स्मृतियों की अञ्जलि,

—नीरजा

व्यक्ति पुलकित होता है स्वप्न नहीं । नीहार की इन पक्तियों में यह प्रयोग आस्वादनीय है :—

आँखों की नीरव भिक्षा में
आँसू के मिटते दागों में
ओठों की हंसती पीड़ा में
आहों के बिखरे त्यागों में
कण कण में बिखरा है निर्मम
मेरे मानस का सूनापन

मानवीकरण (Personification) के रूप में—

मानवीकरण भी पाश्चात्य अलंकार है । किंतु इसका प्रयोग संस्कृत साहित्य में पर्याप्त हुआ है । यह भी लक्षणा के अन्तर्गत है ।

छायावादी काव्य में इसका प्रचुर प्रयोग हुआ है । 'प्रकृति-चित्रण' वाले अध्याय में इसका स्पष्टीकरण हो चुका है । जब कवि निर्जीव जड़ वस्तुओं अथवा सूक्ष्म भावों की अभिव्यञ्जना में ऐसे शब्दों

प्रयोग करता है जो चेतन प्राणियों के सम्बन्ध में किये जाते हैं तब वहाँ मानवीकरण हो जाता है। छायावादी कविता में बिम्ब-ग्रहण के लिये चित्रमयी भाषा का प्रयोग करते हैं। मानवीकरण में मूर्त प्रत्यक्षीकरण होता है अतएव इस का विधान छायावादियों में सहज रूप में ही हो जाता है। वैसे मानवीकरण सर्वात्मवादी दृष्टिकोण भी है।

प्रभावोत्पादकता में यह अलंकार विशेष सहायक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

ओ विभावरी !
चाँदनी का अंगराग;
सांग मे सजा पराग;
राश्मितार बाँध-मृबुल
चिकुर-भार री !

—नीरजा।

प्रतीकों के रूप में लक्षणा—

यह पतझर मधुवन भी हो ।
...
शूलो का वंशन भी हो,
कलियों का चुम्बन भी हो ।

—नीरजा।

यहाँ पतझर, तथा शूल दुख के और मधुवन, तथा कलियाँ सुख के प्रतीक हैं।

रहस्य-भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग प्रारम्भ से होता आया है। महादेवी ने भी प्रतीकों का इतना अधिक प्रयोग किया है कि इसके बिना इन की काव्य-कला की कल्पना ही नहीं हो

सकती । कृतियों के नाम—रश्मि, नीरजा, दीपशिखा तक प्रतीकात्मक है । उनके चित्रों का आधार बहुत कुछ प्रतीक हैं । नीरजा की प्रथम कविता में ही 'नीरज' साधना-साध्य सात्विक भावनाओं, 'पंक' तामसिक भावनाओं, 'सलिल' राजसिक भावनाओं तथा 'मधुप भीर' लौकिक मायाजाल के प्रतीक रूप में आया है । इसी प्रकार तारे लौकिक भावों के लिए, सागर संसार के लिए, पतवार साहस के लिए, जलचरवृन्द कुवासनाओं के लिए, नौका जीवन के लिए आए हैं । निम्न उदाहरण में कुछ प्रतीक स्पष्ट हो जायेंगे—

ग्रास करने नौका स्वच्छन्द घूमते फिरते जलचरवृन्द ।

देखकर काला सिन्धु अनन्त हो गया हा साहस का अन्त ।

यहाँ सागर के समान अनन्त संसार में कुवासनाएँ जलचरवृन्द के समान हैं जो जीवन की नौका को सहज स्थिति में नहीं रहने देते । किन्तु महादेवी में एक ही प्रतीक सदैव एक ही अर्थ में नहीं आता । अतएव कभी कभी अर्थ समझने में कठिनाई होती है । यथा शलभ को साधना विहीन मोहलिप्त व्यक्ति समझा है :-

शलभ ग्रन्थ की ज्वाला से मिल

भलस कहाँ हो पाया उज्ज्वल

कब कर पाया वह लघ तन से

नव आलोक प्रसार !

ओ पागल संसार !

—नीरजा

सारे शीतल कोमल नूतन,

मांग रहे तुझ से ज्वालाकरण,

विश्व शलभ सिर धुन कहता 'मे

हाय न जल पाया तुझ में मिल' !

सिहर सिहर मेरे दीपक जल !

—नीरजा

शलभ भैं शापमय बर हू !
किसी का दीप निष्ठुर हूँ ।

—साँध्यगीत

शेष माया यामिनी मेरा निकट निर्वाण !
पागल रे शलभ अनगान !

...
अग्निपन्थी मैं तुझे दूँ
कौन सा प्रतिबान ?

—दीपशिखा

किन्तु इसी शलभ को कभी आदर्श प्रेमी भी समझा है—

क्यों जग कहता मतवाली ?
क्यों न शलभ पर लुट लुट जाऊँ,
भुलसे पाँडवों को चुन लाऊँ,
उन पर दीपशिखा झँकवाऊँ,
अलि ! मैंने जलने ही में जब
जीवन की निधि पाली !

—नीरजा

अथवा

जो हुआ जल दीपकमय उससे
कभी पूछी निबाह की रीति नहीं

—रश्मि

इस प्रकार यदि प्रसंग का ध्यान न रखा जाए तो अर्थ का अनर्थ हो सकता है । सरिता के युग्म पुलिन कभी विरह मिलन के अर्थ में आये हैं, कभी जीवन-मृत्यु के । वे एक ही भाव अनेक प्रतीकों से लेती हैं । जैसे आंसुओं का भाव नक्षत्रों, 'मोती' 'मकरंद' तथा 'तूहिनकण' सभी से ग्रहण किया है ।

प्रणय क्षेत्र में विदग्धता-प्रगल्भता का पर्याप्त स्थान रहता है ।
कही कही इनमें उर्दू की-सी वक्रता का मौदर्य मिलता है । यथा—

१. भिप चली पलकें तुम्हारी पर कथा है शेष ।

—दीपशिखा

२. वे कहते हैं उनको मैं
अपनी पुतली में देखूं
यह कौन बता जायेगा
किसमें पुतली को देखूं —नीहार

३. भिप भिप आंखें कटती हैं
'यह कैसी है अनहोनी' ?
हम और नहीं खेलेगी
उन से यह आंख मिचौनी !

—नीहार

४. मेरी लघुता पर आती
जिस दिव्य लोक को छोड़ा
उमके प्राणों से पूछो
वे पाल सकेंगे पीड़ा ?

—नीहार

'दरयाए मुहब्बत के किनारे नहीं होते' अतएव कवयित्री भीरे से
कहती है—

५. अलि छोड़ी न जीवन की तरणी,
उस सागर में जहाँ तीर नहीं !
कभी देखा नही वह देश जहाँ !
प्रिय स काम मन्वक पीर नहीं !

—रश्मि

६. मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का !

...
 मैं कण कण में ढाल रही अलि आंसू के मिस प्यार किसी का
 अपने तन पर भाता है अलि जाने बयों शृंगार किसी का !
 मेरे प्रति पग पर बसता जाता सूना संसार किसी का !

---दीपशिखा

दीपशिखा में चाहे अप्रस्तुत पहली कृतियों के ही हैं किन्तु शब्द-विन्यास में नूतनता आ गई है। नीहार की कुछ कविताओं पर प्रसाद के 'आंसू' का प्रभाव परिलक्षित होता है।

महादेवी की आत्माभिव्यञ्जक सूक्ष्म-संश्लिष्ट भावनाओं की प्रेषणीयता के लिए अलंकार सहज-सहायक हुए हैं। ये केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, भावों की अभिव्यक्ति के लिये विशेष द्वार तथा राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान बन कर आये हैं। 'नव' दृष्टिकोण से ही छायावाद का उद्भव हुआ। इसलिए उपमा-उत्प्रेक्षाओं की की 'दादुरावृत्ति' अथवा 'शुक प्रयोग' यहाँ नहीं हो सकता था। भावना-नुकूल नूतन अप्रस्तुत विधान यहाँ मिलता है। उन्होंने परम्परागत शुक-पिक, सिंह-सर्प तथा ऐसे ही अन्य उपमानों को अन्तिम नमस्कार कर दिया। परम्परा-मुक्त अप्रस्तुतों में केवल रूप-रंग के साम्य का विचार होता था। छायावादी कवियों ने प्रभाव-साम्य पर दृष्टि रखी है। निरन्तर आवृत्ति के कारण पुराने उपमान प्रभाव-शून्य हो गये। अतएव नवीन सौन्दर्यबोध के अनुकूल नूतन, परिपाटी-मुक्त, अलंकारों का प्रयोग आवश्यक था। लक्षणा-ध्यञ्जना के प्रचुर प्रसार से अनेक ऐसे परिपाटी-मुक्त प्रयोग दिखाई देते हैं कि परिपाटी-विहित काव्य में उनका नामकरण भी नहीं हुआ था।

शब्दालंकारों में महादेवी ने अनुप्रास, वीप्सा, तथा श्लेष का ही अधिक प्रयोग किया है। इनके काव्य में अनुप्रास और वीप्सा कैसे सहज रूप में सौन्दर्य-वर्द्धन करते हैं, यह हम देख चुके हैं। यहाँ अनु-

प्राप्त हमें ऐसा चमत्कृत नहीं करते, कि हमारी दृष्टि उनके रजत प्राप्त में उलझ के रह जाए बल्कि भाषा के प्रवाह और लय में वृद्धि होती है। अब 'श्लेष' के उदाहरण देखिए—

१. अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।

२. सुरधनु नव रचतीं निवासों, स्मित का इन भीगे अधरों पर।

—नीरजा

इन दोनों पंक्तियों में 'अधर' का अर्थ ओंठ भी है और आकाश भी। यहाँ अर्थ में उत्कर्ष ही आया है। कही-कही यमक भी आगया है :—

१. जगती-जगती की मूक-प्यास।

—नीरजा

२. 'सुधा' वसुधा में लाया एक।

—नीहार

३. हाला सी, हालाहल सी,

बह गई अचानक लहरी।

—नीहार

४. परिमल मल-मल जाता बत-स।

—सांध्यगीत

महादेवी में अर्थालंकार ही अधिक है। अर्थालंकारों में भी उपमा, रूपक, अन्योक्ति, समासोक्ति, अधिक, विरोधामास आदि उनको प्रिय है। उपमा अलंकार साम्यमूलक अलंकारों का सर्वस्व-शृंगार है। साथ ही यह बड़ा व्यापक है। इसलिए सभी कवि इसका प्रयोग करते हैं। महादेवी में भी उपमा का विशेष सौन्दर्य मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए—

विशि का चंचल

परिमल अंचल

छिन्न हार से बिखर पड़े सखि ! जुगनू के लघु हीरक के कण !

—नीरजा

छिन्नहार से हीरक कण जैसे बिखर पड़ते हैं वैसे ही जुगनू भी दिशा के अंचल में जगमगाने लगे । जुगनू की ज्योति अत्यंत न्यून होती है किन्तु इस उपमान से उनकी ज्योति द्विगुणित और उनका टिमटिमाना स्पष्ट-सुन्दर हो जाता है । यहाँ उपमान भाववर्द्धन के साथ सौन्दर्य भी प्रदान करता है ।

अब निम्न उदाहरण देखिए—

एक प्रिय-दृग-श्यामता सा
 बूसरा स्मित की विभा सा
 यह नहीं निशिदिन इन्हें
 प्रिय का मधुर उपहार रे कहूँ !

—नीरजा

यहाँ रात प्रिय की आँखों की कालिमा तथा दिन प्रियतम की हँसी के प्रकाश के समान है । (वर्ण-साम्य है) । अतएव रात-दिन दोनों प्रियतम के उपहार स्वरूप हैं । यहाँ उपमान अत्यंत भाव व्यञ्जक सिद्ध हुए हैं क्योंकि 'मधुर मुझ को हो गए सन् मधुर प्रिय की भावना ले' के भाव को यह उपमान ही स्पष्ट कर सका है । रात-दिन को प्रियतम के उपहार सिद्ध करने की यह अद्भुत रीति है । उपमा के अतिरिक्त क्रम और अपह्लाति का भी सौन्दर्य है ।

अब 'सांध्यगीत' की वे उपमाएँ लीजिए जो उन की मूल भाव-धारा को व्यक्त करने में समर्थ हुई हैं —

सजनि मैं उतनी करुण हूँ करुण जितनी रात ।

× × × ×

आंसुओं का क्षार पी में
 बाँटती नित स्नेह का रस !

सुभग में उतनी मधुर हूँ, मधुर जितनी प्रात !

ताप-जर्जर विश्व-उर पर

तूल से घन छा गये भर

दुःख से तप हो मृदुलतर

उमड़ता करुणा भरा उर

सजनि में उतनी सजल जितनी सजल बरसात !

त्यागमयी साधना के लिए दीपशिखा के निम्न उपमान कितने सार्थक है—

धूप सा तन दीप सी मैं ।

यहाँ कर्म-साम्य है ।

वैसे तो ऊपर के अनेक उपमानों से यह सिद्ध हो गया होगा कि महादेवी प्रभावसाम्य का कैसे ध्यान रखती है, नीरजा की इन पंक्तियों से और भी स्पष्ट हो जाएगा—

जिन प्राणों से लिपटी हो

पीड़ा सुरभित चंदन सी,

तूफानों की छाया हो

जिस को प्रिय-आलिंगन-सी.

जिसको जीवन की हारें

हों जय है अभिनन्दन सी

यहाँ कुछ स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं । क्योंकि उपमान अपनी बात स्वयं कह रहे हैं ।

महादेवी ने कहीं-कहीं विरोधात्मक किंतु तुलनात्मक उपमानों का प्रयोग किया है । इनसे कितनी मार्मिक व्यञ्जना हो सकती है, 'रश्मि' की सारी उन्नीसवी कविता इस दृष्टि से पठनीय है । फिर भी कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

कह दे माँ क्या अब देखूँ ।

× × ×

तेरे असीम आँगन की देखूँ जगमग दीवाली,
या इस निर्जन कोने में बुझते दीपक को देखूँ ।

एक ओर असीम आँगन (आकाश) की (तारोभरी) जगमग दीवाली दूसरी ओर एकात में बुझता हुआ दीपक । कितनी विषमता है । किन्तु फिर भी दोनों में प्रकाश का साम्य है । यहाँ कवयित्री के मनमें यह द्वन्द्व है कि वह तारोंभरे वैभव-वलित आँगन—सम्पन्न अभिमानी लोगो—की ओर बड़े या बुझते दीपक— निरीह-निर्धनो—को स्नेह-दान दे । यहाँ उपमान ऐसे व्यञ्जक है कि व्याख्या का कितना ही विस्तार सम्भव है ।

रश्मि में महादेवी ने आत्मा-परमात्मा-ब्रह्म-सृष्टि के दार्शनिक सम्बन्धों को व्यक्त किया है । इन पर उपनिषदों की छाप है । इस लिए वहाँ उन्होंने शास्त्रों में आई उपमाओं का प्रयोग किया है । ऐसी उपमाओं का प्रमुख ध्येय दार्शनिक सिद्धातों का स्पष्टीकरण ही होता है, अलङ्कृति नहीं ।

कबीर ने अपने अद्वैतवाद को जल और कुम्भ के द्वारा प्रकट किया था और मीरा ने 'सूरज घामा' द्वारा । महादेवी इसे 'रश्मि प्रकाश' द्वारा स्पष्ट करती है ।

यदि उपनिषद वाक्य है—

मैं तुमसे हूँ एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश ।

यथोर्णनाभि सृजते गृह्णते च ।

तो महादेवी ने भी सृष्टि और ब्रह्म को उसी उपमा द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया है—

स्वर्णलूता सी कब सुकुमार हुई इससे इच्छा साकार ?

उगल जिसने तिनरंगे तार बुन लिया अपना ही संसार

तात्पर्य यह कि जैसे मकड़ी स्वयं जाले को फैलाती तथा निगल लेती है उसी प्रकार ब्रह्म भी स्वेच्छा से सृष्टि करता तथा समेट लेता है ।

महादेवी ने कही-कही विज्ञान सम्बन्धी उपमाएँ भी दी हैं ।
यथा—

हो असोम आलोक लहर-सी ।

—नीरजा

छायावादी उपमा की विशेषता यह भी है कि उसमें मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त तथा अमूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त प्रस्तुत का विधान किया गया है । यथा अमूर्त का मूर्त विधान देखिए—

जिन प्राणों से लिपटी हो
पीड़ा सुरभित चंदन-सी ।

—नीरजा

यहां पीड़ा अमूर्त के लिए सुरभित चन्दन मूर्त अप्रस्तुत है । मूर्त का अमूर्त विधान—

शून्य नभ पर जब उमड़ मधुभार सी
नैश तम में सघन छा जाती घटा

यहाँ 'घटा छा जाना' मूर्त है किन्तु मधुभार अमूर्त है । अमूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त अप्रस्तुत की योजना भी हुई है । यह अपेक्षाकृत अधिक कठिन है, अतएव कवि प्रतिभा की परिचायक है । यथा—

तम सा नीरव नभ सा विस्तृत
हास रुदन से दूर अपरिचित
वह सूनापन 'हो' उनका

—नीरजा

यहाँ सूनेपन (अमूर्त) की उपमा अमूर्त 'तम' से दी गई है ।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक ही उपमेय के लिए चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त—मूर्त और अमूर्त, दोनों रूपों में उपमान लाए जाते हैं । जैसे—

नीलम सा तम सा हालाहल

—नीरजा

यहाँ हालाहल के लिए मूर्त नीलम और अमूर्त तम उपमान स्वरूप लाए गए हैं ।

महादेवी में रूपको का भी प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है । नीरजा की १, २, ३, ९, ११, २३ आदि कविताओं में सागरूपको की रुचिरता दर्शनीय है । अब साध्यगीत का एक सागरूपक लीजिए—

प्रिय ! सांध्यगगन

मेरा जीवन ।

यह क्षितिज बना धुंधला विराग

नव अरुण अरुण मेरा सुहाग ।

छाया सी काया बीतराग ।

सुधिभीने स्वप्न रंगीले घन ।

नीरजा के 'क्या पूजा क्या अर्चन रे' गीत का आरती का सागरूपक प्रशंसा के योग्य है ।

रहस्यवादी होने के कारण महादेवी को अन्योक्ति तथा समासोक्ति प्रलंकार विशेष रूप से सहायक हुए हैं । समासोक्ति अलंकार प्रायः संकर तथा ससृष्टि रूप में मिलता है—अन्य अलंकारों के साथ आया है, पृथक् रूप में कम । यथा नीरजा के निम्न उदाहरण में—

मृदुल अंक धर वपण सा सर ।

आंज रही निशि बृग इन्दीवर ।

यहाँ निशा मानी नायिका है जो गोद में दर्पण रख, अपने नेत्रों को आँज रही है। 'दर्पण सा' में उपमा, दृग्विन्दुवार मे रूपक तथा 'मृदुल अंक' मे रूपकातिशयोक्ति है। इन अलंकारों की संसृष्टि के साथ, सारे छंद में सभासोक्ति है।

अन्योक्ति अलंकार में प्रस्तुत के प्रतिनिध स्वरूप अप्रस्तुत के वर्णन द्वारा प्रस्तुत की ओर संकेत किया जाता है। लाक्षणिक प्रयोगों और अप्रस्तुत योजना मे प्रभाव-साम्य पर बल देने के कारण, अन्योक्ति को रहस्यवादियों ने विशेष रूप से अपनाया है। सांध्यगीत के दो गीतो—

१. शलभ मैं शापमय वर हूँ

किमी का वीष निष्ठुर हूँ

२. कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो

में इस अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है। नीरजा के 'टूट गया वह निर्मम दर्पण' गीत में भी यही अलंकार है।

प्रेम के वक्र-जटिल अनुभवों तथा संसार में आत्मा की अनोखी स्थिति को व्यक्त-स्पष्ट करने में विरोधमूलक अप्रस्तुतो को महादेवी ने विशेष रूप से अपनाया है। नीरजा मे विरोधाभास का चमत्कार-चातुर्य देखते ही बनता है। कुछ उदाहरण लीजिए—

बिन्दु-बिन्दु ढुलने से भरता उर में सिन्धु महान,

तिल तिल मिटने से होता है चिर जीवन निर्माण।

न सुलभी यह उलझन नादान।

यहाँ जब अर्थ स्पष्ट हो जाता है तो विरोध की यह उलझन नहीं रहती। भौतिक जीवन के ह्रास से आध्यात्मिक जीवन का निर्माण होता है—अतएव यहाँ विरोधाभास है। वस्तुतः विरोधाभास के ऐसे सार्थक रुचिकर उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है :—

१. पल पल के भरने से बनता युग का अद्भुत हार,
श्वास-श्वास खोकर जग करता नित दिव से व्यापार ।
२. चिर जाग्रत थी तू दीवानी ।
३. एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित ।
४. नाश भी हूँ मैं अतंत विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी ।
५. अश्रु बरसाते हंसे जो ।
तारकों के वे सुमन ॥

—नीरजा

पहले तो यह अलंकार विरोध के चमत्कार से आकर्षित-चमत्कृत करता है, पुनः विरोध के परिहार में तथ्य द्विगणित स्पष्ट होकर आनन्द देता है ।

‘अधिक’ अलंकार भी महादेवी को अधिक प्रिय है क्योंकि इसके माध्यम से रहस्यवादी ससीम-असीम—गागर में सागरके—सम्बन्ध को भली-भाँति व्यक्त कर सकता है । यथा इस पंक्ति में विरोधराभास और अधिक का दोहरा चमत्कार देखिए—

एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित ।

—नीरजा

कुछ और उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

१. भर लाऊँ सीपी में सागर ।
२. मेरी ही चितवन से उमड़ा तम का पारावार ।
३. जब मेरे उर में अम्बर ।

नयनों में उतरेगा सागर ॥

—नीरजा

—साध्यगीत

उपर्युक्त अलंकारों के अतिरिक्त कुछ अन्य अलंकारों का रसा-
स्वादन कीजिए—

प्रदीप्त—जिन चरणों की नख ज्योति ।

ने हीरक जाल लजाये ॥

—नोहर

उल्लेख—चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम ,

मधुर राग तू मैं स्वर-संगम ।

तू असीम मैं सीमा का भ्रम ॥

—नीरजा

विभावना—(i) वृन्त विन नभ में खिले जो ।

—नीरजा

(ii) छू श्रृण का किरण चामर ।

बुझ गये नभ-दीप निर्भर ॥

—नीरजा

असंगति—

उमड़ता मेरे दृगों में ।

बरसता घनश्याम में जो ॥

—सांध्यगीत

गीतिकाव्य वाले अध्याय में 'छंदों' के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है । महादेवी ने मात्रिक छंदों का ही प्रयोग किया है ।

महादेवी की काव्य सामग्री पंत, प्रसाद, निराला से कही सीमित है । निराला में 'नव गति नव लय ताल छंद नव' का आग्रह सर्वाधिक है । वे वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी हैं । निराला के पास मानो प्रतिभा की बाढ़ ही है किन्तु जहाँ कही वह उसे उचित दिशा में उन्मुख करने में समर्थ हो जाते हैं उत्कृष्ट काव्य का सृजन करते हैं किन्तु अनेक स्थलों पर वह उसे सम्भाल नहीं पाते । अमित काव्य सामग्री होते हुए भी सजाने-संवारने में सर्वत्र सुशुचि का परिचय नहीं दे पाते । पंत में

प्रतिभा और सुरुचि दोनों है । अतएव उनमें कला का विशेष सौन्दर्य मिलता है । महादेवी की काव्य-सामग्री सीमित है । किन्तु इस सीमित काव्य सामग्री को विविधता से सजाने में वे सिद्धहस्त हैं । विविध संयोजनाएँ (Combinatons) तथा आकर्षक अनुक्रम (arrangement) उनकी सुरुचि का सजग प्रमाण है । अतएव काव्य-सामग्री का विस्तार नहीं किन्तु विन्यास सुन्दर है । उदाहरण स्वरूप दिन रात पर महादेवी की समान सी प्रतीत होने वाली विभिन्न उक्तिया अवतरणीय हैं—

१. कनक से दिन मोती सी रात ।

—रश्मि

२. दिन बरसा अपनी स्वर्ण रेणु ।
मैली करता जिसकी न सेज ॥
चौंका पाती जिसके न स्वप्न ।
निशि मोती के उपहार भेज ॥
क्या उसकी है निद्रा अनन्त ।
जिसकी प्रहरी तू मूक प्राण ॥

—रश्मि

३. स्मित ले प्रभात आता नित ,
दीपक ले सन्ध्या जाती ।
दिन ढलता सोना बरसा ,
निशि मोती दे मुस्काती ।
४. घर कनक थाल में मेघ,
सुनहला पाटल सा ।
आया प्रिय पथ से प्रात ।

—नीरजा

५. ले-ले तरल रजत औ कंचन ,
निशिदिन ने लीपा जो आंगन ।

वह सुषमामय नभ उनका ,
पल-पल मिटते घन मेरे हों ।

६. दिन निशि को, देती निशि दिन को,
कनक-रजत के मधु-प्याले हैं ।

—नौरजा

सीमित सामग्री में ऐसी विविधता कलाकर्त्री की उन्नत सुरुचि तथा कुशल कला की परिचायक है । जो कलाकार सीमित सामग्री लेकर भी ऐसी सौन्दर्य-सृष्टि कर सकता है, उसकी प्रतिभा प्रशसनीय है ।

महादेवी का महत्व

आज के संघर्ष-संकुल युग में जहाँ केवल जीवन-निर्वाह की कठिनाई से उत्पन्न स्वार्थ की शुष्क प्रेरणा ही प्रधान है, हृदय की वृत्तियों से शून्य अर्थ की निष्ठुर क्रीड़ा ही महान् है, महादेवी ने करुणा का आत्म-प्रसारक संदेश दिया है; उस करुणा का जो मनुष्य की प्रकृति में 'शील और सात्विकता का आदि सस्थापक मनोविकार' तथा मानवता का आधार है। करुणा के द्वारा ही विश्व जीवन में अपने जीवन को मिला, मानववादी भावनाओं को प्रश्रय दिया जा सकता है। इस ध्वस-युग में कल्याण-निर्माण का कार्य मनुष्यता, करुणा और भावना मूलक विश्वास से ही सम्भव है और यही महादेवी की देन है।

आज का जीवन सर्वथा अद्यवस्थित-विश्रुंखलित है क्योंकि जीवन के किसी सिद्धान्त पर हमारा विश्वास स्थिर नहीं रहता, इस सर्वग्राही अविश्वास का परिणाम है जीवन-मूल्यों की अराजकता। ऐसी अवस्था में महादेवी ने 'यामा' की भूमिका में ठीक ही लिखा है—“इस युग में अपने प्रति भी विश्वास बचा रखने का क्या मूल्य है, इसे मेरा हृदय ही नहीं मस्तिष्क भी जानता है। भार तो विश्वास का भी होता है और अविश्वास का भी, परन्तु एक हमारे सजीव शरीर का भार है जो हमें ले चलता है और दूसरा सजीव शरीर पर रखे हुए जड़ पदार्थ का जिसे हम ले चलते हैं।”

निस्सन्देह महादेवी में प्रतिभा की दृढ़ता सर्वाधिक है। वे अपने साधना-पथ पर अटल हैं। साधना-मार्ग में इतनी अनन्य निष्ठा और किसी कलाकार ने प्रदर्शित नहीं की। वस्तुतः यह साधना की दृढ़ता

प्रत्येक मनुष्य के लिये आवश्यक है । जरा 'सान्ध्य गीत' तथा 'दीप-शिखा' की ये पंक्तियाँ देखिये—

१. मैं सजग चिर साधना ले ।

२. दीप मेरे जल अकम्पित ।

घुल अचंचल ।

३. प्राणों ने कहा कब दूर,
पग ने कब गिने थे शूल ?

४. पंथ रहने दो अपरिचित,
प्राण रहने दो अकेला ।

५. पूछता क्यों शेष कितनी रात ?
... ..

मिथ्य अरे बढ़, आ रहे यदि प्रलय भ्रंभावात ।

कौन भय की बात ?

इसी दृढता के परिणाम स्वरूप इनकी काव्य-धारा का क्रमिक विकास हुआ है, जिस में किसी प्रकार की असंगति नहीं । 'यामा' की भूमिका में लिखती है—“नीहार की सबसे पुरानी रचना सम्भवतः 'उस पार' है । उसकी सहज भाव से लिखी—

विसर्जन ही है कर्णधार ।

वही पहुँचा देगा उस पार ॥

आदि पंक्तियाँ आज भी मेरे हृदय के उतनी ही निकट हैं जितनी तब थी । मानव को मानव की तुला पर गुरु होने के लिये स्वार्थ की दृष्टि से कितना हल्का होना पड़ता है, यह प्रश्न इतने दीर्घ काल में अनुभव के लम्बे पथ को पार कर स्वयं उत्तर बन गया है, परन्तु इसके पहले रूप में निहित सत्य की मुझे फिर नवीन रूप में प्रतिष्ठा नहीं करनी पड़ी ।” अब 'दीपशिखा' का यह अन्तःकरण देखिए

जो 'विसर्जन ही है कर्णधार' का गौरवमय विकसित रूप है—

अब तरी पतवार ला कर ।

तुम दिखा मत पार देना ॥

आज गर्जन में मुझे बस ।

एक बार पुकार लेना ॥

ज्वार को तरणी बना मे इस प्रलय का पार पा लूँ

इस प्रकार आज की विस्फोटक परिस्थितियों में साधना की विश्वासमयी अविच्छिन्न-अप्रतिहत गति महादेवी का साधु सन्देश है ।

आधुनिक रहस्यवादी कवियों में महादेवी का शीर्ष स्थान है, प्रायः सभी आलोचको ने यह माना है । डा० नगेन्द्र जो महादेवी में रहस्य-चितन देखते हैं, रहस्यानुभूति नहीं, वह भी यह स्वीकार करते हैं—
“मैं समझता हूँ कि उनका काफी समय आध्यात्मिक रहस्य के अध्ययन और मनन में बीता है । अतएव उनके गीतों में जो रहस्य-संकेत मिलते हैं वे पूर्णतः स्वानुभूत सत्य न होते हुए भी एक दम छायावाद-युग के कवि समय मात्र भी नहीं हैं ।”

हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में “सभी छायावादी रहस्यवादी नहीं हैं । रहस्यवादी के चित्त में किसी न किसी रूप में परम-प्रेममय परम आनन्दमय, लीला-निकेत, चितरन्तन प्रिय का विश्वास अवश्य होना चाहिये । दो प्रकार से यह विश्वास आ सकता है—(१) चितन मनन से और (२) भीतर की पीड़ा और व्याकुलता की अनुभूति के द्वारा । प्रथम श्रेणी के रहस्यवादी प्रसाद जी हैं, दूसरी श्रेणी में महादेवी प्रमुख हैं प्रसाद और महादेवी की कविताओं में रहस्यवाद की पूरी अभिव्यक्ति है । अन्य कवियों में या तो थी ही नहीं, या थी तो भी अस्पष्ट ।”

इसी रहस्य-भावना द्वारा महादेवी ने स्थूल तथ्यों को भेद कर जीवन सत्य को देखने की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि दी है ।

महादेवी ने रहस्यवाद को भी एक नूतन व्यवस्था दी है और उसकी परिधि का विस्तार किया है। इसमें मुरझाई कलियों का रुदन भी है और व्याकुल आत्मा का युग-युग से प्रवाहमान अधीर-नीर भी। इसमें 'उस पार' पर दृष्टि नहीं, 'इस भू' पर दृष्टि है। अलबेला-अलौकिक प्रियतम और कही नहीं रहता, कण-कण में बिखरा हुआ है, अतएव रहस्यवादी कवि को साधना की दृष्टि से, अपने प्रति वैरागी होकर ससार के कण-कण के प्रति अनुरागी होना है। अब रहस्यवादी मानव का आवास वह 'मुक्तिलोक' नहीं जहाँ उसकी गति अवरुद्ध हो जाये, वह 'भू' है जहाँ करुणा से गति अनन्त हो जाती है—

मैं गति विह्वल ।

पाथेय रहे तेरा दृग जल ॥

आवास मिले भू का ग्रंथल ।

मैं करुणा की बाहक अभिनव ॥

—दीपशिखा

अलौकिक-आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा करुणा आदि कल्याणकारी भावनाओं को एक ओर रखकर यदि महादेवी के काव्य का आस्वादन किया जाये तब भी वह अपनी कसौटी पर खरा उतरता है। 'नीहार से दीपशिखा' तक एक ऐसी नारी के दर्शन होते हैं कि जिसमें एक विरहिणी प्रेमिका की विभिन्न भावना-कल्पना तथा आशा-निराशाएँ अंकित हो गई हैं। विरहिणी प्रेमिका के भाव-संकल्पों की रामकहानी इस अपूर्व तथा सर्वांग रीति से स्पष्ट हो रही है कि 'हूरिऔध' के इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं दिखाई देती—“स्त्री सुलभ भावों का चित्रण यथार्थ रीति से स्त्री ही कर सकती है। इन के पद्यों को पढ़ कर यह बात असंदिग्ध हो जाती है।” निस्सन्देह महादेवी के पास एक वास्तविक नारी हृदय है। वस्तुतः महादेवी के गीतों की मनो-रमता-सरसता का एक महत्वपूर्ण कारण लौकिक रूपक है, जो हमारे

जीवन के अधिक निकट हैं, चाहे इनके द्वारा आध्यात्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है ।

इन लौकिक रूपकों में सरसता के साथ मर्यादा भी है । 'आधुनिक कवि' की भूमिका में महादेवी छायावाद की एक महत्वपूर्ण विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखती हैं कि उसमें "वासना को बिना स्पर्श किये जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य को अंकित किया है" । निस्सन्देह महादेवी पर उनका ही कथन सर्वाधिक लागू होता है क्योंकि उन्होंने स्त्रियोचित सात्विकता का कही त्याग नहीं किया ।

अनेक विद्वान् आलोचकों के शब्दों में महादेवी के गीति-काव्य के महत्व और इस क्षेत्र में आधुनिक कवियों में उनके शीर्ष स्थान को हम व्यक्त कर चुके हैं ।

प्रमुख छायावादियों में विधिवत अध्ययन यदि किसी ने किया है तो वह है महादेवी । अतएव इनकी कला में जैसा स्वच्छ सौष्ठव है, वैसा दूसरों में नहीं । पंत, गुप्त और निराला का वागाडम्बर तथा भाषा-दोष महादेवी में विरल है । इनमें कला विषयक संयम सर्वाधिक है । शांतिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में "कला का सौन्दर्य पत में है, कला का प्राण महादेवी में, कला का चमत्कार निराला में" हमें इस कथन में कोई अत्युक्ति नहीं दिखाई देती, पंत में कला की मीनाकारी अवश्य है किन्तु अनुभूति तत्त्व की दुर्बलता के कारण वह मार्मिक प्रभविष्णुता नहीं, जो महादेवी की कला में है । निराला ने विषय और कला में विविध प्रयोग किये हैं, अतएव कला में नूतनता जन्य चमत्कार मिलता है किन्तु वह परिष्कार और मार्मिकता नहीं मिलती जो महादेवी की पथक् विशेषता है ।

महादेवी अपनी प्रतिमा की सीमा से भली-भाँति अवगत है । अवगत ही नहीं, इसका कविता में प्रामाणिकता से पालन भी हुआ है उन्हीं के अनुसार—"साधारणतः हमारे विचार विज्ञापक होते हैं

और भाव संक्रामक, इसी से एक की सफलता पहले मननीय होने में है और दूसरे की पहले संवेदनीय-होने में । कविता अपनी संवेदनीयता में ही चिरन्तन है, चाहे युग विशेष के स्पर्श से उसकी बाह्य रूप रेखा में कितना ही अन्तर क्यों न आ जाये । और वह संवेदनीयता भाव पक्ष में ही अक्षय है” महादेवी में भाव पक्ष की रक्षा निःसंशय हुई है । इस दृष्टि से इन्होंने पंत तथा निराला से अधिक सजगता का परिचय दिया है । यथा निराला के परिमल की ‘कण’ तथा गुञ्जन की ९. १०. १२. १३ आदि कविताएँ देखी जा सकती हैं, जहाँ चिन्तन की चिंता ने कविता की कमनीयता को दबा दिया है ।

महादेवी की महत्व की भी अपनी सीमाएँ हैं—इसका निषेध सम्भव नहीं । उसमें जीवन-जगत की समग्रता का ग्रहण—प्रतिभा की व्यापकता—कहाँ है ? पन्त प्रसाद, निराला इस दृष्टि से बहुत आगे हैं । जीवन के विभिन्न विरोधी तत्वों का चित्रण अथवा जीवन की अनेक रूपता यहाँ नहीं । सीमित क्षेत्र होते हुए भी महादेवी युग-युग की कवयित्री बनी रहेगी । मीरा के बाद पीडा को इतने सुन्दर मधुर रूप में कौन रूपायित कर सका है ? स्थूल समस्याओं को हल करने का प्रयास महादेवी ने नहीं किया किन्तु इन समस्याओं के समाधान के लिए जिस भावात्मक प्रेरणा की आवश्यकता होती है, उसकी कमी यहाँ नहीं । एक तो मानवता की रक्षक मूलवृत्ति कृष्णा का चित्रण हुआ है, दूसरे काव्य की आत्मा-रस-की रक्षा हुई है, जिस के कारण ही साहित्य देश काल से ऊपर उठ कर समाज की रागात्मक भावनाओं को आन्दोलित—परिष्कृत करता रह सकता है । तीसरे इनके गीतों का कलात्मक सौष्ठव हमारे साहित्य का सदैव शृंगार बना रहेगा ।

यदि कवयित्रियों की दृष्टि से देखा जाये तो महादेवी आधुनिक युग ही नहीं, समस्त भारतीय वाङ्-मय की श्रेष्ठ कवयित्री है । छायावाद की वृहत्त्रयी की शोभा महादेवी के साथ ही है, नहीं तो इसकी वह तरलता और मिठास कहाँ रहती जो अब है ।

नोरजा का महत्व

महादेवी की कृतियों में 'नीरजा' सर्वोत्कृष्ट है। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

१. 'नीहार' और 'नीरजा' में अनुभूति की तीव्रता सर्वाधिक है, 'सान्ध्यगीत' और 'दीपशिखा' में यह तीव्रता क्रमशः कम होती गई है, 'रश्मि' में भी दार्शनिकता का आग्रह अधिक है। 'नीहार' प्राथमिक प्रयास है इसलिये 'नीरजा' का महत्त्व अधिक है। नीरजा में सांध्यगीत और दीपशिखा से तीव्रता क्यों अधिक है, इसका उत्तर पन्त की 'स्वर्ण धूलि' और 'स्वर्ण किरण' के सम्बन्ध में कहे हुए महादेवी ही के इस कथन से स्पष्ट है—“आरम्भ की लिखी हुई चीजों में भाव-पक्ष कुछ अधिक रहता ही है, बाद में चितन-पक्ष की बहुलता हो जाती है।” निःसन्देह पन्त की प्रारम्भिक कृतियों—ग्रन्थि और पल्लव जैसी अनुभूति बाद की रचनाओं में दिखाई नहीं पड़ती। यही अवस्था महादेवी की है। डा० नगेन्द्र ने इस तीव्रता का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इस प्रकार किया है—“नीहार से लेकर 'दीपशिखा' तक आते-आते महादेवी की अनुभूति ने सूक्ष्मता और स्थिरता में जितनी वृद्धि की है, तीव्रता में उतनी क्षति भी भोगी है। इसका अर्थ यही है कि महादेवी जी का मन क्रमशः (व्यक्तिगत पीड़ा को लोकव्यापी बनाता हुआ सुख-दुःख का सामञ्जस्य स्थापित करता रहा रहा है और यह सामञ्जस्य सर्वप्रथम हमें 'नीरजा' में मिलता है, परन्तु फिर भी उसमें व्यक्ति की पुकार दुर्बल नहीं पड़ी। 'सान्ध्य गीत' में आकर जिस अनुपात से पीड़ा का अव्यक्तिकरण हुआ है, उसी अनुपात से उसमें अनुभूति की तीव्रता भी कम हो गई है, 'दीपशिखा' इसी दशा

में एक अगला कदम है। 'सान्ध्य गीत' में जहाँ दुःख और सुख का सामञ्जस्य पूर्ण हुआ हुआ था, वहाँ 'दीप-शिखा' में दुःख अपना दर्शन खोकर सुख को समर्पण कर बैठा है।" डा० साहब का उक्त कथन मुझे कुछ सीमाओं में ही मान्य है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, व्यक्तिगत अभाव को प्रबल प्रभाव के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, मूल के रूप में नहीं। किन्तु व्यक्तिगत अभावों का काव्य की तीव्रता से घनिष्ठ सम्बन्ध तो रहता ही है।

२. गीति-काव्य की दृष्टि से भी 'नीरजा' ही सर्वोत्कृष्ट कृति है। एक तो नीरजा में अन्य कृतियों से लोक गीतों का संस्पर्श अधिक है, दूसरे इसमें संगीत की दृष्टि से विविध मनोज्ञ मनोरम प्रयोग मिलते हैं।

३. नीरजा का चित्र फलक 'सान्ध्य गीत' और 'दीपशिखा' से विस्तृत है। 'सान्ध्य गीत' और 'दीपशिखा' में चित्रों का वातावरण निश्चित-सा है, 'नीरजा' में पर्याप्त विविधता है। काव्य-सामग्री सीमित होने के कारण 'सान्ध्य गीत' और दीप शिखा में पुनरावृत्ति का आभास मिलने लगता है जो रोचकता में बाधक सिद्ध होता है।

४. महादेवी ने अपनी रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति लौकिक रूपको द्वारा की है। और इनकी रुचिरता-सरसता सर्वाधिक नीरजा में है।

द्वितीय खण्ड

‘नीरजा’ की व्याख्या

: १ :

अवतरण—साँध्यगीत की भूमिका में महादेवी लिखती है:—

“नीहार के रचनाकाल में मेरी अनुभूतियों में वैसी ही कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती थी जैसी बालक के मन में दूर दिखाई देने वाली अप्राप्य सुनहली उषा और स्पर्श से दूर सजल मेघ के प्रथम दर्शन से उत्पन्न हो जाती है। ‘रश्मि’ को उस समय आकार मिला जब मुझे अनुभूतियों से अधिक उसका चिन्तन प्रिय था। परन्तु ‘नीरजा’ और ‘साँध्यगीत’ मेरी उस मानसिक स्थिति को व्यक्त कर सकेंगे जिसमें अनायास ही मेरा हृदय सुख दुःख में सामञ्जस्य का अनुभव करने लगा। पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम रोम में ऐसा पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही हाथ में खिला हो ; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी, फिर वह सुख-दुःखमिश्रित अनुभूति ही चिन्तन का विषय बनने लगी और अब अन्त में मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर भीतर में सामञ्जस्य सा ढूँढ़ लिया है जिसने सुख दुःख को इस प्रकार का बुन दिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिला रहता है।”

इस प्रकार नीहार की कुतूहलमिश्रित वेदना और रश्मि के दर्शन-चिन्तन के पश्चात् नीरजा सुख-दुःख के सामञ्जस्य को लिए हुए अलौकिक वेदना तीव्र तथा अनुभूति घनीभूत हो गई है (वैसे भी नीरजा, कमलिनी को दिन भर ताप सहन करना पड़ता है)। यह वेदना भी मधुर है, उज्ज्वल-आह्लादकारी है। इसमें विषाद की काल्प-

३. शम्भुनाथसिंह ने 'अश्रुनीर' में पुनरुक्ति दोष देखा है किन्तु ऐसा नहीं है—क्योंकि 'बुदबुद' तथा फेन दिखाने के लिए अश्रु से काम न चलता, 'नीर' आवश्यक था।

[जीवनपथ का दुर्गमतम तल]

८ शब्दार्थ— दुर्गमतम = कठिनतम । सजल = जलयुक्त । युग = दो । तृषित = प्यासा । तीर = किनारा ।

अर्थ—जिस प्रकार कोई नदी अपने असम-अनगढ़ तथा शुष्क-कठोर मार्ग को एकरूप तथा गीला करती हुई दोनों किनारों पर रहने वाले प्यासे लोगों को भी शीतल करती रहती है उसी प्रकार कर्णा का प्रवाह अपने विषम तल (जीवन) को समव्यवस्थित तथा उसकी दुर्वह कठिनाइयों को कम करता हुआ दोनों सूखे किनारों—जन्म और मृत्यु, जिसके बीच जीवन चल रहा है—को शीतल करता है।

विशेष—१. कर्णा के अभाव में जीवन में शुष्कता-नीरसता रहती है—यही इन पंक्तियों का सार है। कर्णा के द्वारा आत्मा का विस्तार-परिष्कार होता है और उसके बिना आनन्द असम्भव है।

पंत ने भी 'गुंजन' की "नौका विहार" में जन्म और मृत्यु को जीवन के दो किनारों के रूप में लिया है :—

विर जन्म मरण के द्वार पार ।

शाश्वत जीवन नौका विहार ॥

साँध्यगीत में महादेवी ने कहा है—“सुरभित ३ जीवन मृत्यु-तीर” एक और स्थान पर विरह मिलन सरिता के दो कूल कहे गये हैं :—

विर मिलन-विरह पुलिनो की

सरिता हो मेरा जीवन

किन्तु यहां जीवन-मृत्यु वाला अर्थ अधिक संगत प्रतीत होता है ।

[इसमें उपजा यह नीरज सित]

शब्दार्थ—सित=श्वेत, मीलित=संकुचित ।

अर्थ—इसी सुख दुख से पंकिल जल से एक शुभ-श्वेत कमल उत्पन्न हुआ है जिस की पंखुड़ियाँ कोमल, अर्धविकसित तथा मकुचित-मीलित हैं । यह अपने में सौरभ रूपी मधुर वेदना को छिपाए हुए है ।

विशेष—१. श्वेत कमल महदेवी की साधना-साध्य, सात्विक कृत्ति 'नीरजा' का प्रतीक है जिसमें लौकिक कामनाओं का कर्म नहीं, सात्विकता की स्वच्छता है ।

२- (He incudes she) के आधार पर 'नीरज', 'नीरजा' हो गया है । 'कोमल कोमल' लज्जित तथा मीलित स्थियोचित विशेषण भी नीरज को 'नीरजा' (इस काव्यग्रन्थ की ओर संकेत) बना रहे हैं । 'कोमल-मीलित आदि नीरजा की अव्यक्त रहस्यवादी भावनाओं की ओर भी संकेत कर रहे हैं । मधुर वेदना के कारण 'कोमल' विशेषण आया है । कमल अभी लज्जित-मीलित ही है क्योंकि सूर्य रूपी प्रियतम के द्वारा वह पूरी तरह से खिल सकेगा । अभी तक प्रियतम की कृपा प्राप्त नहीं हुई ।

३. 'मधुर पीर'—इस काव्यग्रन्थ में ऐन्द्रिय वासनाओं से मुक्त, आह्लादकारी अलौकिक वेदना की अभिव्यक्ति हुई है । जिस प्रकार कमल का सार सौरभ में है इसी प्रकार 'नीरजा' का सर्वस्व मधुर पीड़ा में है ।

[इसमें न पंक का चिह्न शेष]

शब्दार्थ - सलिल = जल ।

अर्थ —यह नीरजा भौतिक सुख दुख के सलिल-पंक से असम्पृक्त

है । इस पर भ्रमरों की भीड़—लौकिक मायाजाल—का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

विशेष—पंक तामसिक वृत्तियों से उत्पन्न दुख तथा सलिल राजसिक वृत्तियों से उत्पन्न सुख का प्रतीक है ।

[“तेरे करुण-कण से विलसित”]

शब्दार्थ—विलसित = चमकता हुआ ।

अर्थ—प्रियतम को सम्बोधित करके साधिका कहती है कि यह नीरज तुम्हारे करुणा जल से ही सुशोभित हो सकता है । हे अरुण (सूर्य) स्वरूप प्रियतम तुम्हारी चितवन की किरणों तथा तुम्हारी चेतनारूपी प्रातःकालीन सुखद समीर के स्पर्श से ही इस अर्धविकसित कमल का विकास-विलास सम्भव है ।

विशेष—१. कमल के विकास के लिए जल, समीर तथा रविकिरणों की ही आवश्यकता होती है और वही यहाँ है ।

२. ‘नीरजा’ की आगामी कविताओं में जिन भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है उनकी मूलाधार यह कविता है ।

३. इसमें रहस्य-भावनाओं के अनुकूल ही लाक्षणिक-सांकेतिक शैली का प्रयोग हुआ है । यह शैली तथा चित्रमयमा, अर्थगाम्भीर्य आदि विशेषताएँ जो इस कविता में मिलती हैं वही नीरजा की आगामी कविताओं की सामान्य विशेषताएँ हैं ।

४. यहाँ साँगरूपक अलंकार है । क्योंकि कमल विशेष है, इसीलिए उसे भीरे नहीं जगा सकते—ऐसा कहा गया है ।

: २ :

अवतरण— इस कावता में वसंत की उस मादक रात्रि का मधुर आवाहन किया गया है जिसमें मन अनायास ही अभिसार के लिए चंचल हो उठता है ।

[धीरे धीरे उतर क्षितिज से]

शब्दार्थ— वलय = चूड़ी । मुक्ताहल = मोती । अवगुंठन = घूँघटा । अभिराम = सुन्दर ।

अर्थ - हे वसन्त रजनी तू क्षितिज से धीरे धीरे उतर कर विश्व में पदार्पण कर । तू अभिसारिका है अतएव अन्तर्बाह्य श्रृङ्गार कर । तारे रूपी मोतियों से तुम्हारी नई गुंथी हुई वेणी हो । प्रकाशपूर्ण चन्द्रका शीशफूल तथा श्वेत किरणों की चूड़ियाँ तुम्हारा श्रृंगार करे । हृदय में पुलक धारण कर, जल से रिक्त शुभ्र-श्वेत बादलों के घूँघटा को सँवार तथा अपनी दृष्टि-प्रसार से ओस मोतियों को विकीर्ण करती हुई विश्व पर उतर आ ?

विशेष— यहाँ प्रकृति के मानवीकृत रूप अभिसारिका नायिका की भव्य झाँकी है ।

२. यहाँ बीच की तीन पंक्तियों में साग रूपक का निर्वाह हुआ है किन्तु अन्त में सारे छन्द को समासोचित में आवसित कर दिया है ।

३. अलंकारों में रूप और रंग की योजना का विधान है ।

४. पं. की 'संध्या रूपसि' तथा निराला की 'संध्या सुन्दरी' से तुलना कीजिए—

कौन तुम रूपसि कौन ?
 व्योम से उतर रही चुपचाप
 छिपी निज छाया छवि में आप
 सुनहरा फंला केश कलाप
 मधुर मंथर मृदु मौन ।

—पंत

दिवस अवसान का समय,
 मेघमय आसमान से उतर रही है,

संध्या सुन्दरी परी सी

धीरे धीरे धीरे ।

—निराला ।

५. 'तारकमय नव वेणी बन्धन' में अंग्रेजी के कवि शैली की 'The cloud शीर्षक कविता में प्रयुक्त 'star in wrought' का आभास चाहे मिलता हो, किन्तु महादेवी ने इस का अनुकरण नहीं किया ।

[मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि]

शब्दार्थ— तरंगिणि = नदी, किकिणि = करधनी, कटि पर धारण किए जाने वाला एक आभूषण । तरल = द्रव, तीव्रगामी ।

अर्थ— वायु से हिलते हुए पत्तों की मर्मराहट नूपुर ध्वनि, सर-सरिताओं के कमलों में बदी भ्रमरों की गुंजार ही करधनी का स्वर और मंद-मस्त प्रवाह वाली नदी ही मानो तुम्हारी मंथर चाल हो । हे सखी अपनी स्निग्ध हँसी से चाँदी के समान श्वेत चमकीली ज्योत्स्ना फैलाती हुई आ ।

[पुलकित स्वप्नों की रोमावलि]

अर्थ— रात्रि के समय विश्व को स्पन्दित-रोमांचित करने वाले मधुर स्वप्न तेरी रोमावली हो, भावी मधुर मिलन की अनंदमयी कल-कल्पनाओं से तुम्हारा रोम-रोम खिला हो । तेरे कमल-कोमल करो में अतीत जीवन की मधुर स्मृतियाँ अंजलि स्वरूप हों । हे सखी ! मलय समीर तुम्हारा

चंचल दूकूल हो । जैसे रात्रि की श्यामल छाया विश्व के अभिसारार्थ अनुकूल वातावरण प्रस्तुत करती है वैसे ही तू भी घिर कर विश्व के अभिसारार्थ उपयुक्त अवसर प्रदान करती हुई, अभिसारिका के समान सकृचाती हुई— जडित-पद नमित-पलक-दृगपात वाली लज्जावनतमुखी होकर—विश्व पर उतर आ ।

विशेष—‘पुलकित स्वप्नो’ में विशेषण विपर्यय अलंकार है ।

[सिहर-सिहर उठता सरिता उर ।]

✓ **शब्दार्थ**— सिहर उठा = काँप उठा । पदचाप = पदध्वनि । पुलकित = रोमांचित ।

अर्थ— वसंत आदि का परम सुन्दर रूप उस ‘चिर सुन्दर’ परमात्मा का ही रूप है । प्रकृति उसका स्वागत करती है ! मानो यह प्रकृति (अवनि)-नायिका अपने प्रिय वसंत के आगमन से पुलकित हो गई है ।

सरिता का हृदय किसी आंतरिक सुख की प्रेरणा से स्पंदित हो उठा । मकरंद से भर-भरकर फूल खिल उठे । (वसंत के समय प्रकृति में प्रफुल्लता आती ही है ।) प्रत्येक पल मस्ती से भरकर बार-बार लौट कर आने लगा— समय में एक प्रकार का स्पन्दन होने लगा । अवनि-नायिका रहस्यमय परोक्ष प्रियतम की पद-ध्वनि सुनकर सरिता फूल आदि के रूप में पुलकित हो उठी ।

विशेष—उपरोक्त सामान्य अर्थ के अतिरिक्त प्रतीकों के द्वारा (अवनि रूपी) नायिका पर भी यह अर्थ घटित हो रहा है, क्योंकि इस से अभिमार दशा का प्रकाशन हुआ है । जैसे सरिता के हृदय में कंपन के कारण ही तरंगे उठने लगी । ‘सुधा’ (अर्थात् उल्लास) से भरकर ‘सुमन’ खुल पड़े मन की अभिसार के लिए लज्जा दूर हो गई । पलकों

भी प्रसन्नता से मचल उठी । यहाँ सात्विक अनुभावों का सौन्दर्य दर्शनीय है ।

२. वसंत रजनी का अन्य प्रतीकार्थ भी सार्थक है । वसंत = यौवन ; रजनी = विलास । दोनों विलासात्मक प्रभाव डालते हैं ।

३. प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के रूप में हुआ है ।

४. समस्त कविता में सागरूपक अलंकार की छटा है ।

५. इस कविता में अर्थ का इतना सौन्दर्य नहीं जितनी चित्रण की रुचिरता है ।

अवतरण—प्रकृति के मादक वातावरण में प्रियतम की सुधि आ जाने से कवयित्री ने आँसू बहाए हैं और अपने दुखी जीवन को सुखी बनाने के लिए प्रिय-मिलन की कामना-प्रार्थना की है ।

[पुलक-पुलक उर, सिंह-सिंह तन]

शब्दार्थ—प्रवाल=किसलय । शेफाली=नील सिधुवार का पौदा ।

अर्थ—“ज्योत्स्ना धौत वासैंती निशा है, मलय पवन बह रहा है । नायिका उद्यान में है, पुष्पो की भीनी गंध, समीर का रोमाचकारी स्पर्श और उजली चाँदनी का रम्य-दर्शन उसके प्राण, तन और नयन में मादकता भर संज्ञाहीनता का आह्वान कर रहे हैं । ऊपरी दृष्टि से देखने पर ये पंक्तियाँ मधु ऋतु की रजनी का सामान्य वर्णन प्रतीत होती हैं । पर कवयित्री एक साँस में न जाने कितनी बातें सोच रही हैं । शेफाली उसकी आँखों के सामने सकुचा रही है, लज्जा रही है, खिल रही है । उसे तो ऐसा अवसर कभी नहीं मिला कि किसी की समीपता प्राप्त करके वह भी एक पल को सकुचा पाती, लज्जा लेती, खिल उठती । सारा यौवन प्रतीक्षा में ही ढल गया, मन के सारे अरमान आँसू बनकर ही बिखर गए, समस्त जीवन केवल सूनेपन में ही परिवर्तित हो गया । डाली-डाली पर मौलश्री आज अलसाकर शयन कर रही हैं । मधुपवन का उसे मादक परस मिला है । इतने पर वह न अलसाएगी ? पर उसके जीवन में विद्युत् स्पर्श तो बहुत दूर, दर्शन भी दुर्लभ हो उठा है । कभी होगा भी अथवा नहीं, इसका भी अब क्या भरोसा है ।

कुंजों के नीचे झरते हरसिंगार की शैथ्या पर तम और चाँदनी आलिंगन-पाश में बद्ध पड़े हैं और वह मधुपवन ! इसे देखो, इस लोभी ने इतने मधुका संचय किया है कि उसके भार से इससे चला भी नहीं जाता । पर कितना अजान, कितना निष्ठुर है अपना प्रेमी जो हृदय के मानस को सूखते देख रहा है और आता नहीं । अंतर भर उठता है, शरीर सिहर उठता है और आँसू की बूँदे बरोनियों में उलझकर रह जाती है । पर इससे लाभ ? सब व्यर्थ है । सब सारहीन ! विरह सत्य ! प्रतीक्षा सत्य है !! व्यथा सत्य है !!!”^१

विशेष १—पुलकन सिहरन तथा झरते हुए आँसू सात्विक अनुभाव हैं । यह अनुभाव सारा रहस्योद्घाटन कर रहे हैं—मूल भाव को बता रहे हैं । ‘रश्मि’ की इन पंक्तियों में तुलना कीजिए—

“किस सुधि-वसंत का सुमन-तीर
कर गया मृग्य मानस अधीर

× × ×

मजरित नवल मृदु देह डाल
खिल उठता नव पुलक-जाल
मधु-कन सा छलक नयन-नीर

× × ×

अलि सिहर-सिहर उठता शरीर

२. ‘बुनते.....जाली’—की तुलना प्रसाद के ‘आँसू’ की निम्न पंक्तियों से की जा सकती है :—

“लिपटे पड़े सोत थे मन में
सुख-दुख दोनों ही ऐसे
चन्द्रिका अंधेरी मिलते
मालती कुंज में जैसे।”

किन्तु महादेवी के 'जाली' शब्द से धूपछाहीं कपड़े का संकेत मिलता है जिसमें दो रंगों की चमक होती है ।

३. "शेफाली और हरसिंगार को महादेवी ने भिन्न २ माना है यद्यपि दोनों एक ही के नाम हैं ।" —शिवमंगल सिंह सुमन

४. हरसिंगार पुष्प रात्रि के अन्तिम पहर में झड़ा करता है । इसलिए उभयुक्त वर्णन रात्रि का ही है ।

५. महादेवी प्रभावान्विति के लिए शब्दों के दुहरे प्रयोग करने में सिद्धहस्त है । पुलक, सिहर, भर, भर के दुहरे प्रयोग एक विशेष प्रभाव की सृष्टि करते हैं ।

६ "शिथिल.....झर"—यहाँ ध्वनि शैथिल्य है ।

[पिक की मधुमय वंशी बोली ।]

शब्दार्थ—पाटल=ललाई मिला हुआ पीला रंग तथा फूल विशेष ।

अरुण = सूर्य, लाल ।

अर्थ—आज प्रकृति पर विशेष मादकता छाई हुई है । केवल मैं ही नहीं, सारी प्रकृति भावोद्दीप्त हो उठी है । देखो ना कि कोकिल अनायास ही कूक उठी मानो कहीं वंशी बज उठी हो जिसे सुनकर हर्षोन्माद में भोली भ्रमरी ताल देकर नाचने लगी । ओससिक्त लाल पाटल अधिकार पर अपनी धूलि की रोली बिखेरने लगा—ऊषा का लालिमा का अधिकार पर प्रभाव विस्तार होने लगा । रजनी-नायिका अपनी गोद में निर्मल सरोवर रूपी दर्पण को रख और उसमें अपना मुख निहार अपनी नील-कमलवत् आँखों को आँजने लगी, । प्रकृति के इस वैभव-विलास को देखकर मेरे नेत्र आज क्यों भर आए हैं ?

विशेष १. 'पिक भी.....भोली'—कोकिल की काकली ने प्रभात काल की सूचना दी । भ्रमरी इसलिए प्रसन्न हो उठी क्योंकि अरुणोदय के साथ कमलों के रसपान करने का सुअवसर मिलेगा व भ्रमर से मिलाप होगा । वस्तुतः अलिनी से अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करती हुई नायिका का आभास होता है । यदि पिक को यौवन का सन्देश-

वाहक माना जाय तो भोली अलिनी में अज्ञात यौवना नायिका की प्रतीति होती है ।

२. 'अरुण सज्जल.....रोली'—रूपक अलंकार की दृष्टि से इसका अन्यार्थ और भी सार्थक है—सूर्य रूपी पाटल पुष्प अंधकार पर कोमल पराग रूपी रोली (लालिमा) बिखेर रहा है ।

३. 'मृदुल अंक.....इन्द्रीवर' इस पंक्ति में प्रातःकाल सरोवर में कमलों का खिलना व्यञ्जित है ।

४. 'नाच ... भोली'—अभिधेयार्थ नृत्य करना तथा लक्ष्यार्थ उल्लसित होना दोनों में सौन्दर्य है । 'नाच उठना' मुहावरा है ।

५. 'दर्पण सा सर' में उपमा, 'दृग-इन्द्रीवर में रूपक तथा 'मृदुल अंक' में रूपकातिशयोक्ति है । अतएव इन सभी अलंकारों से संश्लिष्ट समासोक्ति समग्र छंद में है ।

[ग्रासू बन-बन तारक आते.....]

शब्दार्थ—वानीर = बेत या सरकंडा । विहाग = राग विशेष ।
उन्मन = उद्विग्न ।

अर्थ—कवयित्री अपनी वियोगावस्था को प्रकृति के माध्यम से प्रकट करती हुई कहती है—तारे साधु होकर (ओस के रूप में) फूलों पर समासीन हो रहे हैं । बेत के वन भी (पवन से) काँपते हुए व्याकुल कंठ से करुण बिहाग राग गा रहे हैं । निशि की नीरवत। में नींद उद्विग्न होकर मानो इधर-उधर घूम रही है और अनेक प्रकार के भावों को जगाकर लौट रही है । ऐसा प्रतीत होता है जैसे निद्रा स्वप्न-संचित करने ही आई थी और यही करके वह निद्रा की घड़ी समाप्त हो रही है ।

विशेष—घोर निद्रा में स्वप्न नहीं आता, 'उन्मन' निद्रा में ही स्वप्न

आते हैं । 'निद्रा उन्मन' में विशेषण विपर्यय आलंकार है क्योंकि व्यक्ति 'उन्मन है, निद्रा नहीं ।

जीवन जल कण से निर्मित सा

शब्दार्थ—पाहुन = अतिथि ।

अर्थ—जीवन (जल, मानव जीवन) जलबिंदुओं अथवा आँसुओं से निर्मित है । यह ससार जलयुक्त मेघ के समान है, जिसमें मानव जीवन ही जल है, आकर्षक किंतु क्षणमग्न आकाशाग्नो रूपी इन्द्रधनुष से जीवन रूपी मेघ चित्रित है । मेघ के समान ही यह धूमिल-दुःखमय—है । जिस प्रकार मेघ पुलकित होकर घिरते तथा सकरुण होकर घुल जाते हैं, बरस पड़ते हैं और उनका यही क्रम उन्हें चिर नूतन बनाए रखता है, वैसे ही मेरी आवस्था है ।

हे प्रिय पाहुने, मेरे पलक-पाँवड़े तुम्हारे स्वागत में बिछे हैं । तुम इन पर चरण रखते हुए इस दुःखमय अथवा मेघाच्छादित ससार में विद्युत के समान आओ—दुखी जीवन में सुख का प्रकाश बनकर आओ ।

विशेष—'जीवन' में श्लेष है । 'पलको में पग धर-धर' में परिवर्तित मुहावरा है ।

अवतरण—यदि प्रियतम से क्षण-भर का स्वप्न मिलन ही हो जाता तो यह मिलन, साधिका को इतना सशक्त बना देता कि वह अपने अभिशप्त जीवन को वरद बना संसार के क्रन्दन को भी धो सकती ।

[तुम्हें बाँध पाती सपने में !]

अर्थ—हे प्रियतम, यदि मैं क्षण-भर के लिए और वह भी स्वप्न मे—प्रत्यक्ष जीवन में नहीं—तुमसे मिल सकती तो मानसिक उपलब्धि से उस एक लघु क्षण मे मेरी जन्म-जन्मान्तरों की प्यास बुझ जाती ।

विशेष—जबसे आत्मा परमात्मा से दिल्ग हुई है, तबसे वह आकुल-व्याकुल है, प्यासी है ।

[पावस-घन-सी उमड़ बिखरती ।]

अर्थ—वह पल भर का स्वप्न-मिलन मुझे इतना सशक्त बना देता है कि मैं वर्षा के मेघों के समान उमड़ और बिखरकर (बरसकर) सब जग को हरीतिमा प्रदान करती—सबको अपना समझकर उस मिलन-जन्य आनन्द का आस्वादन कराती । जिस प्रकार शरद-काल की ज्योत्स्ना-स्नात रजनी सब ओर व्याप्त, पृथ्वी-रूप, होकर संसार के लिए अत्यन्त मधुर सिद्ध होती है, उसी प्रकार मैं भी सर्वत्र शुभ्रता-सात्विकता तथा सुख-आनन्द का प्रभाव-विस्तार कर देती । मेरे लघु आँसुओं में भी विस्तृत-विश्व के दुखों को धोने की सामर्थ्य आ जाती—उस क्षणिक मिलन से मेरी प्यास ही न मिटती, मेरा विषाद ही दूर न होता, अपितु असीम के संस्पर्शों से मैं भी असीम हो जाती और विश्व का विषाद धुल जाता ।

विशेष—प्रियतम से मिलन क्या है मानो अपना आत्म-विस्तार करना है, समग्र संसार के साथ एक रूप होना है । मेरे-तेरे की भावना ही तो ससीमता है—माया है । प्रिय-मिलन से यह माया दूर और आत्मा विस्तृत हो जाती है, और वेदना के आँसु संवेदना (करुणा) के आँसू बन जग के विषाद को धोने में समर्थ हो जाते हैं ।

शरद निशा की उपमा सार्थक है । अथर्व वेद में रात्रि का स्वरूप इस प्रकार व्यक्त हुआ है ।

मद्रसि रात्रि चमसों नवित्रों विश्व गोरूप युवतिर्विषि ।

चक्षुषमत्रि में उराती वमप्रि प्रतित्व दिश्यानक्षत्रारामपमध्यः

अर्थात् “हे विश्रामदायिनी कत्याणी । तू पूर्ण पात्र के समान (शान्ति से भरी हुई) है । सब ओर व्याप्त होकर पृथ्वी रूप हो गई है । हे सब पर दृष्टि रखने वाली स्नेह-शीले रात्रि—तूने उज्ज्वल नक्षत्रों से अपना शृंगार किया है ।”

[मधुरराग बन विश्व सुलाती]

अर्थ—जैसे कोई माता अपनी सन्तान को मधुर लोरियों द्वारा सुलाती है उसी प्रकार उस मिलन-जन्य आनन्दानुभूत आत्मा से ऐसा मधुर मादक भीत फूटता है कि सारा संसार वशीभूत हो शान्ति पाता और मेरी प्रफुल्लता से अणु-परमाणु सुरभित हो उठता । वह क्षणिक किन्तु दिव्य मिलनानुभूति मेरे वियोग-जर्जर जीवन को इतना सशक्त बना देती कि मैं हँसते-हँसते—सहज-भाव से—संसार के हाहाकार को अपने में समेट निःशेष कर देती ।

[सबकी सीमा बन सागर सी ।]

अर्थ—मेरा यह लघु-क्षुद्र व्यवितत्व सागर और प्रकाश की लहर के समान असीम-विराट बन जाता, और मैं ही सबकी सीमा बन जाती । प्रत्येक वस्तु का चरम विकास ईश्वर के समान मझ में होता । उस तारो

भरे वैभव-वलित आकाश को बाँध अपने नयनों में समा लेती—
असीम को लेती—अथवा स्वयं असीम होकर सबको अपने में समालेती ।

विशेष—उपमाएँ अत्यन्त सार्थक हैं—‘तारोमय…… मे’—यहाँ
‘अधिक अलंकार है । रहस्यवादियों का यह प्रिय अलंकार है । ससीम
में असीम का परिचय इससे भली-भाँति दिया जा सकता है महादेवी
ने इस अलंकार का प्रचुर प्रयोग किया है !

[शाप मुझे बन जाता वर-सा ।]

अर्थ—जन्म-जन्मान्तरो से अभिशप्त (दुखी) जीवन मधुर वरदान
बन जाता । यह पतझड़-सा वैभव-हीन तथा ह्रास-जर्जर जीवन चिर
वासंतिक वैभव का रूप धारण कर लेता । उस प्रिय-मिलन के जन्य
उत्तेजना अथवा स्पंदन में अनेक स्वर्गों का सुख समा जाता—उस
मिलन के एक क्षण के आधार पर मेरा मन न जाने कितने आनन्दमय
स्वर्गों की सृष्टि करता ।

[सबसे कहती अमर कहानी ।]

अर्थ—प्रियतम से एक क्षण की मिलन कहानी, मेरे जीवन की
कहानी बन जाती । प्रत्येक श्वास इस अमर कहानी को ही दुहराता ।
एक-एक क्षण उसी मिलन-वेला की स्मृति बन उठता और इसलिए काल
के पथ पर अमिट पद-चिन्ह छोड़ जाता । सैकड़ों मोक्षों के आनन्द
उस मिलन-बन्धन के लघुतम क्षण में ही सन्निहित हो जाते । (अथवा
संसार के दुखों को दूर करने का एक-एक बन्धन मुझे मोक्ष के समान
प्रतीत होता ।)

विशेष—महादेवी के अनुसार “अलौकिक रहस्यानुभूति भी अभि-
व्यक्ति में लौकिक हो जाती”—वैसे तो प्रायः सभी कविताओं में ऐसा
हुआ है किन्तु यहाँ स्थूल-पार्थिक शृंगार परिचायक शब्दावली—प्यास

बुझाना, बाँध लेना, प्राणों का स्पन्दन (excitement) स्वप्न-मिलन (मनोवैज्ञानिक जिसे wish fullilment कहते हैं) आदि का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। और क्योंकि “रसानुभूति प्रत्यक्ष तथा वास्तविक अनुभूति से सर्वथा पृथक् कोई अन्तर्वृत्ति नहीं बल्कि उसी का एक उदात्त और और अवदात स्वरूप है,” इसलिए ऐसी कविताओं में काव्य गुण, रस अधिक होता। नीरजा की आलौकिक रहस्यानुभूति में भी लौकिक रूपकों की रुचिरता है।

यह कविता इस बात का सजग प्रमाण है कि असीम में आश्रय खोजने वाली साधिका, विश्व-मंगल को भी उतना ही महत्व देती है—संसार के क्रन्दन की ओर भी सजग है। यही नहीं, बल्कि प्रिय-मिलन, और विश्व के साथ एक रूप होना, दोनों एक ही बातें हैं।

: ५ :

(अवतरण)—प्रियतम की सुधि जन्य आवेगाधिक्य से साधिका की स्वाभाविक गति-अभिव्यक्ति रुक सी गई है ।

[आज क्यों तेरी बीणा मौन ?]

अर्थ—आज अनायास ही गायिका तेरी बीणा मौन क्यों हो गई है ? आज जीवन की स्वाभाविक-गीत स्थिति में विराम सा आ गया है । किसी की स्निग्ध-सजल स्मृति तुम्हारे प्राणों में मधुर पीड़ा बन के रम गई है और शरीर निश्चेष्ट सा हो गया है—हाथ थक गए हैं, हृदय की धड़कन भी बन्द सी हो गई है मानो हृदय स्तब्ध होकर रह गया है ।

विशेष—रश्मि की इन पक्तियों से तुलना कीजिए । अर्थ स्पष्ट हो जायगा—

कसक कसक उठती सुधि किस की ?

थकती सी गति क्यों जीवन की ?

क्यों प्रभाव छाये लेता

विस्मृति-सरिता के कूल

[भुक्तो आती पलकें निश्चल]

अर्थ—ऐसा प्रतीत होता है कि किसी की स्मृति से सारी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो गई हैं । नेत्र मानो उस स्मृति की मादकता से भुक्त गए हैं और नींद के वशीभूत हो रहे हैं । अनेक प्रकार के स्वप्नों से पुतलियाँ चित्रित प्रतीत होती हैं और जो असंख्य भाव अभी तक हृदय में प्रसुप्त थे वे मानो उद्बद्ध होकर अपार आँसुओं के सागर के रूप में उमड़ आए हैं ।

[बाहर घनन्तम भीतर दुख-तम]

अर्थ—बाहर मेघों का घना अन्धकार छाया है— इस समस्त विश्व में दुख के बादल छाए हैं। विश्व दुःखमय है और तेरे हृदय में भी पीड़ा का अन्धकार है। जैसे बाहर मेघों में क्षण-क्षण बिजली चमक रही है और वही उमकी शोभा है उसी प्रकार तेरे हृदय में प्रियतम की स्मृति रह-रह कर कौंध जाती है वही सुखाशा है। किस की करुण स्मृति ने तेरे जीवन को वर्षा की सजल रात बना दिया है ?

विशेष—१. बाहर घनतम—यह बौद्ध दर्शन का प्रभाव है। यही कविता न० ३ में भी है—‘सजल मेघ सा घूमिल है जग ।’

२. यहाँ कवयित्री अन्तर्जगत का बाह्य जगत में और बहिर्जगत का अन्तर्जगत में प्रतिबिम्ब देखती है।

: ६ :

अवतरण—प्रियतम से अभिसार के लिए सखी विरहिणी नायिका को साज-शृंगार करने को कह रही है ।

[शृंगार कर ले री सजनि]

शब्दार्थ—क्षीरनिधि=दुग्धसागर । उर्मियो=लहरो । रजत=चाँदी ।

अर्थ—हे सजनी ! तू भी प्रियतम से मिलने के लिए शृंगार कर ले । तनिक प्रकृति को तो देखो ! उसने प्रियतम से मिलनोत्कंठा में अपना घरवार कैसा सजा लिया है ! आकाश रूपी सागर में नूतन दुग्धसागर की चंचल लहरों के समान शुभ्र-धवल तथा हलके-रूपहले शरद ऋतु के मेघ तथा फेनयुत बुदबूद् रूपी मोतियों की लड़ियों के समान अनन्त तारे तैर रहे हैं । रजत-रश्मियों का घूँघट डाल कर अरुणि-नायिका भी प्रिय समागम की उत्कण्ठा में अनायास सिहर उठती है ।

विशेष—(१) उपमा और रूपक की रुचिरता है ।

(२) 'रजत झीने मेघ सित' में रजत विशेषण सार्थक है । यहाँ रजत से अर्थ होगा चाँदी के समान श्वेत-स्वच्छ । ऐसे विशेष्य विशेषण मूल उपमान भाषा को जगमगा देते हैं ।

(३) साहित्य दर्पण की इन पक्तियों से तुलना कीजिए—

“नेद नभी-मडलमम्बुराशिर्नाशच तारक नव फेन भगाः ।”

[हिमस्नात कलियों पर जलाये !]

शब्दार्थ—हिमस्नात=ओमयुक्त । अग्नि=भ्रमरी ।

अर्थ—ओसकणों से धुली कलियों पर जुगनू दीप के समान टिम-टिमा रहे हैं (मानो गंगाजल से धुले पात्र में कोई बत्ती जल रही हो) समीर ने मकरंद को रास्तों पर बिखरा कर मानो पथ को लीप दिया है । कमल के कोड़ में बैठी भ्रमरी प्रियतम के स्वागतार्थ उल्लास मग्न होकर गीत गा रही है ।

विशेष—विश्वम्भर मानव' इन पंक्तियोंके सम्बन्ध में लिखते हैं—
'प्रकृति को तो देखो, समागम की उत्कण्ठा में उसने अपने को और अपो घर को कैसा सुसज्जित किया है ? स्थान लिपा-पुता, दीपक जले हुए, संगीत का आयोजन और स्वयं भीतर-बाहर से प्रसन्न पर कैसी शर्मीली बन गई है ।' इस प्रकार स्वागत के लिए भारतीय सभ्यता के अनुसार जो कुछ होता आया है—आगन लीपना, अर्चना के लिए दीपक जलाना तथा मंगलगान—वही इन पंक्तियों में वर्णित है । महादेवी प्रकृति से माँगलिक सामग्री का चयन सात्विक सुरुचि से करती है ।

“तू स्वप्न सुमनो से.....मदिर ध्वनि ।

अर्थ—अतिथि के स्वागत के लिए अतिथेय को मिलन-वेश में न होकर मिलन-वेश में होना चाहिए । इस लिए हे सखी । तू मधुर कामनाओं के पुष्पों से अपने शरीर को सजा ले । अनन्त जन्मों की मिलन-साध रूपी अंजन से नेत्रों का शृंगार कर और उपहार स्वरूप अपने विरह को लेकर चल । और सखी ! प्रिय के स्वागत के लिए जो गान गाए जायेंगे उनकी ध्वनि हो तुम्हारे नूपुरों की मधुर ध्वनि बन जाएँ ।

विशेष—(१) प्रथम पंक्ति में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह व्यक्त होता है कि अतिथि के आगमन का हर्ष अतिथेय पर प्रकट हो रहा है ।

(२) पहली पंक्तियों की तरह यहाँ भी महादेवी ने कितनी सौम्य-

सात्त्विक सुरुचि का परिचय दिया है । अलौकिक प्रियतम को रिझाने के लिए अलौकिक-अनूठे उपकरण ही चुने हैं । ऐसे वर्णनों से किसी प्रकार की ऐन्द्रिय उपभोगता की शंका निर्मूल सिद्ध होती है ।

[इस पुलिन के अणु आज है ।]

शब्दार्थ—पुलिन=रेतीला किनारा । निमिष=पल । मनुहार=मनाने के लिए की जाने वाली विनती ।

अर्थ—तुम्हारे मार्ग का प्रत्येक कण भूली हुई पहचान (अर्ध विस्मृति) के समान है—प्रत्येक कण अतीत स्मृतियों को जागृत कर देता है । प्रति क्षण प्रणय की अनुनय-विनय की भाँति वरदान बन कर आता है । प्रत्येक पल में प्रेम के अनुरोध की शक्ति और वरदान का सुखाकर्षण है । अभिसरण पथ बड़ा कठिन है क्योंकि पथ अज्ञात है और प्रिय भी दूर है, फिर भी वसन्त रजनी (यौवन-विलास) में भीगती हुई अविश्रान्त चली जा ।

विशेष—‘मधु’ वसन्त का तथा ‘रजनी’ विलास की प्रतीक है ।

वचन—आज न जाने किस अज्ञात की मधुर अनुभूति से जीवन का सारा वैषम्य समाप्त हो गया है। सुख-दुख, जीवन-प्रलय सब समान भासित हो रहे हैं।

[कौन तुम मेरे हृदय में]

शब्दार्थ—निलय=घर, कमरा। चित्रकार=चित्रकार।

अर्थ—मेरे हृदय में न जाने किस अज्ञात इष्ट का वास है? यह कौन अज्ञात-अलक्षित है जिसकी मधुर अनुभूति नित्य मेरी पीड़ा में भी माधुर्य का संचार कर रही है और जो, मेरे रूप-दर्शन के प्यासे नयनों में अनायास ही आँसू बन कर उड़ रहा है?—प्रिय के अभाव में नेत्र आँसू बहाते रहते हैं। निद्रा के निमृत् (एकांत) निलय में कौन चित्रकार मधुर स्वप्नों का चित्रांकन करता रहता है—मेरी अन्तश्चेतना में कौन भविष्य की मधुर कल्पनाओं की सृष्टि करता रहता है?

विशेष—(१) ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमिका के जीवन का प्रत्येक क्षण प्रिय-मिलन के लिए आविर्भूत हो रहा है।

(२) नंद दुलारे वाजपेयी के शब्दों में, यह पद प्रसाद जी के 'कौन हो तुम भूले हृदय की चिर खोज?' का स्मरण दिलाता है। यद्यपि महादेवी और प्रसाद की रहस्य भावना में यह स्पष्ट अन्तर है कि महादेवी जी का झुकाव सदैव करुणा और भक्ति की ओर रहता है, जब कि प्रसाद जी प्रायः नादात्म्य (वही तू है) का संकेत करते रहते हैं।

[अनुसरण निश्वास मेरे]

अर्थ—मेरा यह जीवन—जो श्वास-निश्वास का क्रम है—निरन्तर किसकी ओर उन्मुख है। अज्ञात-अलक्षित की खोज ही इसका प्रमुख कार्य है। मेरी बहिर्गत आँखें निरन्तर अज्ञात इष्ट को खोजने के लिए ही जाती हैं। और हृदय में अंकित किसी के चरण चिह्नों को चूगने के लिए—हृदयस्थ प्रियतम की स्मृतियों का आनन्द लेने के लिए—ये बाहर गई हुई आँखें बार-बार लौटती रहती हैं। न जाने किस अज्ञात इष्ट ने श्वासों के पाश में मुझे—मेरी आत्मा को—बन्दी बनाया किंतु विजयी होने पर भी वह मेरे प्रेमिक हृदय के पाश में बन्दी बनकर रह गया है—विजयी भी विजित होगया है।

[एक करुण अभाव में चिर तृप्ति]

अर्थ—प्रियतम के वेदना-बलित अभाव में भी—क्योंकि इस अभाव में प्रियतम की स्मृति संचित रहती है—चिर तृप्ति का कोष है। इस विरह जन्य दुःख का एक-एक क्षण सकड़ो निर्वाणों के वरदान का विधान करता है। मैंने पीडा के साथ उस अनंत निधि, इष्ट, को पा लिया, अतएव यह व्यापार अपने आप में सौभाग्यशाली रहा।

विशेष—१. जयशंकर प्रसाद जी, 'झरना' की 'विषाद' शीर्षक कविता में कहते हैं —

“किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का कण है।”

२. 'करुण अभाव' में विशेषण विपर्यय अलंकार है। विरोधाभास और 'अधिक' अलंकार भी स्पष्ट है।

६. 'पा लिया.....क्रय में'—सांध्य गीत' में भी कवयित्री ने कहा है कि उसने अश्रु-मोतियों से प्रेम को खरीद लिया है—

नयन की नीलम तुला पर ।
मोतियों से प्यार तोला ॥

[गूँजता उर में न जाने]

अर्थ—जिस प्रकार दूरागत संगीत लहरी में एक रहस्यात्मक आकर्षण तथा माधुर्य होता है उसी प्रकार हृदय को न जाने किसकी रहस्यात्मक मधुर अनुभूति आकर्षित कर रही है। यह कैसा विचित्र विरोधाभास है कि आज निज को खोकर—सर्वस्व समर्पण करके भी—मुझे अभाव नहीं अपितु इसके विपरीत मेरी चिर खोज का लक्ष्य, मेरा खोया हुआ प्रियतम, मुझे प्राप्त हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो विरह की पतझड़मयी दुःखद रात्रि मिलन के सुखद वसन्त-प्रभात की अरुणिम रश्मियों में अपनी कालिमा धोकर उपस्थित हो गई है—प्रियतम की मिलनानुभूति के कारण वेदना भी मधुर हो गई है।

विशेषः—‘विपरीत सा’ का यह अर्थ भी हो सकता है कि ऐसी वस्तु की प्राप्ति जिसे पहले कभी प्राप्त न किया हो।

२—इस ‘दूर के संगीत सा क्या’ कहने में अस्पष्टता तथा अतीत स्मृतियों के धुँधले स्वरूप का आभास दिया गया है। भाषा ने भाव को ऊपर उठा दिया है।

रश्मि में भी इसी उपमान का प्रयोग हुआ है पर रश्मि और नीरजा की स्थिति में अन्तर स्पष्ट है—

तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?

नीरजा में ‘उस पार’ की जिज्ञासा के स्थान पर ‘उर में’ की अनुभूति है।

३. विरोधाभास और रूपक अलंकार हैं।

[तिमिर पारावार में आलोक प्रतिमा]

शब्दार्थ—घनसार = कपूर, जल । अकम्पित = स्थिर ।

अर्थ—प्रद्यपि मरे प्राणों में विरह-जन्य दुख रूपी अन्धाकर का तूफान उमड़ रहा है फिर भी प्रियतम के प्रति मेरे प्रेम-विश्वास की दीपशिखा निष्कम्प-निश्चल है—कठिनाइयाँ मेरे अनन्य जन्मुराग पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सकती । ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी विरह ज्वाला से मधुर कपूर का सौरभ बरस रहा है—ज्वाला सुखद-शीतल प्रतीत हो रही है । आज किसी की अनुपम अनुभूति ने मेरे हृदय में ऐसी समस्थिति, संतुलित अवस्था, ला दी है कि जीवन और प्रलय दोनों एक रूप तथा मधुर हो गए हैं ।

[मूक सुख दुख कर रहे]

अर्थ—मेरा मौन व्यक्तित्व सुख और दुख दोनों को समान रूप से ग्रहण करता है । इससे मेरे व्यक्तित्व का निखार-शृंगार हो रहा है । जिस प्रकार कोई मानी नायक अपनी प्रियतमा की विनम्रता से पसीज-प्रसन्न होकर प्यार करने के लिए आतुर हो उठता है उसी प्रकार मानो आज अहंकारी—जो पहले उपेक्षा किया करता था —नभ (स्वर्ग) भी बादलों के रूप में उमड़ घुमड़ कर पृथ्वी पर झुक आया है । मेरा विनम्र आत्म समर्पण सफल हो रहा है । आज सृष्टि-नायिका भी प्रसन्नतापूर्वक अभिसार करने जा रही है—किसी प्रकार की विषमता नहीं रही ।

विशेष—१. 'मूक सुख दुख' में विशेषण विवर्यय अलंकार है । साथ ही नीचे उत्प्रेक्षा द्वारा समासोक्ति को अनुप्राणित किया गया है ।

श्री रामदहन मिश्र इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं । —“इसमें शृंगार सा और प्यार-सा दो उपमान हैं । यहाँ के प्रश्नवाचक 'क्या' यही सूचित करते हैं । यह भी अर्थ किया जा सकता कि यथार्थ शृंगार न होते हुए भी यह वैसा ही है, यथार्थ प्यार न होते हुए भी प्यार ही जैसा कुछ है सुख-दुःख कुछ कह रहे हैं, स्वर्ग कुछ दे रहा है वे वैसा ही है जैसा कि शृंगार-जैसा कि प्यार । प्रत्येक में उपमेय का लोप है ।

३. डा० रामकुमार वर्मा की 'चित्र रेखा' की निम्न पंक्तियों से इस कविता की तुलना कीजिए —

छिपा उर में कोई अनजान !

खोज खोज कर साँस विफल, भीतर आती जाती है
पुतली के काले बादल में वर्षा सुख पाती है ,
एक वेदना विद्युत सी खिंच खिंच कर चुभ जाती है,
एक रागिनी चातक स्वर में सिहर सिहर गाती है ।

कौन समझे समझावे गान ?

छिपा उर में कोई अनजान ।

: ८ :

अवतरण—बाहर से आनन्द की खोज करना एक प्रवंचना अथवा मिथ्या प्रयास है। मानव जीवन की सार्थकता अपने भीतर के आनन्द को खोज निकालने में है—मानव जावन का श्रेय आत्मानन्द की उपलब्धि ही में निहित है।

[ओ पागल संसार]

अर्थ—(अपने प्रस्तुत अर्थ अथवा वाच्य रूप में) दीपक की अंधकार के प्रति उक्ति है। दीपक कहता है हे शीतल—ज्वाला-साधना से हीन—अंधकार के संसार तू जलने का उपहार न माँग। प्रकाश की अभ्यर्थना करके तू जलने का वरदान न माँग क्योंकि तू शीतल है, जलना तेरा मूल गुण नहीं।

[करता दीप शिखा का चुम्बन]

अर्थ—तू जिस दीपक की याचना (माँग) कर रहा है वह दीपक शिखा का स्पर्श करने मात्रा से ही ज्वाला में प्रदीप्त हो उठता है। अतएव जिस प्रकाश के प्रति तुझे इतना अनुराग है, वह पल भर में तुम्हें भस्म कर देगा। प्रकाश से प्रेम करना जलने का सौदा है।

विशेष—यहाँ 'अंधकार का संसार', पार्थिव जीवन तथा 'प्रकाश' चैतन्य आनन्द का प्रतीक है। अतएव बाहर से आनन्द की खोज करना पार्थिव जीवन के लिए श्रेयस्कर नहीं।

[दीपक जल देता प्रकाश भर]

अर्थ—दीपक का अपना धर्म जलाना है इस लिए जब वह जलता है समस्त वातावरण प्रकाशित हो उठता है। पर यदि घर—जिसका

धर्म जलना नहीं—दीपक की ज्वाला धारण करने का प्रयास करे तो जल जायगा । अतएव इस दीपक को अकेले ही जलने दो ।

[जलना ही प्रकाश उसमें सुख]

अर्थ—दीपक जलकर प्रकाश देता है और यह प्रकाश सुख का प्रतीक है । पर बुझने का परिणाम है अंधकार जो दुःख का प्रतीक है । अतएव जिस दीपक का सहज धर्म सुख है उसका विपरीत गुण वाले से अनुकूल सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? इसलिए दीपक ठीक ही कहता है कि अंधकार तुझ में जलन नहीं, तू बुझा हुआ है और दुःख स्वरूप है—मेरे गुणों के प्रतिकूल है तब तेरा-मेरा सम्बन्ध कैसा ।

[शलभ अन्य की ज्वाला से मिल]

अर्थ—दीपक का जलना ही प्रकाश दे सकता है सबका नहीं । जलना सभी का कर्म नहीं है । पतंगे का उदाहरण स्पष्ट है । उसने दूसरों के धर्म में हस्तक्षेप किया इसलिए सर्वस्व गँवा बैठा । परन्तु फिर भी प्रकाश न दे सका ।

विशेष— शलभ को केवल दृष्टान्त के रूप में लिया गया है ।

[अपना जीवन दीप मृदुलतर]

अर्थ --अतएव यदि तुम अपने जीवन को दीप तथा स्नेह (धृत, प्रेम) सिक्त (द्रवित) हृदय को बत्ती बना के साधना अथवा विरह की ज्वाला जला लो तो तुम्हारे जीवन से भी प्रकाश प्रसरित होगा जैसे दीपक से होता है ।

विशेष—१. यह जीवन बाहर से आनन्द की खोज करता है जिस से विफलता ही हाथ आती है । अपनी आत्मा में ही विरह-साधना का दीप जलाने से अपना जीवन और यह संसार दोनों उज्ज्वल हो सकेंगे— बाहर से प्रकाश लेकर नहीं ।

२. अपने वाच्यार्थ में यह कविता दीपक की अंधकार के प्रति उक्ति है और व्यंग्यार्थ में आत्मा की पार्थिव जीवन के प्रति ।

३ कबीर से तुलना कीजिए—

पद जोरे साखी कहै साधन परिगई रौस

काढ़ा जल पीवे नहीं, काढ़ि पियन की होस

४. इस कविता में मनोवैज्ञानिक आलोचक मनोविज्ञान में वर्णित libido का वर्णन पाएँगे जिसके अनुसार आनन्द अपने में ही स्थित है । अतः आनन्द की प्राप्ति के लिए बाहर खोज करना व्यर्थ है ।

: ६ :

अवतरण—यह जीवन विरह-प्रसूत है । इसका समस्त व्यापार अश्रुमय है । यदि तुम (हे अलौकिक प्रियतम) इसे स्वीकार कर लो तो यह कृतार्थ हो जाय ।

[विरह का जल जात जीवन]

शब्दार्थ—जलजात = कमल ; जल से उत्पन्न । आवास = वासस्थान ।

अर्थ—मेरा जीवन विरह-जल से उत्पन्न कमल-सदृश्य है । जबसे आत्मा परमात्मा से पृथक् हुई, उसका वियोगा हुआ तभी से यह जीवन प्रारम्भ हुआ । वियोग जन्य वेदना-जल से उसका (जीवन का) जन्म हुआ है, और करुणा का जीवन में प्राधान्य है, मानों यही करुणा उसका आवास है । इसीलिए निरन्तर अश्रु गिरते रहते हैं । हाँ यह अवश्य है कि रात्रि की नीरवता में वेदना का व्यक्तीकरण अधिक होने से अश्रु फूट उठते हैं । मानो रात्रि उन्हें गिनकर रखने लगती है और दिन इन्हे समेट लेता है—दिन में वेदना अव्यक्त रहती है, आँसू भीतर समा जाते हैं ।

विशेष—जीव का जन्म ही ब्रह्म से वियोग है । रश्मि में कवयित्री ने कहा ही है कि जीव ब्रह्मका उच्छ्वास मात्र है जिसे विश्व-समीर ने चुरा लिया है । मानव-जीवन में यही से विरह-वेदना आरम्भ होती है ।

जन्म ही जिसका हुआ वियोग
तुम्हारा ही तो हूँ उच्छ्वास
चुरा लाया जो विश्व समीर
वही पीड़ा की पहली सांस

[आंसुओं का कोष उर]

अर्थ—प्रियतम से पार्थक्य की अनुभूति करने वाला हृदय ही आंसुओं का कोष (संचय-स्थल) है और नेत्र आंसुओं की टकसाल है ।

इस प्रकार हृदय तथा दृग की तरह मेरा प्रत्येक अंग मानों अश्रुओं से सम्बन्धित है । जल कणों से बने हुए बादल के समान ही कोमल तथा क्षणिक है । वियोग-वेदना में यह भी बादलों के समान घुल रहा है — क्षण-क्षण क्षीण पड़ रहा है ।

विशेष—१. 'आंसुओं'.....'टकसाल' से ऐसा प्रतीत होता है मानों हृदय ही पसीज पसीजकर आंसुओं के रूप में बाहर निकलता है । बिहारी ने कहा ही है—

[नैनन के मग जल बह्यो हियो पसीजि पसीजि ।]

टकसाल में सिकके बनते हैं, धातु मुद्रा का रूप ग्रहण करती है । उसी प्रकार ये भावनाएँ आंसुओं का रूप धारण करती हैं । यहाँ दृग में टकसाल के अभेद आरोपण का आधार कर्म-साम्य है, अतएव यहाँ शुद्धा लक्षणा है ।

२. 'तरल' शब्द भी साभिप्राय है । इससे जीवन का घन के समान घुलना तथा आंसू बन-बनकर टुकटुकते रहना व्यक्त हो सकता है ।

[अश्रु के मधुकण लुटता आ]

शब्दार्थ—हाट=बाजार ।

अर्थ—इस जीवन में वसन्त (सुख) का आगमन भी, मधुकणों के रूप में आंसू ही विकीर्ण करता है । बरसात भी आंसुओं की हाट बन कर आती है । सुख और दुःख दोनों व्यापारों का माध्यम यही आंसू रूपी मुद्रा (accepted currencey) है ।

[काल इसको दे गया ।]

अर्थ—जीवन वियोग-व्यथित है । इसलिए काल भी शुभकौंक्षी बनकर, क्षण रूपी आंसुओं का हार उपहार में देकर मानों उसे रिझाने

का प्रयास करता है । पवन भी सहानुभूतिशील होकर आहें भरता हुआ इस की व्यथा-कथा अथवा कुशल-क्षेम पूछता है ।

विशेष—समय के अनुसार कमल पर ओस आती है तथा वायु भी आकर मानों उसका समाचार पूछती है । यहाँ भी जीवन विरह का कमल है ।

[जो तुम्हारा हो सके ।]

अर्थ—विरह-जल से उत्पन्न मेरे जीवन कमल को हे निरुपम प्रियतम यदि स्वीकार कर लो तो तुम्हारी हास्य रूपी प्रातःकाल से यह प्रफुल्लित हो उठे—तुम्हारे दर्शनो से यह जीवन कृतार्थ हो जाय ।

: १० :

...—यह कैसा विचित्र विरोधाभास है कि मावन-व्यक्तित्व ससीम-असीम, पार्थिव-अपार्थिव, दोनों ही हैं। वह उस परम चैतन्य की अभिव्यक्ति—आधार—भी है, और उस अभिव्यक्ति का माध्यम—आधेय—भी।

[बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।]

अर्थ—मैं तुम्हारी वीणा (आधार-Container) भी हूँ और रागिनी (आधेय-Content) भी हूँ। मैं तुम्हारी (ब्रह्म की) अभिव्यक्ति का माध्यम भी हूँ और अभिव्यक्त वस्तु भी। इस प्रकार मेरा व्यक्तित्व ससीम (वीणा) तथा असीम (रागिनी) का संगम है—आत्मा असीमता की द्योतक तथा शरीर ससीमता का परिचायक है।

विशेष—रागिनी शब्द की कोई सीमा नहीं होती। निराला ने 'परिमल' की 'प्रार्थना' कविता में कहा है—

‘स्वर-सा कर दो अविनश्वर’
[नींद थी मेरी अचल।]

अर्थ—चेतना के प्रादुर्भाव अथवा सृष्टि के विकास के पूर्व, प्रकृति में जो निस्पंदता-जड़ता अथवा सुषुप्तावस्था थी, वस्तुतः वह मेरी ही निद्रावस्था थी। और सृष्टि के उपक्रम के साथ जगत में जो स्पन्दन—चेतना का स्फुरण—हुआ मानो वह मेरी ही अँगड़ाई थी, जागृति थी। इस प्रकार मेरा अस्तित्व प्रलय में था और प्रलय के उपरान्त जो सृष्टि हुई वह भी मेरे ही पदचिन्हों के कारण। मुक्त आत्मा का जो आवागमन के बंधन में बँध जाना है, यह अभिशाप है

किन्तु यह वरदान बन गया है क्योंकि मानव जीवन ही आत्मा की सबसे सफल अभिव्यक्ति है। मेरा अस्तित्व-व्यक्तित्व एक ओर किनारे से बँधा है और दूसरी ओर अकूल प्रवाह में तरंगित है—पार्थिव शरीर की दृष्टि से मैं सात-ससीम हूँ और आत्मा की दृष्टि से असीम-अनंत।

विशेष—१. 'जगत' शब्द सार्थक है। इसका अर्थ है जो गतिशील हो। जागृति और स्पंदन 'जगत' में ही आ सकता है। रश्मि की इन पंक्तियों में अर्थ और भी स्पष्ट है—

चेतना से जड़ का बन्धन,
यही संसृति की हृत्कम्पन,

२. शाप हूँ जो.....मैं—मूलतः आत्मा मुक्त है और मानो किसी शाप-वश ही उसे जगत के बन्धन को स्वीकार करना पड़ा हो—ऐसा प्रसिद्ध ही है कि अमुक ऋषि शाप ग्रस्त होकर संसार में उत्पन्न हुआ। किन्तु इस युग में मानव जीवन की महिमा बढ गई है, इसलिए उसे अभिशाप नहीं समझा जा सकता। रवीन्द्र की अनेको कविताओं में यही स्वर मुखरित हुआ है।

३. नीरजा के ही अन्य गीत में यही भाव व्यक्त हुआ है—

प्रिय मैं हूँ एक पहेली भी।

... ..

प्रिय ! मैं सीमा की गोद पली।

पर हूँ असीम से खेली भी।

४. इन पंक्तियों में विरोधाभास अलंकार है। ऐसा चमत्कार-मूलक अलंकार एक तो पाठक को अपनी ओर आकर्षित करता है दूसरे ससीम-असीम के अद्भुत संगम को व्यक्त करने में कितना सार्थक सिद्ध हो सकता है, यह महादेवी की पंक्तियों से स्पष्ट है।

[नयन में जिसके जलद]

अर्थ—जिस प्रकार तृषार्त चातक अपने विरह की अनन्यता से आराध्य जलद को निरन्तर, एकरस, देखता रहता है मानो उसको अपने नयन में ही बसा लिया हो उसी प्रकार अपनी प्रणयानुभूति की आकुल तन्मयता द्वारा मेरा दिव्य प्रियतम मेरे प्राणों में बसा हुआ है। एक ओर तो मेरा व्यक्तित्व उपर्युक्त साधक (चातक) जैसा है, दूसरी ओर मेरी स्थिति उस निष्ठुर इष्ट, दीपक के समान है जो अपने प्राणों में शलभ को जला देता है—मेरे सात्विक प्राणों में इस मोहमूलक संसार का कोई अस्तित्व नहीं रहता। जिस प्रकार व्याकुल बुलबुल के हृदय में सदैव फूल की इच्छा रहती है मानो फूल उसके हृदय में ही बसा हुआ है उसी प्रकार प्रेम की अनन्यता में प्रियतम मेरे हृदय में बसा हुआ है। मेरा तुम्हारा सम्बन्ध काया-छाया का सम्बन्ध है। जिस प्रकार छाया का अस्तित्व काया से ही है फिर भी वह दूर है, पृथक् है, उसी प्रकार शरीर की विद्यमानता के कारण ही मैं ब्रह्म से पृथक् प्रतीत होती हूँ, वैसे ब्रह्म से अभिन्न हूँ।

मेरे जीवन में यह कैसा विरोधाभास है कि एक ओर मैं तुम्हारे साथ अखण्ड-अटूट मिलन का अनुभव करती हूँ—अखण्ड सौभाग्य है। दूसरी ओर मैं अलग भी हूँ (काया छाया से यह तथ्य भली भाँति समझाया जा सकता है—छाया का अस्तित्व काया से है, यही चिर सुहाग है; किन्तु काया-छायावत पृथकता अथवा दूरी भी है।)

विशेष—नयन में.....चातक हूँ,—ऐसा प्रतीत होता है कि चातक उपभोग नहीं चाहता क्योंकि उससे प्रेम का क्षय होता है। वह तृषा बनाए रखना चाहता है क्योंकि इससे प्रेम अक्षय होता है; विरह में प्रेम का संवर्धन होता है। ऐसी निष्काम भावना से बाध्य होकर ही तो आराध्य-जलद-नयन में बस गया।

‘शलभ...हूँ’—महादेवी अन्यत्र भी लिखती है—

“शलभ में शाप मय वर हूँ,
किसी का दीप निष्ठुर हूँ” ।

[आग हूँ.....हिमजल के]

शदार्थ—हिमजल=बरफ के समान शीतल जल । पल=क्षण, पलक । प्रस्तर=पत्थर । दामिनी=बिजली ।

अर्थ—यह कैसा विचित्र विरोधाभास है कि मैं वह अग्नि हूँ जिससे स्फुलिंग के स्थान पर हिमकण बरसते हैं—प्रियतम के प्रति विरह ज्वाला शीतल आँसुओं के रूप में व्यक्त होती रहती है । मैं वह शून्य—अनन्त काल—हूँ जो पल (क्षण) रूपी पलकों के पाँवड़े पर पैर रखकर आगे बढ़ता हूँ—आत्मा की दृष्टि से मैं शून्य अथवा असीम-अनन्त हूँ जो मानव जीवन में आबद्ध होने के कारण काल से सीमित हूँ अथवा पलों (क्षण) में बंधा रहता हूँ ।

मैं कठोर पत्थर के हृदय में पलने वाला स्पंदन हूँ—मैं वह प्रतिबिम्ब हूँ जो बिम्ब से पृथक् नहीं हो सकता—मैं अपने आधार (ब्रह्म के हृदय की इच्छा—एकोऽहम् बहुस्याम्—का परिणाम हूँ । उसकी इच्छा शक्ति के बिम्ब का प्रतिबिम्ब हूँ, अतएव उससे अभिन्न हूँ । मैं नीलघन (आधार, ब्रह्म) भी हूँ और दामिनी (आधेय, मानवत्मा) भी । जैसे इन दो का घनिष्ठ सम्बंध है वैसे ही तुम्हारा हमारा है । बिना मेघ के बिजली कैसी ? मेघ में ही छिपी रहती हूँ, वही से क्षण भर प्रकाशित होती हूँ, और उसी में विलीन हो जाती हूँ ।

विशेष—१. ‘हूँ वही प्रतिबिम्ब.....उर में । —इसका दूसरा अर्थ उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा, मानो जल में कमल और उसकी परछाई है । कमल (बिम्ब) है और उसकी छाया प्रतिबिम्ब है । जल आधार है जिसमें कमल (बिम्ब) की छाया (प्रतिबिम्ब) पड़ रही है । यहाँ जगत आधार है, ब्रह्म बिम्ब है और आत्मा प्रतिबिम्ब । वैसे

जगत का आधार भी ब्रह्म है इसलिए मानों ब्रह्म अपना अस्तित्व ब्रह्म में देख रहा है ।

२. “आग हूँ जिनसे ढुलकते.....” — प्रणय की जलन में व्यक्ति कोमल तथा संवेदनशील हो जाता है । अतएव समाज के प्रति करुणा के कारण आँसू हिमवत शीतल अर्थात् सहानुभूतिपूर्ण हो जाते हैं ।

नाश भी हूँ मैं अनन्त

शब्दार्थ—अधर=आकाश, ओठ । विस्मृति=भूल ।

अर्थ—पार्थिव जीवन के अन्त (मृत्यु) की दृष्टि से मैं नाश रूप हूँ किन्तु अनादि-अनन्त आत्मा की दृष्टि से चिर विकास का क्रम भी । आध्यात्मिक अनुभूति के कारण त्याग की ज्ञानालोकमयी वृत्ति भी है और लौकिकता के कारण आसक्ति की आज्ञानाधरमयी वृत्ति भी । मैं ही वह तार (साधन) हूँ जिसके द्वारा अमीम शक्ति अपने आप को व्यक्त करती है और आगे की प्रश्रिया—आघात (चोट, थाप), झटका आदि भी जिसके द्वारा उनका लीला-रूप भासित होता रहता है, वह भी मैं ही हूँ । पात्र (आधार) मधु (आधेय), मधुप (भोक्ता) और मधुर-विस्मृति (प्रभाव-पाणिम) भी मैं ही हूँ—मेरा व्यक्तित्व अत्यन्त जटिल है और उसमें विचित्र विरोधाभास है । मैं अधरा (होठ) रूपी आकाश (अधार) भी हूँ और उस पर खेलने वाली स्मित रूपी चाँदनी (आधेय) भी ।

विशेष—इस समस्त कविता में वक्ता मूलक अभिव्यजना का सौंदर्य है जो प्रेम के वक्र-जटिल अनुभवों के अनुकूल ही है ।

: ११ :

श्रवतरण—इस कविता में पहले वर्षा को सुन्दरी तथा बाद में माता के रूप में अंकित किया है। वर्षा के सभी उपकरणों—श्याम मेघों, टपकती बूंदों, चमकती विद्युत्, जुगनुओ, बक-पंक्ति मयूरो का उल्लेख कर पीड़ित-संतप्त तथा उदास-उन्मन जगत को शीतल करने और दुल-राने की चर्चा करते हुए उस विराट की ममता-करुणा की ओर संकेत किया गया है।

[रूपसिं तेरा घन-केश पाश]

शब्दार्थ—लास = नृत्य । सद्यःस्नात = जिसने अभी-अभी स्नान किया हो।

अर्थ—वर्षा को अमित सुन्दरी का रूप देते हुए कवयित्री पहले उसका नख-शिख वर्णन करती है—हे सुन्दरी ये उमड़ते हुए काले-काले बादल ही मानो तेरी सुगन्धित तथा कोमल-काली अलके हैं। क्या तू आकाश-गंगा की, चाँदी के समान श्वेत-स्वच्छ, जलधारा में अपने अंगों को धो आई है ? क्योंकि तेरे अंग अब भी सजल (पानी से भीगे हुए) हैं और मानो शीतल जल के स्पर्श के कारण सारा शरीर भी कांपता-सा जान पड़ता है। गीले मेघरूपी बालों से बूंदें इस प्रकार गिर रही हैं मानो नाना प्रकार से नृत्य कर रही हों।

विशेष—१. यहाँ प्रकृति में निहित उस परोक्ष सत्ता को नारी रूप में मूर्त किया गया है जिसके कायक अवयव और शृंगार-साधन के प्रतीक मेघ, नभगंगा, पवन आदि हैं।

२. यहाँ 'श्यामल'.....कोमल शब्दों की कोमलता, बालों की कोमलता से किसी प्रकार कम नहीं ।

[सौरभ भीना भीना गीला]

शब्दार्थ—दुकल = दुपट्टा ।

अर्थ—उक्त सुन्दरी की वसन-सज्जा का वर्णन करते हुए कवयित्री कहती है कि ऐसा प्रतीत होता है मानो वह शरीर पर अत्यन्त सुरभित, बारीक तथा अजन के समान काली-कोमल साड़ी पहने हुए है जिसके हिलने से रास्ते में (स्नान करके जिस पथ पर चलती है), जुगनू रूपी सुनहरे फूल झड़ते रहते हैं । जैसे सद्यःस्नाता के अंगों से, आभूषणरूप में धारण किए फूल झड़ते हैं उसी प्रकार जुगनू । उसकी तेजस्विनी दृष्टि जहाँ कही पड़ती है वही—बिजली के कौधने के रूप में—दीपक जल जाते हैं । मानो बिजली का कौधना ही उसका दृग्-पात है ।

विशेष—१. 'झरझर' से जुगनुओं की अधिकता व्यंजित हो रही है ।

२. वीप्सा अलंकार का प्रयोग सुन्दर है ।

[उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है]

शब्दार्थ—बकपाँत = बगुलों की पंक्ति । अरविन्द = कमल । मलयज बयार = मलय पर्वत से आनेवाली सुगन्धित वायु । केकी-रव = मोर की ध्वनि ।

अर्थ—उमड़ती मेघमाला के रूप में आन्दोलित वक्ष पर बगुलों की पंक्ति रूपी कमलों का हार है । सुरभित वायु मानो उस सुन्दरी की निश्वासे है जो पृथ्वी के संसर्ग से ही मलय पर्वत का रूप धारण कर लेती है अथवा वायु की तरंगें उसके निश्वासों की सौरभ ग्रहण करके मलय-पवन बन जाती है । मयूर-ध्वनि रूपी मधुर नूपुर-ध्वनि

को सुनकर—और इस रूप में उसके आगमन का संकेत पाकर—संसार की व्याकुल प्यास जाग उठती है ।

विशेष—१. 'केकी-रव'—'काले-काले बादलोंको देखकर भोर नाचा ही करते हैं । २. 'जगती जगती' में यमक अलंकार है ।

[इन स्निग्ध लटों से छा दे तन ।]

अर्थ—(अब तक चित्र शृंगार का था अब वात्सल्य का चित्र है) अपने सजल मेघरूपी स्निग्ध बालों से, दुख से सतप्त जगरूपी उदास शिशुको छाया दो और इसे अपनी पुलकित क्रीड—मेघमाला के घिराव—मे ले लो । इस जग रूपी शिशु के संतप्त मस्तिष्क पर प्रसन्न होकर शीतल चुम्बन दो और इस प्रकार इस जग-शिशु को प्यार करके बहला दो—इसकी पीड़ा तथा संतप्तता को अपनी वर्षा-वत्सलता से हर लो ।

विशेष—१. "प्रकृति का नारी व्यक्तित्व न केवल सौन्दर्यमय है वरन् वात्सल्यपूर्ण और कल्याण-युक्त भी है.....वर्डस्वर्थ आदि प्रकृति-प्रेमी कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत होते हुए उसका कल्याणकारी तथा सुखद प्रभाव मानव स्वभाव पर देखा था । भारतीय मस्तिष्क नारी के वात्सल्यमय रूप की ओर विशेष रूप से आकर्षित रहा है, इसलिए हिन्दी के छायावादी कवियों ने प्रकृतिरूपी नारी के सत्प्रभाव में उसके वात्सल्य रूप का सामंजस्य कर दिया है । इस सम्बन्ध में वह उषा, पृथ्वी आदि सम्बन्धी वैदिक भावना से भी प्रभावित कहा जा सकता है ।"

२. भाषा ने भाव को ऊपर उठा दिया है । "दुलरा देन" तथा "बहला देना" के "ना" में आंतरिक अनुनय-विनय प्रकट हो रहा है और इसमें बालकोचित अनुरोध का माधुर्य है ।

१. डा० शैलकुमारी

३. इस कविता का प्रारम्भ शृंगार से और अन्त वात्सल्य में हुआ है। रस परिपाक की दृष्टि से यह विचारणीय है।

४. समस्त कविता में विशेषकर प्रथम दो पदों में भाषा की मंजुलता-मसृणता चरम सीमा पर है। 'श्यामल-श्यामल' 'कोमल कोमल, —बस ऐसी ही महादेवी की भाषा है। प्रकृति के मानवीकरण का सौंदर्य तो है ही।

: १२ :

अवतरण—रहस्यवाद अपने मूल रूप में अद्वैतवाद से सम्बन्धित है। “रश्मि” में महादेवी ने लिखा है —

“मैं तुम से हूँ एक, एक है जैसे रश्मि प्रकाश।”

अर्थ—नीरजा में यह स्वरूप और भी स्पष्ट है। आत्मा और परमात्माका परिचय तो सनातन ही है। इस कविता में कवयित्री को यही आग्रह है कि जब प्रेयसी-प्रियतम, आत्मा परमात्मा अभिन्न है—दोनों का व्यक्तित्व एक दूसरे में ओत-प्रोत है तो कुछ परिचय देना व्यर्थ है।

[तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या ?]

शब्दार्थ—तारक = पुतलियाँ। ससृति = संसार। पुलक = प्रसन्नता-जन्य रोमांच।

अर्थ—हे प्रियतम तुम मेरे रोम-रोम में बसे हुए हो। मेरे नेत्र तारक (पुतलियों) में तुम्हारी छवि व्याप्त है—उनमें जो ज्योति है वह तुम्हारी ही कान्ति है। मेरे प्राणों में जो स्पंदन है, वह तुम्हारी स्मृति का ही स्पंदन है। मेरी पलकों के उत्थान-पतन में तुम्हारी निःशब्द चाल है। तेरे प्रेम के कारण इस छोटे से हृदय में प्रसन्नता-जन्य रोमांचों का संसार—अत्यधिक हर्षोल्लास—ही बस गया है। इस प्रकार मेरे विभिन्न अंगों में, जीवन में जो चेतना-स्फूर्ति व्याप्त है वह तुझसे ही प्राप्त हुई है—मेरा व्यक्तित्व तुझसे ओत-प्रोत हो रहा है। मैं तुममें ही हो रही हूँ तब भला मेरे लिए जग में और क्या प्राप्य रह जाता है—कुछ नहीं !

विशेष—प्रियतम के लिए ‘चंचल’ विशेषण प्रयुक्त है। यह इसलिए कहा गया है क्योंकि प्रियतम सदा दूर-दूर रहता है, कभी प्राप्त नहीं होता—हरजारी (Everfleeting) है।

[तेरा मुख सहास अरुणोदय]

अर्थ—अरुणोदय में तेरे सस्मित मुख का और विषादमयी रजनी (अंधेरी रात) में तुम्हारी छाया का आभास मिलता है। यह अरुणोदय जागृति तथा रात्रि स्वप्नमयी नींद का ही प्रतीक है—जब दिन (सृष्टि) होता है हम जागते हैं, संसार-कार्य में संलग्न होने हैं और जब रात्रि (प्रलय) होती है हम थकावट दूर करने के लिए सो जाते हैं। मैं तो केवल इतना ही समझती हूँ कि एक क्रीडामय दिन है और दूसरी विश्राममयी रजनी, जो जगत का सहज क्रम है अतएव जगत की रचना और विध्वंस, सृष्टि और प्रलय के भेद समझना अनावश्यक है—जब सृष्टि-प्रलय दोनों तुम्हारे ही प्रतिरूप हैं तो इनके रहस्यों को सुलझाने का व्यर्थ भार क्यों लिया जाये।

विशेष—‘रश्मि’ (या० ९४) की इन पंक्तियों से अर्थ और स्पष्ट हो जायगा—

सिन्धु को क्या परिचय दे देव !
 बिगड़ते बनते बीबि-विलास ?
 क्षुद्र है मेरे बुद-बुद-प्राण ।
 तुम्हीं में सृष्टि तुम्हीं में नाश !
 मुझे क्यों देते हो अभिराम ।
 थाह पाने का दुस्तर काम ?
 [तेरा अधर विचुम्बित प्याला]

शब्दार्थ—अधर-विचुम्बित=ओठों से चूमा हुआ। हाला=शराब। मधुशाला=शराबखाना। साकी=सुरा पिलाने वाला प्रिय व्यक्ति।

अर्थ—यह प्याला तेरे ओठों के स्पर्श से धन्य हो चुका है—यह मानव शरीर तेरी जूठन है और इस प्याले के मधु में जो मादकता-मिठास है वह तुम्हारी मुस्कान ही की मादकता है—मेरे जीवन के उल्लास का रस भी तुम्ही हो। तुम्हारा हृदय ही मधुशाला है—यह संसार तुम्हारी

ही इच्छा का परिणाम है। हे साकी ! यह सब कुछ देने वाला तू ही है फिर यह प्रश्न कैसा कि तুম सुखामृत दे रहे हो या दुःखरूपी गरल ! यह जीवन-प्याला जब तुम्हारा उच्छिष्ट (जूठन) ही है, फिर इसे पीने में—जीवन को सहज भाव से, निःशंक व्यतीत करने में—हिचक कैसी? जब सुख-दुख के कारण तुम्ही हो तो इनको सहज भाव से ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है।

विशेष—१. यहाँ 'प्याला' मानव व्यक्तित्व और 'मधुशाला' संसार का प्रतीक है।

२. 'तेरी ही...हाला—इसमे फारसी शायरी का भाव है। इस मदिरा में अपने आप में कोई नशा नहीं, पर साकी के मुस्कराते चेहरे की मादकता, साकी की मुस्कान, इसमे है। शराब नहीं, वह मानों अपनी मुस्कान घोलकर पिलाता है।

३. साकी अत्यन्त प्रिय व्यवित होता है। साकी से प्राप्त सुरा को सुरापयी (शराबी) निर्वृन्द तथा प्रेम पूर्वक ग्रहण करते हैं।

४. सुन्दर सांगरूपक है।

[रोम रोम में नन्दन पुलकित]

शब्दार्थ—नंदन=स्वर्ग स्थित इन्द्रवाटिका; आनंद देने वाला।
निष्क्रिय लय=मुवित, जिसमें मनुष्य कार्य-मुक्त हो जाता है।

अर्थ—हे प्रिय तुम्हारे प्रेम के कारण मेरा रोम-रोम आनंद प्रदायक (स्वर्ग स्थित) इन्द्रवाटिका के समान प्रफुल्लित है—मुझे प्रत्येक पुलक में स्वर्गिक सुखो का आभास होता है। प्रत्येक साँस मे शतशः जीवन भरे हुए है—अप्रतिम उत्साह है। मेरी एक-एक कल्पना नूतन संसार का विनाश-निर्माण करती रहती है। अतएव मेरे लिए स्वर्ग अथवा मोक्ष मूल्यहीन हो जाते हैं।

[हाल तो खोउ अपनापन]

शब्दार्थ—निर्वासन=दण्ड रूप से निकाला जाना ।

अर्थ—यदि मैं पराजित हो जाऊं तो मुझे निजत्व अथवा अहं को खोकर बरबस अनिच्छापूर्वक प्रियतम में निर्वासित हो जाना होगा—उससे मिल जाना होगा—और यदि मेरी जीत हो गई तो मैं सीपी समान अपने लघु व्यक्तित्व में सागर तुल्य उस विराट को भर लाऊंगी । इन दोनों अवस्थाओं में मेरा और उसका मिलन है, अतएव मेरी हार-जीत का प्रश्न नहीं उठता ।

विशेष - साकेत मे गुप्त जी ने कहा है—

प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है । हार में जिसमें परस्पर जीत है ।

२. सीपी में सागर भर लाने में 'अधिक' अलंकार है ।

[चित्रित तू, मैं हूँ रेखाक्रम]

अर्थ—हे रहस्यमय प्रियतम । तू चित्र है तो मैं उसकी रेखाओं की व्यवस्था हूँ—ब्रह्म पूरा चित्र है और मैं अपूर्ण किन्तु रेखाओं के बिना चित्र कैसा और बिना चित्र के रेखाओं का प्रयोजन कुछ नहीं—रेखा चित्रवत् आत्मा-परमात्मा भी अभिन्न है । तू मधुर गीत है तो मैं स्वरो का मेल हूँ । (यहाँ भी उपयुक्त रेखाक्रम और चित्र की स्थिति है) । तू यदि सीमा-रहित असीम है तो मैं भी सीमा का भ्रम मात्र हूँ, वास्तव में ससीम नहीं हूँ—आत्मा-परमात्मा एक है । मेरा तुम्हारा सम्बन्ध काया-छायावत् है । जैसे ये दोनों अभिन्न हैं वैसे ही मैं और तुम । अतएव हम दोनों में प्रेमी-प्रेमिका का नाटक कैसे हो सकता है ? जब दो हो तभी प्रेम का नाटक हो सकता है । हम दोनों तो अभिन्न हैं अतएव यह प्रेयसी-प्रियतम का सम्बन्ध कैसा ?

विशेष—१. उल्लेख अलंकार है ।

२. प्रियतम है तो 'रहस्यमय' किन्तु कवयित्री ने उसे जान लिया

है। वस्तुतः प्रेयसी-प्रियतम, आत्मा-परमात्मा के पृथक् अस्तित्व का भ्रम ही हमारा अज्ञान है। यही रहस्य है और इसे समझने से ही दोनों की एकता समझी जा सकती है।

३. 'विश्वम्भर मानव' इस कविता की भूमिका स्वरूप लिखते हैं "नीरजा में महादेवी की विचारधारा ज्ञान और प्रेम के दो कूलों के बीच, ब्रह्म और जगत के दो कगारों के बीच, सूक्ष्म और स्थूल के दो पाटों के बीच बही है। बहाव ज्ञान की अपेक्षा प्रेम की ओर अधिक है। स्वरूप की विस्मृति न होते हुए भी अस्तित्व की पृथकता का भान दृढ़ हो गया है और प्रेम का आनन्द आने लगता है। आत्म समर्पण को स्वीकार नहीं किया। दोनों बातें देखिए....."

(क) काया छाया में रहस्यमय

प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या

(ख) हारूँ तो खोऊँ अपनापन....."

४. वस्तुतः 'निर्वासित' शब्द साभिप्राय है।

इसमें स्वेच्छा का भाव नहीं होता। महादेवी ने अन्यत्र भी अपने निजत्व की रक्षा की बात कही है। वैसे भी प्रेममूलक सम्बन्धों के लिए—जैसा कि महादेवी स्वयं लिखती हैं—“द्वैत की स्थिति भी आवश्यक है और अद्वैत का आभास भी, क्योंकि एक के अभाव में विरह की अनुभूति असम्भव हो जाती है और दूसरे के बिना मिलन की इच्छा आधार खो देती है।”

५. निराला के परिमल की निम्न प्रसिद्ध पंक्तियों से तुलना कीजिए—

तुम तुंग हिमालय शृंग,

और मैं चंचल गति सुरसरिता ।

तुम विमल हृदय उच्छ्वास,

और मैं कांत कामिनी कविता ।

: १३ :

अवतरण—प्रेमी अपनी प्रेयसी को त्याग कर जा रहा है । विर-
हिणी, अभिमानी पथिक से कुछ प्रश्न पूछ रही है ।

[बताता जा रे · ·····रानी ।]

शब्दार्थ—उर्वर=उपजाऊ ।

अर्थ—मेरे आँसुओं में संसार के कण-कण को—प्रत्येक क्रूर
कठोर मनुष्य को भी—द्रवित करने की क्षमता है । मेरे विरहजन्य
दुःख में मंत्रको उद्वेलित कर देने की शक्ति है ; मेरा मूल्यहीन दुःख
सबको करुणाशील बनाने के कारण संसार की सम्पदा है । अतएव
हे निर्मोही प्रियतम ! मुझे यह तो बताता जा कि मैं तेरे मिलन-
जन्य सुख-वैभव की याचना करती रहूँ अथवा विरह जन्य दुःख
जो कि करुणा (सवेदना) उद्वेलित करने के कारण संसार की
सम्पदा है, की रानी कहलाऊँ—इन दोनों में से कौन सी स्थिति श्रेय-
स्कर है ?

विशेष—यहां 'नीरजा' की ही कविता सं० २१ की इन पंक्तियों
का भाव प्रतिबिंबित हो रहा है—“प्रिय की भिक्षुक दुःख की
रानी ।”

[दीपक सा जलता ··· ··· ··· पानी]

शब्दार्थ—प्रलयानिल=प्रलय की आँधी

अर्थ—मेरा हृदय दीपक के समान जल रहा है किन्तु वियोग-
जन्य आँसुओं के बादलों और विपदाओं-निश्वासों की आँधी से

यह घिरा हुआ है । अब हे अभिमानी ! तू ही बता कि स्नेह रूपी तेल के स्थान पर हिमजल के समान तुम्हारी उपेक्षा से क्या यह जल सकेगा ? कदापि नहीं । उसे तो तुम्हारा स्नेह चाहिए तभी उसका जलना संभव है ।

[चाहा था ... : विरह कहानी]

अर्थ—मेरी तो यह इच्छा थी कि मैं आवागमन से मुक्त हो कर तुझ में मिट जाऊँ किन्तु तुमने मुझे मिट मिटकर पुनः बनने—आवागमन—की जो स्थिति दी है वह मेरे लिए अभिशाप है या वरदान यह मैं निश्चय नहीं कर पाई । अब हे अभिमानी प्रिय ! (ब्रह्म) तू यह बता कि मैं पूर्व मिलन—जब हम तुम एक थे (जब आत्मा परमात्मा से विलग नहीं हुई थी)—की प्रतीक हूँ या मिलनान्तर चिर वियोगमय जीवन की परिचायक हूँ ।

विशेषण :—इस गीत की स्वर-साधना पर लोक-गीत का प्रभाव स्पष्ट है ।

: १४ :

प्रवतरण — इस कविता में कवयित्री ने जीवन को दीपक के रूप में वर्णित कर निरन्तर तब तक प्रज्ज्वलित अथवा साधना-निरत रहने को कहा है, जब तक प्रियतम का साक्षात्कार न हो जाये । जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर दूसरो को प्रकाश देता है उसी प्रकार जीवन की सार्थकता तथा चरम साधना स्वयं कष्ट उठाकर परहित करते हुए प्रियतम से तादात्म्य करने में है ।

[मधुर-मधुर मेरे दीपक जल]

शब्दार्थ :—विपुल=बहुत । अपरिमित=असीम ।

अर्थ—हे मेरे जीवन-दीप, तू मधुर प्रकाश फैलाता हुआ जल, तू मेरे प्रियतम के मार्ग को क्षण-क्षण, दिन-दिन तथा युग-युगान्तरो तक प्रकाशित करता रह । हे मेरे जीवन, तू धूप बनकर प्रचुर सुगन्ध प्रसारित कर । तेरे जीवन का एक-एक अणु-परमाणु कोमल मोम-सा पिघल कर ज्योति का असीम सागर फैला दे । अर्थात् परोपकार के लिये अपने समस्त-कोमल सुख-सुविधाओं में अभ्यस्त जीवन को दूसरों के लिये होम कर दे । हे मेरे जीवन-दीप तू प्रसन्नतापूर्वक जीवन की इस महत् साधना में लीन रह ।

विशेष—जब तक दीप जलकर प्रकाश नहीं देता और धूप जल कर सौरभ नहीं फैलाता तब तक उनका व्यक्तित्व ससीम है । प्रकाश और सौरभ से वह अपनी आत्मा का विस्तार कर लेते हैं, असीम-अनंत हो जाते हैं और यही ब्रह्म को पाने का मार्ग है क्योंकि ससीम होना ही माया से युक्त और असीम होना माया-मुक्त होना है । इसीसे

जीवन रूपी दीपक को साधना-ज्वाला में जलकर प्रियतम (ब्रह्म) के पथ को आलोकित करने को कहा गया है ।

[सारे शीतल कोमल नूतन]

शब्दार्थः—सिहर-सिहर=पुलकित होकर । शीतल=जिन में साधना की ज्वाला नहीं । नूतन=जो इस मार्ग से अपरिचित है ।

अर्थ—सब शीतल, मृदुल तथा नवीन प्राणी तुम से ज्वाला का अंश माँग रहे हैं—कितने ही उत्साह-हीन, अकर्मण्य तथा अनुभवहीन व्यक्तियों को तेरी साधना की अपेक्षा है । ससार रूपी पतंगा सिर पीट पीट कर कहता है कि हाय ! मैं तुमसे मिलकर तुझसा जल नहीं पाया अर्थात् तेरी उच्च-अलौकिक साधना को दूसरे लौकिकता अनु-रागी भी अपनाना चाहते हैं परन्तु उनकी दुर्बलता ही बाधक बनती है । हे मेरे जीवन-दीप, तू हर्ष पूर्वक जल ।

[जलते नभ में देख असंख्यक]

अर्थ—हे मेरे जीवन-दीप तू देख कि आकाश में सदैव प्रत्येक रात को तेल रहित अनगिनत दीप-तारे-जलते हैं । सागर में सर्वत्र जल ही जल है तथापि वड़वाग्नि के रूप में उसका हृदयभी जलता है । उमड़ते हुए बादलों में विजली के रूप में ज्वाला है, जब सर्वत्र सब इस प्रकार साधना निरत है तो दुख किस बात का ? तू भी हँसते हँसते प्रसन्नता पूर्वक जल, साधना संलग्न रह ।

विशेष :—१. यहाँ प्रकृति का उपदेशात्मक रूप में चित्रण हुआ है । नीचे की चार पंक्तियों में भी ऐसा ही है ।

[द्रुम के अंग हरित कोमलतम]

शब्दार्थ—जड़ अन्तर=चेतना रहित मन ।

अर्थ :—वृक्षों के अति कोमल तथा हरे अंग भी सूर्य की रश्मियों से ताप को आत्मसात् करते रहते हैं। इस धीरा पृथ्वी के चेतना-हीन अन्तर—जिस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता (unsensitive) है—में कितनी ही अग्नियाँ चंचल रहती हैं। तो हे जीवन-दीप तू भी सर्वत्र अपने आलोक को विकीर्ण कर क्योंकि जलने के इस महायज्ञ में तू एकाकी नहीं है।

विशेष—जड़ और कोमलतम शब्द साभिप्राय हैं।

[मेरी निश्वासों से द्रुततर]

शब्दार्थ—द्रुततर=शीघ्रतर।

अर्थ—हे सुन्दर दीप तू मेरी संतप्त निश्वासों से साधना-पथ में बाधक दुर्बलताओं से बुझने का भय मत कर क्योंकि मैंने कोमल तथा चंचल पलक रूपी दुपट्टे—साधना की सहायक सात्त्विक भावनाओं से तेरी सुरक्षा की हुई है। इसलिए तू सहज रूप से, निर्भय होकर जल।

विशेष—इन पक्तियों में उस भारतीय नारी का चित्र है जो दीपक को अंचल की ओट में किए इष्ट-मंदिर की ओर जा रही हो।

[सीमा ही लघुता का बन्धन]

शब्दार्थ—अक्षय=न समाप्त होने वाला।

अर्थ—किसी वस्तु का सीमित होना ही उसकी लघुता है। किन्तु जीवन-दीप तू तो आदि रहित है और तेरा अन्त (मृत्यु) न होगा, तू अनंत है अतएव तुझे मृत्यु के सम्बन्ध में निर्भीक रहना चाहिए। मैं अपने नेत्रों के अमर अथवा भरपूर भण्डार से तुझे मे नित्य आँसू (तेल) भरती रहती हूँ, अतएव हे मेरे जीवन दीप तू करुणा युक्त होकर जल।

विशेष—१. विरह अक्षय है अतः आँसू भी अक्षय है।

१. समीम होना ही लघु और असीम होना ही विराट् होना है ।
जीवन-दीप अपने प्रकाशित व्यक्तित्व से ही अनादि और विराट् हो सकता है ।

३. 'घड़ियाँ गिनना' मुहावरा है ।

[तम असीम तेरा प्रकाश चिर]

अर्थ—एक ओर असीम अन्धकार है और दूसरी ओर तेरा असीम प्रकाश । इनमें निरन्तर आँख मिचौनी होती रहेगी । जैसे विद्युत् के स्पर्श से बादलों के तम-पटल पर अनेक अमिट-प्रभावपूर्ण चित्र अंकित हो जाते हैं उसी प्रकार अपने, प्रकाश से तू भी ऐसा ही कर यह प्रकृति तम रूप है और तू चैतन्य रूप । जड़-चेतन के संयोग से नाना दृश्य जगमगा उठते हैं । उसी प्रकार तेरे सस्पर्श से प्रकृति का कण-कण दैदीप्यमान हो उठेगा, अतएव हे जीवन-दीप तू भी ऋजु मति से जग ।

[त जल-जल जितना होता क्षय]

शब्दार्थ—छलनामय = मायावी । मदिर = मस्ती से ।

अर्थ—हे जीवन-दीप तू जितना जल-जलकर क्षीण होता है उतना ही वह मायावी प्रियतम सन्निकट होता जाता है । जब तुम्हारा उससे मधुर मिलन हो तो तू हर्ष पूर्वक अपने साधना जन्य प्रकाशित अस्तित्व को उसके अलौकिक प्रकाश में लीन कर देना । अतएव मेरे जीवन दीप तू निश्चित होकर मस्ती से जल अथवा साधना लीन रह और प्रियतम के पथ को प्रकाशित कर ताकि उससे मिलन की घड़ी शीघ्र आ सके ।

विशेष—१. कठिनाइयों को सहन करते और परोपकार करते हुए निरन्तर साधना-निरत रहना ही जीवन है और इसी से अभीष्ट की प्राप्ति सम्भव है—यही इस कविता का मूल स्वर है ।

२. दीपक का लक्ष्य है प्रभात के असीम प्रकाश में मिलना और जीवन का प्रियतम के असीम व्यक्तित्व में ।

३. 'मदिर-मदिर...जल' से साधना की गहराई व्यञ्जित होती है ।

४. महादेवी को दीपक का उपमान कितना प्रिय है इसका प्रबल प्रमाण 'दीप शिखा' है । उन्हें 'दीपक राग' बड़ा अच्छा लगता है—

जो न प्रिय पहचान पाती ।

... ..

किस लिए हर सांस तम में ।

सजल दीपक राग गाती ?

अवतरण—उस अलौकिक प्रियतम की उपलब्धि सुख-भोग अथवा हास-विलास द्वार सम्भव नहीं। वह विरह जन्य दुःख की साधना से ही मिल सकता है। यह साधना उस सीमा तक बढ़ जाय जब अपने निजत्व का ज्ञान प्रियतम की तल्लीनता-तन्मयता में खो जाये—ऐसी विस्मृत जागरूकता में ही प्रियतम-प्राप्ति सम्भव है।

इस कविता में 'मुखर पिक' से 'सजल कपोल' तक कोकिल धीरे बोलने के लिए प्रार्थित है और "प्रिय मेरा" से दूसरा भाव चलता है जब कवयित्री धीरे बोलने की प्रार्थना का कारण बताती है।

[मुखर पिक हौले हौले बोल]

शब्दार्थ—बौराना = प्रस्फुटित होना, खिल जाना।

अर्थ—विरहिणी, वसंत के दूत, पिक से अनुनय करती है कि हे वाचाल तथा हठी पिक धीरे बोल। वसन्त-आगमन से तेरी काकली का फूट उठना स्वाभाविक है पर इस मुखरता से मेरा अनर्थ हो जायेगा। तेरी काकली से अनेक परिवर्तन उपस्थित हो जायेगे। तू वसंत-दूत है अतः तेरे आह्वान से कलियाँ प्रबुद्ध होकर मधु-वितरण करने लगेंगी और चिर अतृप्त भौरे लोभवश और मधु चाहिए की गुंजार करने लगेंगे—जितना ही मधु-वितरण होगा उनकी अतृप्ति बढ़ती ही जायेगी। वसन्त-आगमन से जीर्ण-पीले पत्र झड़ जायेगे। आम्रवृक्ष मंजरियो से लद जायेगे। सारा वातावरण परिवर्तित हो जायेगा और पवन भी मदोन्मत्त होकर डोलने-लगेगा।

विशेष—यहाँ वसन्त-आगमन कहा नहीं गया, व्यंजित हुआ है—

poetry is thinking in pictures—चित्रमय विचार ही काव्य है। केवल “वसन्त आगया” कहना ही कविता नहीं। उसका बिम्ब-ग्रहण कराने के लिए लताओं का लहराना, पीले पत्तों का गिरना, कलियों का चटकना, भ्रमरों का गुंजारित तथा कोकिल का मुखरित होना आवश्यक है और यही इन पंक्तियों में हुआ है।

यहाँ कलियाँ नायिकाओं और भ्रमर नायकों का आभास दे रहे हैं। “चौक” शब्द भी कितना सार्थक है। किसी बलवान के अकस्मात् आगमन से जैसे कोई दुर्बल चौक उठता है और ताब न लाकर गिर जाता है वैसे ही भाव यहाँ पीले पत्तों से व्यंजित हुआ है।

‘समीरण’ भी नायक का आभास दे रहा है। यहाँ यह शब्द सार्थक है—‘वायु’ अथवा ‘पवन’ से काम न चलता।

[मर्मर की वंशी में गूँजेगा]

अर्थ—वसन्त, वंशी के समान मधुर, पल्लवों की मर्मर ध्वनि से, अपना प्रेम प्रकट करेगा। जैसे कृष्ण की वंशी में गोपियों के लिए प्रेम का सदेश होता था उसी प्रकार पल्लवों की मर्मर ध्वनि में भी। पवन के कारण तृण पर पड़ी बूँद ऐसे झड़ जाएगी जैसे रात्रि भर संजोया हुआ मधुर स्वप्न प्रातः होने पर मूल्यहीन आँसू के रूप में ढल जाता है।

विशेष—जब तक हमारी आकांक्षा (स्वप्न, कामना) मन में ही रहती है तब तक उनका महत्व है पर उसके व्यक्त होने से उसका मूल्य नष्ट हो जाता है।

["आया कौन ?" नीड़ तज पूछेगा]

अर्थ—तेरे सन्देश को सुन मधुवेला उपस्थित हो जाएगी अथवा एक नया समा बंध जाएगा। पक्षी अपने झोंसलों में चंचल हो उठेंगे उनके कलरव में यही प्रश्न होगा कि कौन आ रहा है। अपने सौंदर्य को घन-घूँघट में छुपाए लज्जवन्ती हिमा-सुन्दरियाँ भी नवागन्तुक

(वसन्त) के दर्शन की लोभ-लालसा में लज्जा छोड़ घन-घूँघट को हटा लेंगी और उनके गाल कंटकित हो जायेंगे—रोमांच हो आयगा और (सात्विक के कारण) कपोल स्वेद से आर्द्र (गीले) हो उठेंगे ।

वसन्त में—इसका अर्थ होगा कि पक्षी हर्षोल्लास में कलरव करने लगेंगे, घन समाप्त हो जायेंगे और सब प्रकार का कलियाना और प्रस्फुटन budding and sprouting होने लगेगा ।

[प्रिय मेरा निशीथ नीरवता में]

शब्दार्थ—निशीथ=रात्रि । निमिषो से=पलक झपकने से ।
सुभग=सौभाग्यशाली, सुन्दर ।

अर्थ—तेरी काकली से वसन्त-आगमन होगा । इससे मझे हानि होगी । मेरा संकोचशील प्रिय रात्रि के एकान्त-शान्त क्षणों में ही आता है । उसके पैरों की आहट मेरे पलक-पात से भी नीरव 'नि.शब्द' है । यह रात्रि की नीरव घड़ियाँ मेरे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं अतएव हे सुन्दर तथा हठी पिक ! इनमें तू विघ्न न डाल ।

विशेष—महादेवी ने अन्यत्र भी लिखा है —

प्रियतम को भाता है
तम के पर्वें मैं आना
ओ नभ की दीपावलियो
तुम पल भर को बुझ जाना ।”

—नीहार

किन्तु अन्धकार के अतिरिक्त प्रियतम शान्ति भाँ चाहता है, अतः कुव्रयित्री ने उसका भी प्रबन्ध किया है—

‘मैं आज चुपा आई चातक,
‘मैं आज सुला आई कोकिल’

—सांध्यगीत

[वह सपना बन बन आता]

अर्थ—उस प्रियतम से निद्रावस्था में स्वप्न-मिलन ही सम्भव है । जागने पर तो वह लौट जाता है—तदाकार-तन्मयता की अवस्था में ही प्रतीक्ष्य (प्रियतम) से मिलना सम्भव है, बुद्धि और व्यावहारिक ज्ञानजन्य अहं की जागृति में नहीं । मेरे कान और नेत्र तद्रूप हो गए हैं—दोनों का प्रतीक्ष्य एक हो गया है । दोनों ही अपने सहज कर्त्तव्यों से विमुख होकर—प्रियतम की ओर उन्मुख हो गए हैं । अतएव हे हठी पिक ! तू मेरे कान में जो मधुर कूक घोल रहा है वह व्यर्थ है, क्योंकि मेरे कानों ने मधुरता को ग्रहण करने का गुण छोड़ दिया है—मेरे कान और नेत्र एक हो गए हैं ।

विशेष १. तन्मयता की अवस्था में अहं (माया) समाप्त हो जाता है । रहस्यवादी कवियों को प्रकाश, जागृति और होश से अधिक स्वप्न, छाया, अन्धकार आदि से प्रेम है क्योंकि ज्ञान अथवा अलौकिक प्रियतम की उपलब्धि स्वप्न अथवा छाया में ही होती है । निराला की निम्न पक्तियों में यही भावना व्यक्त है—

.....हुआ प्रातः प्रियतम तुम जावोगे चलें ?

कैसी थी रात बंधु थे

लगे गले

फूटा आलोक

परिचय परिचय पर जग गया

भेद शोक

जलते सब चले एक अन्य के छले—

—गीतिका, निराला

यहाँ रात्रि के अंधकार में प्रियतम गले लगे थे—किन्तु प्रभात-प्रकाश में भेद बुद्धि जग जाने से प्रियतम जाने वाले है ।

२. अत्यन्त तीव्रानुभूति की दशा में सभी इन्द्रियां एकाकार हो

जाती है । सारी चेतना अभीष्ट कार्य में सलग्न हो जाती है । महादेवी ने नीरजा की कविता ४१ में कहा है—

“नयन श्रवण, श्रवणमय नयनमय आज हो रही कैसी उलसन !

—यही अवस्था यहां है ।

[भर पावे तो स्वर लहरी में]

शब्दार्थ—ठौर=स्थान, भोर=प्रातःकाल ।

अर्थ—हे पिक ! तू जो वसन्त का संदेश देने के लिए कूकना चाहता है उस पंचम राग का (राग के माधुर्य का) मेरे लिए कोई उपयोग नहीं । यदि तू मेरा हित चाहता है तो अपने राग में वह करुणा भर दे कि प्रियतम द्रवित होकर छुये तो मेरे हृदय में ही । कारण, तेरे कूकने से प्रातः हो जायगी किन्तु उस स्थिति में पलके खोलने, जागने में मुझे कोई भय नहीं ।

विशेष—१ विरह की, दुःख की, साधना में ही उनको प्राप्त किया जा सकता है—हास-विलास में नहीं ।

२. इस गीत में कोकिल की काकली-कलित मधुमयता ही साकार हो उठी है । यहाँ लोक-गीत की लय में साहित्यिक संस्कारों को बाँध कर एक नए कलागीत की सृष्टि हुई है ।

३. केवल लय ही लोक-गीत सम्बन्धी नहीं, शब्दावली—हठीला हौले, ठौर, भोर से भी तदानुकूल वातावरण निर्मित हुआ है ।

एक आलोचक-श्री ब्रजकिशोर चतुर्वेदी ने “हौले-हौले” शब्द पर आपत्ति उठाई है । निःसंदेह वह शब्द खड़ी बोली में प्रयुक्त नहीं होता किन्तु यहाँ यह दूषण नहीं भूषण है—“धीरे-धीरे” में वह कोमलता कहां जो “हौले हौले” में है । फिर ग्राम्यगीत की लय में तो यह शायद और भी सजता है क्योंकि ग्राम्य-वातावरण उपस्थित होता है ।

अवतरण—कवयित्री के प्रिय-मिलन को अनेक प्रलोभन आए किन्तु वह किसीको स्वीकार न कर सकी और विरह में ही निमग्न रही। कारण, मिलन के चिह्न अस्थायी हैं किन्तु विरह चिरन्तन है। इस विरह की तपस्या से ही उसने अटूट-अखण्ड सौभाग्य प्राप्त किया है।

[पथ देख बिताड़ी.....जानी नहीं।']

अर्थ—प्रतीक्षा में ही सारी रात्रि व्यतीत हो गई। प्रियतम आया किन्तु मैं उसे पहचान न सकी। प्रियतम को आता देखकर, उसके स्वागत के लिए सारी प्रकृति सजकर तैयार हो गई। अंधकार ने प्रिय आगमन के मार्ग—आकाशपथ—को सुगन्धित ओस बिन्दुओं से धोकर स्वच्छ बना दिया। और आकाश रूपी आँगन को तारा-दीपों से जगमगा दिया। प्रातःकाल प्रियतम के वापिस जाने पर किसी अज्ञात-अलक्षित शक्ति की प्रेरणा से वे दीप बुझा दिए गए किन्तु कवयित्री तो प्रियतम की प्रतीक्षा ही करती रह गई, वह प्रियागमन को न जान सकी।

[धर कनक थाल.....कहानी नहीं।]

अर्थ—सुनहरी किरणों से युक्त वायुमण्डल रूपी सोने के थाल में गुलाब पुष्प के समान मेघ को रखकर, प्रातःकालीन सूर्य रूपी मंगल घट तथा मंगल गान के रूप में प्रातःकालीन पक्षियों के कलरव को लेकर—सभी प्रकार की पूजन सामग्री तथा मांगलिक विधानों से सुशोभित होकर—चिर परिचित पथ से प्रिय के लौटने की सूचना लेकर प्रातःकाल आया किन्तु मैं कवयित्री उससे अपनी वियोग-व्यथा की कहानी न कह सकी।

विशेष— पंत ने भी बादल के अनेक अप्रस्तुत विधानों में 'उषा का पल्लव' कह कर उषा का वर्णन किया है ।

[‘नव इन्द्रधनुष सा.....मानी नहीं ।’]

शब्दार्थः— चीर = दुपट्टा, मीलित पंकज = बंद कमल ।

अर्थः— नए इन्द्रधनुष के समान रंगीन साड़ी पहनकर और लालिमा रूपी महावर तथा (सांध्य) कालिमा रूपी अंजन से शृंगार करके, बन्दी भ्रमरों से गुंजित बन्द कमलो के नूपुर पहनकर संध्या रानी प्रियतम की दूती के रूप में उसे मनाने के लिए आई किन्तु वह अपने वियोग में आत्मविस्मृत थी, इसलिए उसकी बात न सुन सकी ।

विशेष — इन पंक्तियों का ऐसा अर्थ भी हो सकता है कि संध्या-सुन्दरी, इन्द्रधनुष रूपी साड़ी, लालिमा रूपी महावर तथा कालिमा रूपी अंजन और बन्दी भ्रमरों से गुंजित बन्द कमल रूपी नूपुर-शृंगार के उपकरण—लेकर प्रियतम की ओर से उसका शृंगार करने तथा उसे मनाने आई किन्तु वह आत्मविस्मृति की दशा में मानी नहीं ।

इस अर्थ से ऐसा प्रतीत होता है जैसे प्रियतम ने समझा कि प्रियतमा रुठ गई है अतएव उसने प्रियतमा के मान-मोचन के लिए संध्या के रूप में दूती को भेजा ।

‘अलि-गुंजित मीलित पंकज-नूपुर रुनझुन ले’ में ध्वनि-चित्र आस्वादनीय है । The sound must yeen an echo to the Sense-Pope-निस्संदेह यहाँ शब्दों से ही अर्थ ध्वनित हो रहा है ।

[‘इन श्वासों को इतिहास.....से पानी नहीं ।’]

अपने विरह-जन्य निश्वासों के रूप में वह निरंतर अपने विरही जीवन का इतिहास लिखती रही है । उसके जीवन की घड़ियाँ उसमें रोमांच की अवस्था (सात्विक अनुभाव) उत्पन्न करने का प्रयास करती

हैं, उसे प्रयत्न करना चाहती है किन्तु खाली ही वापिस लौट जाती है—उन्हें असफलता ही हाथ आती है, अपने प्रयत्न में कृतकार्य नहीं हो सकती। उन आँखों से आँसू नहीं प्रत्युत प्रियतम की स्मृति ही ढलकती है।

[‘अलि कुहरा सा नभ.....निशानी नहीं’]

अर्थ—ऐश्वर्यशाली दृष्टिगत होने वाला व्योम धुंध के ही समान क्षणिक है, अस्थायी है और यह समग्र संसार भी बुलबुले के समान नश्वर है क्षणभंगुर है। यह पीड़ा का राज्य ही स्थायी है। अतएव अपने प्राणों में शाश्वत तथा चिरतन विरह को पालनेवाली कवयित्री—जिसके कारण ही यह दुःख का साम्राज्य है—प्रियतम की अखण्ड सुहागिनी है, अल्पकाल में मिट जाने वाला पदचिन्ह नहीं।

विशेष—(१) विरह को प्रियतमा ने स्वेच्छा से स्वीकार किया है। यह अनन्त है इसलिए उसका सुहाग अमर है। अखण्ड सुहागिनी का भाव उन्होंने अन्य भी कई गीतों में वर्णित किया है। जैसे—“प्रिय चिरन्तन है सजनि क्षण-क्षण नवीन सुहागिनी मैं” और ‘दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ’”

(२) यह गीत अत्यन्त मार्मिक है। वेदना ही जैसे सम्पूर्ण गीत में मूर्तिमान हो रही है। शब्द-योजना अत्यन्त भावानुकूल हुई है।

(३) इस गीत पर ग्राम्य गीत की लय का भी प्रभाव सुस्पष्ट है लोक-गीत की लय को ही जैसे साहित्यिकता प्रदान की गई है। ‘रैः’ ‘साझ’ आदि शब्द शुद्ध लोकगीत-भाषा के हैं।

(४) ‘मैं प्रिय पहचानी नहीं’ व्याकरण-सम्मत वाक्य नहीं।

(५) वर्ण-ज्ञान (sense of colour) की दृष्टि से भी यह

कविता महत्त्वपूर्ण है । यहाँ इन्द्रधनुषी, गुलाबी और सुनहरी रंगों की शोभा है ।

(६) चलचित्र की-सी गत्यात्मक चित्रमाला है । क्रम से एक के पश्चात् एक चित्र चला आता है जैसे एक डोरी से बंधे हों ।

: १७ :

अवतरण—दुःख में अपने अस्तित्व को लीन करके आत्मानन्द लाभ करना ही जीवन की सार्थकता है । 'मिटने वालों' की बेसुध रंग-रलियाँ ही विश्व में सौरभ राग आलोक और हास्य की सृष्टि करती हैं ।

[मेरे हँसते अंधर नहीं ।]

अर्थ—हे प्रिय मेरी सुख की हँसी मत देखो । अश्रुपूर्ण मेरी आँखों को पोंछने का प्रयत्न मत करो, इस विश्व की मुर्झाई कलियों (दुःखों) को देखो—समाज के अपार सुख-दुख के सामने व्यक्तिगत सुख-दुःख की कोई महत्ता नहीं ।

विशेष—१. व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का कहीं अधिक महत्व है ।

२. मुरझाई कलियों से भारतवर्ष की पीड़ित-शोषित एवं अपमानित-उपेक्षित नारियों की ओर भी संकेत है ।

३. 'रश्मि' की भूमिका में ही महादेवी ने लिख दिया था "व्यक्तिगत सुख विश्व-वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व—दोनों अवस्थाओं में विश्व-रूपता आवश्यक है ।"

'मेरे हँसते.....देखो'—रश्मि की इन पंक्तियों से तुलना कीजिए—

देखूँ हिम हीरक हँसते हिलते नीले कमलों पर ।

या मुरझाई पलकों से भरते आँसू कण देखूँ ॥

[हँस देता नव इन्द्र धनुष को स्मित]

अर्थ—सृष्टि हेतु मिटने वालों को दुख नहीं उल्लास होता है । बादल वर्षा के रूप में स्वयं मिटता हुआ भी, समाज को हरीतिमा प्रदान करने के कारण अपनी हँसी को इन्द्र धनुष के सतरंगों में व्यक्त कर जाता है । यद्यपि दिन का पर्यवसान रात्रि में होता है, तथापि अपनी निष्फल यात्रा के अन्त में यह जानते हुए भी कि मैं समाप्त होने वाला हूँ, संसार को संध्या के रूप में प्रेम की लालिमा से रंजित कर जाता है । एक फूल का जीवन क्षणिक है पर मरते-मरते भी वातावरण को सुरभित कर जाता है । एक छोटे-से दीपक की क्या सत्ता, फिर भी अपनी जीवन-लीला समाप्त करते-करते अन्धकार को भी आलोकित कर जाता है । इसी प्रकार हे निष्ठुर प्रियतम ! तुम परोपकार की बलिबेदी पर भूम-झूमकर चढ़ने वाले बेसुध—भविष्य के दुष्परिणामों की चिन्ता से मुक्त—तथा बलिदानी व्यक्तियों के अमर कृतित्व पर दृष्टिपात करो ।

[गल जाता लघु बीज ।]

अर्थ—एक क्षुद्र बीज, अन्य अनेक नवीन बीज उत्पन्न करने के लिए अपने को समाप्त कर देता है । एक पत्ता नवीन पत्तों के उद्भव के लिए अपने मूल को छोड़ गिर पड़ता है । हे प्रिय ! एक पल अनेक युगों की सृष्टि करने के लिए समाप्त हो जाता है । परमात्मा से अपने पृथक् होने की भूल को भूल कर ही, इस नश्वर जगत की रचना हुई है और अब भूलों से ही संसार बना हुआ है ।

हे प्रिय ! आज मेरे बन्धनों के प्रति संवेदनशील होने की अपेक्षा संसार के बन्धनों की ओर दृष्टि दो ।

विशेष—नाश और निर्माण संसार का अटल क्रम है और इन दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध है । यही बात पन्त जी ने पल्लव की 'नित्य जग' में कही है—

“मूँदती नयन मृत्यु की रात ।

खोलती नव जीवन की प्रात,

शिशिर की सर्व प्रलय कर वात ।

बीज बोती अज्ञात ,

म्लान कुसुमों की मृदु मुस्कान,

फलों में फलती फिर अम्लान ।

महत है, अरे आत्म-बलिदान,

जगत केवल आदान-प्रदान ।”

यदि मनुष्य अपने व्यक्तिगत दुःख को समस्त ससार के दुःखों की पृष्ठभूमि में रखकर देखे तो उसे निजी दुःख अत्यन्त तुच्छ जान पड़ेंगे ।

यदि थोड़ी सी हानि से अपार लाभ हो, एक लघु बीज के नष्ट होने से यदि असंख्य वृक्षों का निर्माण हो तो यह कैसे कहा जा सकता है कि बीज की मृत्यु हो गई ? मृत्यु के इस रहस्य को समझ लेने से मनुष्य निर्भय हो जाता है और त्याग के महत्व को समझ सकता है ।

महादेवी की निम्नलिखित पक्तियाँ भी इसी आशावाद के आशय को स्पष्ट कर रही हैं—

‘स्निग्ध अर्पना जीवन कर क्षार,

दीप करता आलोक प्रदान ।

गला कर मृत्पिण्डों में प्राण,

बीज करता असंख्य निर्माण ।

नष्ट कब अणु का हुग्रा प्रयास,

विफलता में ही पूर्ति विकास ॥”

इकबाल के इस शेर से तुलना कीजिए ।

मिट्टा दे अपनी हस्ती को अगर कुछ मरतबा चाहे,
के दाना खाक में मिलकर गुलों गुलजार होता है ।

[श्वासें कहतीं 'आता पिय']

अर्थ:—श्वासें (inhale) प्रियतम के आगमन और निश्वासें (exhale) बहिर्गमन का आभास देती है—हृदय में निरंतर प्रियतम की स्थिति का भान होता रहता है किंतु प्राप्ति फिर भी नहीं होती, फलतः वियोग रहता है । क्योंकि वह प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता अतएव वह नयनों के लिए अज्ञात है । किंतु हृदय में सदैव उसीकी अनुभूति होती रहती है, फलतः हृदय से उसका चिर सम्बन्ध है—दृष्टि का विषय होने के कारण अनजान, किंतु अनुभूति का विषय होने से परिचित है । वह प्रेम भरा स्वप्न जब आत्मा-परमात्मा एक थे और इसलिए आनंद था—क्षण-क्षण नवीन बनकर स्मृति में आता है । यह स्मृति-जन्य सुख तो विरह के अश्रुओं में बह जाता है, परन्तु दुःख हृदय में ही स्थित रह जाता है । सुख क्षणिक है किन्तु दुःख स्थायी है । यदि तुम वास्तव में मेरे हृदय में विद्यमान हो, तो तुम मेरा रूप धारण करके—मेरी चेतना और तत्त्व के साथ एक रूप होकर—दुःख का आस्वादन करो तथा संसार की बिखरी पंखुरियों—दुःखों—का भी अनुभव कर सको । कारण, घायल ही घायल की गति को जान सकता है, दुखी ही दूसरों के दुःख अनुभव कर सकता है ।

विशेष—“दुख उलझन में”—वृत्तियों के संकोच में दुःख घुमड़-कर रह जाता है और सुख उमड़कर बह जाता है ।

: १८ :

अवतरण—प्रियतम की मधुर वेदना से भरकर इस प्रेमी हृदय की वीणा से ऐसी अद्भुत-अलौकिक झंकार उठ सकती है कि प्रियतम रीझ जाए। साधकों की घायल व्याकुल-साधना कभी निष्फल नहीं गई, सदैव रंग लाई है।

[इस जादूगरनी वाणा पर]

अर्थ—इस मधुर वेदनामय प्रेम की वीणा पर पल भर ही गाकर मुझे प्रियतम को रिझा लेने दो। देखो न जिस किसी साधक ने पल भर भी एकनिष्ठ-अनन्य साधना की है उसे अभीष्ट की प्राप्ति अवश्य हुई है। जैसे—जब व्याकुल चातक का रोम-रोम प्यासा होकर साधना करने लगा तो जड़-चेतन हिल उठा और तारोंमय वैभवपूर्ण आकाश भी काँप उठा। बादल का हृदय भी पसीज उठा और चातक की कामना पूर्ण हुई। मेरे प्रियतम भी इसी प्रकार पसीज उठें यदि मैं प्राणों में चातक बसा लूँ—उसकी साधना अपना लूँ।

विशेष—१. हृदय की वेदना-साधना ही जादू की वीणा है, जो सबको हिलाने की सामर्थ्य रखती है। हृदय=वीणा। वेदना=जादूगरनी।

२. दीपशिखा की निम्न पंक्तियों से तुलना कीजिए—

जो न प्रिय पहचान पाती !

×

×

×

मेघपथ में चिह्न विद्युत के गए जो छोड़ प्रिय-पद
 जो न उनकी चाप का मैं जानती संदेश उन्मद
 किस लिए पावस नयन में
 प्राण में चातक बसाती ?
 [क्षण भर ही गाया फूलों ने]

अर्थ—चातक के समान फूल की साधना भी अनुपम है, जब छोटे-से फूल ने हँसते हँसते अपनी करुणा से अभिभूत हो अपने अनन्त सौरभ से सारे वातावरण को स्वर्ग स्थित इन्द्रवाटिका के समान सुरभित तथा आनन्दमय बना दिया, तो वह झर गया, उसका पार्थिव-ससीम व्यवित्तत्व अवश्य नष्ट हो गया किन्तु अमर जीवन की प्राप्ति हुई ।

विशेष—इससे पहली कविता में इसी भाव की पंक्ति देखिए—
 कर जाता संसार सुरभिमय एक सुमन भरता-भरता ।
 [एक निमिष गाया दीपक ने]

शब्दार्थ—निमिष=उतना समय जो एक पलक गिरने में लगे ।
 दिव=स्वर्ग; आकाश; दिन ।

अर्थ—एक क्षण भर के लिए दीप ने ज्वाला-साधना से अपने को प्रदीप्त किया । वही क्षण इसका गौरव सिद्ध हुआ । एक छोटा-सा रजकण ऐसे असीम प्रकाश के सागर में परिवर्तित होगया जिस पर स्वर्ग अथवा सूर्य भी न्यौछावर किया जा सकता है ।

[एक घड़ी गा लूँ प्रिय में भी]

शब्दार्थ—उपल=पत्थर

अर्थ—चातक, पुष्प तथा दीप के समान मैं भी आध्यात्मिक पीड़ा से अन्तर को आपूर्ण कर गा उठूँ । इससे मेरी दुःख-सुख में सम-स्थिति होजाए तथा उपलवत् नीरस जीवन में झरने की सरसता आ

जाए और मेरा निर्जनवत् ह्लास-जर्जर जीवन हरा-भरा होजाए ।

विशेष—रवीन्द्र और पंत की निम्न पंक्तियों में भी यही जादू-गरनी-वीणा द्रष्टव्य है—

जीवन लये जतन करि
यदि सरल वांशि गड़ि,
आपन सुरे बिनै भरि सकल छिद्रतार

—गीताञ्जलि

वंशी से ही कर दे मेरे सरल प्राण औ, सरस वचन

×

×

×

रोम-रोम के छिद्रों से माँ ! फूटे तेरा राग महान्

—वीणा

: १६ :

अवतरण—इस कविता में महादेवी, घन सदृश नित्य घिरने और झरने—जन्म और मृत्यु—की आकांक्षा प्रकट करती है। चिरमुक्ति की उन्हे आकांक्षा नहीं। वे तो घन के समान विश्व के लिए करुणाशील बनी रहना चाहती है।

[‘घन बनूँ · · · मिटूँ प्रिय ।’]

शब्दार्थ—जलधि=सागर। मानस=मन रूपी सागर। सुभग=सुन्दर। व्योम=नभ। विनिर्मित=बना हुआ। मन्थर=धीरे।

अर्थ—हे प्रिय ! मुझे यह वरदान दो कि मैं घन सदृश बनूँ—घन के समान करुणाशील बनूँ। तुम्हारे ही मन रूपी सागर से नया जन्म पाकर और तेरे नयन रूपी नभ में, तरल जल-कणों द्वारा बने हुए मेघ सदृश मूक तथा मन्थर गति से नित्य प्रति घिर-घिर कर झरती रहूँ—आवागमन के बंधन में बँधे रहकर संसार को प्रफुल्लता प्रदान करती रहूँ।

विशेष—(१) बादल का जन्म सागर से होता है किन्तु वह स्वरूप आकाश में ही धारण करता है।

(२) ‘मूक’ से साधना की गम्भीरता प्रकट होती है। महादेवी अन्यत्र लिखती है—

पपीहे तू ‘मौन’ का मंत्र सीख।

—(या० ११५)

(३) ‘अश्रु विनिर्मित गात’ तथा ‘झर झर मिटूँ’ से निरन्तर करुणा के अश्रुओं के प्रवाहित होने का संकेत है। महादेवी ने नीरजा क ही कविता सं० ५२ में भी कहा है—

‘भरते नित लोभन मेरे हों

(४) महादेवी अपनी कारुण्य भावना को घन के माध्यम से भली-भांति व्यक्त करती है। इसीलिए इन्हें घन का उपमान अत्यन्त प्रिय है। इन्होंने सांध्यगीत में अपना परिचय भी इसी रूप में दिया है—

मे नीर भरी दुख की बदली ।

सांध्यगीत की एक और कविता में भी महादेवी जी ने अपने को बदली बनाते हुए मुवित के प्रति अनिच्छा व्यक्त की है।

देव श्रब—वरदान कैसा ?

जन्म से यह साथ है मैंने इन्हीं को प्यार जाना

मित्र ही समझा दृगों को श्रु को पानी न माना

इन्द्रधनु से नित सजी सी,

विद्यु हीरक से जड़ी सी,

मे भरी बदली रहूँ

चिर मुक्ति का वरदान कैसा ?

(५) ‘जलधि-मानस’ जन्म पाने का तात्पर्य यह है कि संसार उस परमात्मा की इसी इच्छा—‘एकोऽहम् बहुस्याम्’ का परिणाम है। घन और सागर के सम्बन्ध को दीपशिखा में इस प्रकार व्यक्त किया है—

सिंधु का उच्छ्वास घन है ।

(६) महादेवी जी की ऐसी जन्म-मरण की आकांक्षा के सम्मुख उन का बौद्ध-दर्शन पराजित हो जाता है। संसार को दुःखात्मक समझने वाले बौद्ध-दर्शन का प्रभाव उनपर अवश्य है किन्तु इस दुःखवाद को भी उनके हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा जैसा कि उनका स्वमत भी है। उन्हें तो संसार के प्रति एक प्रकार की अनुरक्ति है ताकि वे अपनी करुणा से सारे विश्व को आर्द्र कर सकें। इसीलिए तो चिर जन्म-मरण की आकांक्षा करती है। और आवागमन के चक्र में फँसी रहना चाहती है। तभी तो उन्हें बौद्धों का निर्वाण सिद्धान्त मान्य नहीं; उनका काव्य आत्मवाद की सुदृढ़ भित्ति पर आधारित है, अनात्मवाद में उनका विश्वास नहीं।

: २० :

अवतरण—रात्रि की नीरव-निभूत अन्धकारमयी बेला में अनन्त प्रियतम से मिलकर मैं चिर सुहागिन बनूँगी ।

[आ मेरी चिर मिलन-यामिनी]

शब्दार्थ—यामिनी=रात । तममयी=अंधकार से युक्त । अलको=बाल । सीरे=शीतल । शिथिल कवरी=खुली वेणी ।

अर्थ—आज प्रियतम से मेरे चिर मिलन—अंतिम लय—का समय है । मुझे कृष्ण पक्ष की घोर अंधकारमयी रजनी की अपेक्षा है । अंधकार से पूर्ण निशिनायिका तू आ किन्तु अपने बालों में हीरे (तारे) न सजा के आ—ताकि तनिक भी प्रकाश न रहे, तू अपनी वेणी को खोल दे ताकि अंधकार बढ़ जाय, इस शिथिल वेणी में हरसिंगार के जो फूल लगे हुए हैं वह भी धीरे-धीरे झर जाएँ और अंधकार और प्रगाढ़ हो जाए, तेरे शीतल श्वास—शीतल समीर—संसार को न जगाएँ ताकि प्रिय-मिलन में मुझे कुछ बाधा न हो ।

[हौले डाल पराग-बिछौने]

अर्थ—यह मेरी मिलन की रात्रि है और मुझे अंधकार तथा एकांत ही काम्य है । अतएव तू इस सोए हुए विश्व को, चन्द्ररूपी प्याले से चाँदनी की मदिरा ढालने के लिए मत जगा । मेरी सुहाग रात के लिए पराग की—अत्यन्त कोमल, फूल से भी अधिक कोमल—शैया तैयार कर, किंतु यह सारा कार्य हौले हो—किसी प्रकार

का शब्द न हो, नीरवता ब्रनी रहे । आज तू कलियों को—ओस की बूँदों के रूप में—मत रोने दे क्योंकि मेरे मिलन की मधुर वेल में यह रोना कैसा ? साथ ही उनके झिलमिलाते हुए ओस-अश्रुओं से प्रकाश फैलने की भी आशा है ।

[परिमल भर लाये-नीरव घन]

अर्थ—मेघ माला में भी किसी प्रकार का शब्द न हो और वह परिमल—पृथ्वी की सुगंध—से पूर्ण हो जाएं । बादल का कोमल हृदय—वर्षा के रूप में—ऑसू न बहाए अथवा आकाश का हृदय भी ऑसुओं (ओस) के रूप में न गले, पपीहे की 'पी कहाँ', 'पी कहाँ' की व्याकुल रट भी सुनाई न पड़े । हे सखी, चंचल दामिनी-नायिका, जुगनू रूपी मोती के हार को पहन कर हँसे नही अर्थात् न बिजली चमके और न जुगनू टिमटमाएँ ।

विशेष—कवि सम्प्रदाय के अनुसार पपीहा पावस ऋतु में 'पी कहाँ' की रट लगाया करता है और स्वाति नक्षत्र में होनेवाली वर्षा से ही उसकी प्यास बुझ सकती है ।

[अपलक है अलसाये लोचन]

अर्थ—प्रियतम की चिर प्रतीक्षा करते-करते मेरे नेत्र भी अलसा गए हैं—निश्चल-निर्निमेष हो गए हैं । आज मेरे बन्धन ही मुक्ति बन गए हैं—विरह की चरम सीमा मिलन का प्रथम सोपान बन गई है । चिर प्रियतम से चिर लय अथवा मिलन के पूर्व का छोटा-सा क्षण भी अनन्त हो गया है—हे रजनी सखी आज मेरी हृदय की तन्त्री की झंकार (धड़कन) से कोई विरह का राग नहीं निकलेगा—अब विरह समाप्त हो गया है ।

[तम में हो चल छाया का क्षय]

अर्थ—मुझे मिलन-हेतु इस अंधकार की अपेक्षा है क्यों कि इस अंधकार में लीन होने से मेरा नाश नहीं होगा—छायावत मेरा

शरीर तो मृत्यु रूपी अन्धकार में लुप्त हो जायगा किन्तु आत्मा तो अमर है, और मृत्यु आत्मा का मिलन द्वार है। यह मिलन लघु-ससीम मात्र का अनन्त-असीम के साथ मिलन है। अतएव आज की सुहाग रात में अपने सीमित व्यक्तित्व को लय कर के मैं चिर सुहागिनी कहलाने का वरदान पाऊँगी।

विशेष—१. प्रा० शिवमंगलसिंह 'सुमन' इन पंक्तियों में महादेवी के रहस्यवाद का सार देखते हैं।

२. 'नीहार' में भी कवयित्री नै यही इच्छा प्रकट की है—

इस असीम तम में मिलकर मुझ को पल भर सो जाने दो।

श्री बृजकिशोर चतुर्वेदी (आधुनिक कविता की भाषा) इस कविता की कुछ पंक्तियों को देते हुए अंग्रेजी के कवि शैली से तुलना करते हैं—

“कवि शैली का Ode to night एक बड़ा प्रसिद्ध गीति काव्य है जो इस प्रकार आरम्भ होता है—

Wrap thy form in mantle grey star-in
—wrought ?

इस पद्य की छाया स्थान-स्थान पर यामा में दृष्टिगोचर होती है। रात्रि से मिलने के लिए कवि शैली अत्यन्त कातर हो जाता था। महादेवी भी कहने लगती हैं—

आ मेरी चिर मिलन-यामिनी.....

.....शृंगार-कामिनी !

× × ×

अपलक है.....

.....विरह रागिनी !

विचार शैली का ही है परन्तु यामा में एक दम भारतीय रंग में रंगा हुआ है।

: २१ :

अवतरण—इस गीत में कवयित्री ने मीरा को प्रशस्ति दी है और जग के कल्याणार्थ उसका आह्वान किया है ।

[जग ओ मुरली की मतवाली !]

शब्दार्थ—गोरसवाली=गोपी ।

अर्थ—ओ कृष्ण की मुरली की मतवाली मीरा ! मैं तेरा आह्वान करती हूँ । यदि तू गोपी के रूप में (संसार के कल्याणार्थ) सिर पर कर्ण का मंगलघट, अश्रुओं में कल्याणी यमुना और हृदय की धड़कन में निर्माणमयी वंशी के स्वर को लिए हुए आए तो सारा वातावरण राग-रंजित हो जाए—संसार का कण्टकाकीर्ण विषम पथ व्रज की गलियों के समान आनंदमय हो उठे, वासंतिक सुषमा से लहलहा उठे ।

विशेष—वंशी-ध्वनि में निर्माण का स्वर है । कवयित्री ने नीरजा की कविता सं० ५३ में यही कहा है—

शंख में ले नाश मुसली में छिपा वरदान ।

[चरणों पर नवनिधियां खेलीं]

शब्दार्थ—सेली=योगियों का वेश ।

अर्थ—मीरा तू राजरानी थी—सब प्रकार की सुख-सम्पदा तेरे चरणों पर लोटती थी, किन्तु इन सब का त्याग कर तूने योगियों का-सा वेश धारण कर लिया । कृष्ण के पवित्र प्रेम के पागलपन (Divine madness) में ही तेरी वास्तविक जागृत अवस्था थी। समस्त भौतिक सुख-वैभव को छोड़कर वास्तविक धन—प्रियतम—की तू भिक्षुक तथा

उसके वियोग-जन्य दुःख की रानी बनी । वियोगाश्रुओं से ही प्रिय-प्रेम की बेल को सींच-सींच कर दृढ़ किया ।

विशेष—१. “खारे दृग’...पाली’—मीरा की निम्न प्रसिद्ध पंक्ति का रूपान्तर है—

अंसुअन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई ।

२. “प्रिय की...रानी’—इस पंक्ति का भाव नीरजा की कविता सं० १३ में भी व्यक्त हुआ है—

तेरे वैभव की भिक्षुक या
कहलाऊँ रानी !

३. विरोधाभास अलंकार का सार्थक प्रयोग है ।

[कंचन के ध्याले का फेनिल]

शब्दार्थ—हलाहल=जहर । पदपदमों=चरण कमलों । मधुजल=अमृत ।

अर्थ—(अपनी साधना के बल पर) राजा के द्वारा भेजे हुए नीलम तथा अधिकार से काले घोर विष को तू प्रियतम के चरण-कमल का इवैत अमृत जानकर पी गई । आज पुनः तू अपने वरद हस्त से छू कर (संसार के अथवा मेरे) विष को अमृत कर दे ।

विशेष—मीरा ने कहा ही था :

राणे भेज्या जहर पियाला
अमरत कर पी जाणा ।

[मरु शेष हुआ यह मानस सर]

अर्थ—आज संसार का मन-सागर मरुस्थल (रेगिस्तान)—स्नेह-शून्य—बन गया है, आज आँख के निर्झर भी सूख गए हैं—कारुण्य भावना लुप्त हो गई है । इस शीतकाल की दीर्घ दुःखमयी

रजनी का भी अन्त नहीं । पतझड़ (जर्जरता तथा दुख) का प्रसार है, इसीका एकछत्र साम्राज्य है; वसन्त—हर्षोल्लास—का नाम नहीं । अतएव हे मुरली की मतवाली मीरा कोकिले तू गा उठ ताकि संसार की डाली-डाली वासंतिक सुषमा से जगमगा उठे—सर्वत्र हर्षोल्लास छा जाए ।

: २२ :

अवतरण—अपने ही सुख में विलीन तथा दुःखों के अनुभवों से शून्य मनुष्य से किसी करुणा-संवेदना की आशा करना व्यर्थ है। वियोगिनी कवयित्री प्रियतम तक अपना संदेश तारों, उषा, संध्या और रात्रि के द्वारा पहुँचाने में असफल होती है क्योंकि सभी अपने ही राग-रंग में मस्त है।

[कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती।]

शब्दार्थ—अक्षय = जो कभी समाप्त न हो। द्वय = दो।

अर्थ—मेरे लिए प्रिय को संदेश पहुँचाना कठिन है। यद्यपि मेरे पास लिखने की सारी सामग्री है—आँसू की अक्षय स्याही, स्याही की प्यालियाँ स्वरूप दो नेत्र, निरंतर गतिशील क्षणों के चंचल पृष्ठ, सुधि-रूपी लेखनी और श्वास रूपी अक्षर—तथापि मैं संदेश नहीं लिख पाती, कारण मैं प्रियतम के प्रेम में इतनी मतवाली हूँ कि लिखना कुछ चाहती हूँ और लिखा कुछ जाता है—अभीष्ट संदेश को लिपिबद्ध नहीं कर पाती।

[छायापथ में छाया से चल।]

शब्दार्थ—विभ्रम = एक हाव। इंगित = संकेत।

अर्थ—किसी छाया लोक—रहस्यमय अज्ञात लोक—से आकर असंख्य तारे, आकाश गंगा में निरंतर विचरण करते रहते हैं। वे न जाने अपने हावों-भावों से क्या रहस्यमय संकेत करते रहते हैं जो कभी परिचित तथा कभी रहस्यमय से प्रतीत होते हैं जिससे वास्तविकता का

ज्ञान नहीं हो पाता । अतएव ऐसे अपरिचित-अविश्वसनीय तारों में से किसको दूत बना कर, प्रियतम तक अपने हृदय के मर्म-भाव को पहुँचाने के लिए भेजा जा सकता है—किसी को नहीं ।

[अज्ञात पुलिन से उज्ज्वलतर ।]

शब्दार्थ—पुलिन = किनारा ।

अर्थ—किसी माँझी कन्या के समान उषा किसी अज्ञात किनारे से, अपनी विद्रुम-निर्मित नौका में किरणों रूपी मोती भरकर नीलम् के समान तमाच्छादित काले आकाश के इस तट पर ले आती है । इस प्रकार वह मेरी रजनीवत करुण कहानी में मुस्कान की किरणें भरकर चली जाती है—मेरी वेदना का उपहास करती है, समर्थन-अनुमोदन नहीं । अतएव मैं उषा द्वारा भी अपना संदेश नहीं भेज सकती ।

विशेष—आकाश रूपी सागर का एक किनारा अदृश्य है, वही अज्ञात पुलिन है और दूसरा अंधकारमय तट है जो लक्षित हो रहा है ।

[सज केशर पट तारक बेदी ।]

अर्थ—केसरी दुकूल पहने (संध्या के समय का केसरी रंग) एक तारे (संध्या के समय पहले पहल जो एक तारा निकलता है) की बिंदी सजाए, नयनों को अंजित (संध्या की कोमल कालिमा) किए, पैरों में लाल मेंहदी (संध्या समय की लालिमा) लगाए और गागर में मादक लाल मदिरा (संध्या की ललाई जो दिन के श्रांत-क्लांत जीवों को मदिरावत मस्ती से आराम पहुँचाती है) भरे, मानों सौभाग्यमयी प्रेमिका के समान शृंगार किए संध्या आती है । वह मेरे दुःख के प्रति कोई संवेदना नहीं दिखाती, बल्कि अपना सुख प्रदर्शित करती है । अतएव उसके द्वारा भी अपना संदेश पहुँचाना कठिन है ।

विशेष—१. घायल की गति को घायल ही जान सकता है, अपनी ही मस्ती में लीन व्यक्ति नहीं। यहाँ सौभाग्यवती संध्या भी स्वसुख में मग्न है।

२. 'आती... गगरी'-निराला ने 'परिमल' में अपनी संध्या सुन्दरी के लिए यही लिखा है—

मदिरा की वह नदी बहाती आनी

[डाले नव घन का अवगुणन।]

अर्थ—अपने मुख पर किसी नवीन मेघ का घूँघट डाले (मानों कृष्ण पक्ष में अपने को छिपाये हुए) टिमटिमाते तारों के रूप में अपनी दृष्टि को आर्द्र किए (रात्रि में ओस गिरती है) नीरव पदचाप से, किसी को जगाते हुए नहीं, केवल स्वप्न जागृत करती हुई, अभिसार निमित्त उत्तेजना जन्य श्वासों से नीरव अधकार का प्रसार करती हुई निशि कृष्णाभिसारिका की भाँति आती है। वह अपने अभिसरण सुख के अश्रुओं से मेरे संदेश पहुँचाने की अनुनय-विनय को धो डालती है—कोई ध्यान नहीं देती।

विशेष—सारी कविता में एक चित्रमाला और कल कल्पनाओं का माधुर्य है।

अवतरण—प्रियतम की विरह-साधना से बसन्तस्वरूप बनी हुई कवयित्री को केवल प्रिय की मधुर 'मुरलिका' की कामना है ।

[में बनी मधुमास आली ।]

शब्दार्थ—मधुमास=बसन्त । आली=सखी । यामिनी=रात्रि । कालिन्दी=यमुना ।

अर्थ—हे सखी ! आज मैंने बसन्त का रूप धारण कर लिया है, प्रियतम का विरहजन्य आह्लादकारी दुःख ही मानो बसन्त की रात्रि है । बसन्त की रात्रि चन्द्रिका-चर्चित होती है । यहाँ भी प्रियतम की सुधिरूपी चन्द्र से पुलकरूपी चाँदनी बरस रही है—मुझ विरहिणी के मनरूपी आकाश में स्थित प्रिय की सुधि जन्य मुखरूपी चन्द्र से शरीर (अथवा व्यक्तित्व) रूपी पृथ्वी पर प्रेम-पुलकरूपी (बसन्त में नए किसलय आदि आते हैं जो शरीर के पुलकित रोम सदृश हैं) चाँदनी हो रही है । सुधि के कारण आँखों में आँसुओं की यमुना ही उमड़ उठी है ।

विशेष—विषाद का रंग काला माना गया है और यामिनी भी काली होती है—अतएव विषाद एवं यामिनी में वर्ण-साम्य है ।

[रजत-स्वप्नों में उदित ।]

शब्दार्थ—रजत=चाँदी । वात=वायु । पंचम तान=कोयल क उच्च मधुर काकली ।

अर्थ—बसन्त की राका रजनी में दूर-दूर तक कहीं-कहीं—विरल, सघन नहीं—तारे छिटके होते हैं उसी प्रकार मेरे मन में भी अनेक

चाँदी के समान सुन्दर स्वप्न समाए हुए हैं। ऐसे मधुर-मादक वातावरण में मेरे सुखरूपी कोकिल ने सहसा जागकर मादक पंचम स्वर छोड़ दिया—अत्यधिक सुख उमड़ पड़ा। मेरे मन-निकुंज से कोमल निश्वासरूपी शीतल मंद-सुगन्ध समीर बहने लगी।

[सजल रोमों में बिछें हैं।]

अर्थ—मेरे शरीर के मधुर पुलकित रोम मानो प्रिय के स्वागतार्थ कोमल-मुलायम रसमय पाँवड़े हैं। आज मेरे जीवन में प्रत्येक घड़ी ऐसी आ रही है मानो किसी अपरिचित देश से कोई मधुर संदेश ला रही हों। इस प्रकार मेरा समस्त व्यक्तित्व वसन्तमय हो गया है—वसन्त के जो-जो लक्षण होते हैं, सभी से मैं युक्त हूँ। केवल अभाव है तो प्रिय की मधुर रागमयी मुरलिका का, जिसका वादन वे वसन्त में करते हैं। क्या उनका वेणुवादन नहीं होगा ?

विशेष—१. सारी कविता में सुन्दर सागरूपक है।

२. कवयित्री का प्रकृति से पूर्ण तादात्म्य हो गया है।

: २४ :

अवतरण—उस विराट ब्रह्म के जो गुण हैं वे भावुक मानव के द्वारा ही आरोपित हैं और मानव-हृदय में जो चेतना है, वह उसी ब्रह्म की है ।

[मैं मतवाली इधर]

शब्दार्थ—स्नेह=प्रेम; तेल । गाथा=कथा

अर्थ—इधर मैं मतवाली प्रिया हूँ और उधर मेरे सुन्दर निराले प्रियतम । हम दोनों के विचित्र सम्बन्ध है जो नाना प्रकार से व्यक्त हो रहे हैं । मेरे अश्रुओं में जो मोती की सी कांति है वह वस्तुतः उसी की सुन्दरता है । और उस विराट प्रियतम के मेघरूपी प्यालों में जो बिजली रूपी शराब भरी हुई है वह वस्तुतः मेरी ही छवि है । प्रियतम के आकाश रूपी सौध (महल) में जो तारा रूपी दीपक जल रहे हैं, उनमें मेरी भावनाओं की स्निग्धता (स्नेह; तेल) ही है । ये प्राण मेरे हैं—इनकी अधिकारिणी मैं हूँ—पर मेरे होकर भी ये मेरे नहीं हैं । इनकी प्रत्येक कम्पन प्रियतम की कथा कह रही है—इनमें प्रियतम की सुख स्मृति भरी हुई है । मेरे व्यवित्त में यदि स्वप्नों की हाट—कल कल्पनाओं का जमघट—है तो हे सखी, वहाँ आकाश में (जो विराट प्रियतम का द्योतक है) बादलों का ।

विशेष—नीरजा की ही कविता सख्या १२ में कवयित्री ने लिखा है—
तारक में छवि, प्राणों में स्मृति

... ..

भर लाई हूँ तेरी चंचल ।

[उसकी स्मित लुटती रहती]

शब्दार्थ—मधु की वेला=वसंत ऋतु । वेला=समय; किनारा ।

अर्थ—मेरे मनरूपी मधुवन मे जो पुलकों के संसार (हर्ष) रूरी कलियों का विकास है, उसमें उस प्रियतम का ही हर्षोल्लास है । उस प्रियतम की मधुशाला मे जो हाला बिक रही है उसमें मेरे मन की ही मस्ती-मादकता भरी हुई है । प्रियतम के विरह जन्य मधुर दुःख-रूपी राज्यकी रक्षा उसकी स्मृति रूपी पहरेंदारों से होती रहती है—प्रियतम की स्मृतियों के कारण ही यह आह्लादकारी मधुर वेदना बनी रहती है । स्मृतियों से ही विरह-वेदना जीवित है ।

इसका दूसरा अर्थ ऐसे भी हो सकता है—मानव दुःख में स्वयं ही विनष्ट हो जाता पर उसकी मधुर स्मृतियों के अमृत कण ही दुःख को सहन करने की शक्ति देते हैं, जिस से वह दुःख भी मधुर हो उठता है ।

उस प्रियतम का सुख का खजाना है जिसपर मैंने वेदना रूपी साले डाल दिए हैं और जिनको वह खोल नहीं सकता—मैं उसकी प्रेमिका-साधिका हूँ, इसलिए वह आनंदमग्न रहनेवाला प्रियतम मेरी वेदना से निरपेक्ष नहीं रह सका, मेरी वेदना से वह भी व्यथित है । वह ब्रह्म सौरभ का सागर है तो मेरा जीवन वसंतऋतु-रूपी किनारा है ।

विशेष—‘उसका सुख... ..ताले डाले’ —भगवान भक्त के वश में होते हैं ।

[मुझे न जाना छलित ।]

अर्थ —मेरी किसी वस्तु को उसने महत्व दिया हो या न दिया हो किन्तु यह तो नितांत सत्य है कि उसे मेरे आँसुओं के पानी—विरह-साधना—की लाज रखनी पड़ी है । यद्यपि मेरा उससे साक्षात्कार नहीं

हुआ तथापि प्राणों के स्पंदन में उसीके पगों की आहट है, मेरे मन में जब उसकी स्मृति का उदय होता है तो मैं आत्म-विस्मृत हो जाती हूँ—उसकी स्मृति का उदय ही मेरी आत्म विस्मृति है । उसके नीरव मंदिर—शून्य लोक—मे मेरा भौतिक अस्तित्व ही नष्ट हो जाता है, अतः साक्षात् अनुभव का अवसर ही नहीं आता । अतएव हे सखी ! उसके प्रेम सम्बन्धों का यह खेल कितना निर्दय-निष्ठुर है—एक ओर उसने मुझमें अपने प्रति प्रेम उत्पन्न कर दिया है और दूसरी ओर साक्षात् मिलन नहीं हो सकता । यही दुर्भाग्य है और उसकी निर्मम निष्ठुरता ।

विशेष—समस्त कविता में गहन-गूढ व्यञ्जनाएँ हैं और अर्थ विशेष आयास सापेक्ष है ।

: २५ :

अवतरण—ब्रह्म को पाना कितना कठिन है !

[तुमको क्या देखूँ चिर नूतन ।]

अर्थ—हे क्षण-क्षण नूतन सौन्दर्य से प्रदीप्त रूप-राशि ! तुमको देखना मेरे लिए असम्भव है । क्योंकि तुम 'तिल-तिल नूतन'^१ हो रहे हो—तुम्हारा आदि-अंत नहीं-कहा जा सकता, तुम अनादि-अनन्त हो ।

देखो न जिस आँख की काली पुतली में लघुतम तिनको से लेकर विशाल अम्बर तक प्रतिबिम्बित होता है; पूर्वकालीन स्मृतियाँ शांत अवस्था में जिसमें स्वप्न या आँसू का सागर भर देती है, (अथवा इसका दूसरा अर्थ) जो लोचन अपने स्वप्नों से जागकर अर्थात् जिनके खुलते ही जड़ प्रकृति में रूपों का सागर उमड़ने लगता है; जिनके बिना संसार का सारा रूप-ऐश्वर्य अपना अस्तित्व खो देता है; (क्योंकि नेत्र न हों तो रूप का अस्तित्व ही क्या) उन पुतलियों को ही मैं नहीं देख पाती तब तुम्हें कैसे देख सकूँ—तुम्हारे कारण दूसरी वस्तुएँ दृष्टिगत होती हैं परन्तु तुम दिखाई नहीं पड़ सकते ।

विशेष—बिहारी का यह दोहा प्रसिद्ध है—

ज्यों आँखिन सब देखिए आँखि न देखीं जाहिं ।

[तुमको पहचानूँ क्या सुन्दर !]

अर्थ—जब मैं अपना हृदय—जिससे अंतरंग और कौन हो सकता है—न जान पाई तो मैं तुम्हें कैसे पहचान सकती हूँ, जो मेरा

सुख-दुःख का जन्म स्थल है, जो मेरा अपना अंतरंग है, जो हृदय शून्य (जड़ता) में भी स्पंदन के पुष्प खिला देता है (अथवा दूसरा अर्थ जो एकाकीपन में, जड़ शरीर में भी रोमांच पैदा कर देता है) जो मेरे प्राणों का आधार है—जब ऐसे सुन्दर मन को ही जान नहीं पाई तो जिस मन के द्वारा वह सुन्दर जाना जा सकता है, उसे कैसे पहचान सकती हूँ ?

[तुमको क्या बाँधूँ छाया तन]

अर्थ—जब मैं अपने मन को ही बाँध नहीं पाई तो तुम अरूप-निराकार को कैसे बाँधूँ ? तेरे विरह की निशा में जो मन दिन मानता है—विरह से मन शुद्ध, पवित्र और प्रकाशित होता है; जो निर्बन्ध-उन्मुक्त होते हुए भी मेरे लिए बन्धन है, जो अणु सम अल्पाकार है पर जो सारे जगत को व्याप्त कर लेता है—जो अणु रूप होते हुए भी विभुरूप है; जिसकी चेतना और शरीर के संगम का नाम जीवन है—ऐसे मन को जब मैं न बाँध सकी तो जिसको मन से ही बाधा है अथवा मन से बाधना होता है, उस अरूप—(जो साकार होने से सरलता से बँधता)—को बाँधना और भी कठिन है ।

विशेष—‘जो स्वच्छद... ..’ मन की स्वच्छदता, चंचलता ही मानव का बन्धन है मन को । बाँध लेना, उसका निरोध कर लेना ही मुक्ति ।

[तुमको क्या रोकूँ चिर चचल]

अर्थ—हे सदैव चचल (गतिशील) मैं तुम्हें कैसे रोक सकती हूँ ? जब मैं चचल पल (समय) को ही रोक नहीं पाती ।

पल की शृंखला ही जीवन-जगत है—पल का निर्माण आविर्भाव ही इस ससार का पर्याय है, और इसका तिरोभाव अथवा विनष्ट हो जाना ही प्रलय है । मेरी पलको का द्रुतगति से उठना-गिरना ही

जिसकी गणना अथवा माप-मान है—पलकों के उठने-गिरने से पल के उत्थान पतन की गणना हो सकती है। (ऐसा भी कहा जा सकता है कि) एक पल का आना-जाना मानों पलकों का उठना-गिरना है। मानव ने अपनी सातता से ही जिस पल को अनन्तता और नवीनता प्रदान की है, जब ऐसे लघुपल को ही नहीं रोक सकी तब इस पल के भी लक्ष्य, तुझ चिर चंचल को रोकना असम्भव-असाध्य है।

विशेष—इस कविता में ब्रह्म के लिए 'चिर नूतन,' 'सुन्दर,' 'छायातन,' तथा 'चिर चंचल,' शब्दों का प्रयोग साभिप्राय है। इनसे रूप गुण का बोध होता है और भाव बोधन में सहायता मिलती है।

अवतरण—कवयित्री को अपनी साधना की सफलता का आभास
 रहा है ।

[प्रिय गया है लौट रात]

शब्दार्थ—धवल=श्वेत

अर्थ—चन्द्रिकार्चिit निशा—नायिका का प्रियतम लौट गया
 है इस लिये वह (चन्द्रिका के कारण) श्वेत तथा ओसयुक्त रात्रि
 मलसाए चरणों से चल रही है—धीरे-धीरे बीत रही है । वह मूक-
 मंदिर अपनी वियोगमयी स्थिति में लीन है तथा हृदय में प्रियतम की
 मधुर पीडा को सँजोये हुए अश्रु बहा रही है ।

विशेष—१. 'सजल' 'धवल' आदि चाँदनी रात के विशेषण, जहाँ
 चन्द्रिकास्नात रात्रि का मादक वातावरण उपस्थित कर रहे हैं वहाँ
 वियोगिनी साधिका की साधना को मी ।

२. इन पंक्तियों में एक दम नूतन संगीत ध्वनित हुआ है ।

[सौरभ मद ढाल शिथिल]

शब्दार्थ—वकुल=मौलश्री

अर्थ—अपने प्रियतम के स्वागत की तैयारी में अपना सौरभ
 बिखेर, वकुल और प्रवाल के पत्ते बिछाकर प्रतीक्षा करती-करती
 चंचल वायु भी प्रियतम के लौट जाने से निश्चल सी हो रही है ।

विशेष—'सौरभ.....वकुल'—साधिका प्रियतम को सर्वस्व सम-
 पित कर चुका है, यही इस से व्यंजित होता है ।

[युग-युग जल मूक विकल]

शब्दार्थ—स्नेह=प्रेम, तेल ।

भावार्थ—युग युगान्तरों से गम्भीरता तथा व्याकुलता से अपने प्रेम (अथवा तेल) द्वारा दीपक के समान जलते-जलते, साधना करते-करते, साधिका की आत्मा अब समाधिस्थ हो रही है और उसका प्रेम सफल-सा हो रहा है ।

विशेष—‘मूक’ शब्द साधना की गम्भीरता को प्रकट कर रहा है ।

‘स्नेह’ तरल ही होता है । यहाँ यह प्रेम की सात्विकता को प्रकट कर रहा है ।

[किस के पदचिन्ह विमल]

शब्दार्थ—नीर जात=कमल ।

भावार्थ—साधिका की कमलवत आँख, तारों के रूप में अंकित, लौटे हुए प्रियतम के, पदचिन्हों को गिन रही है ।

विशेष—‘विरल’ शब्द इस तथ्य का द्योतक है कि चाँदनी में तारे कम होते हैं । यहाँ चित्रमयता भी दर्शनीय है ।

[किस की पद चाप चकित]

शब्दार्थ—पदचाप=पांव की आहट ।

भावार्थ—न जाने किस अलौकिक प्रियतम की आहट पाकर युग-युग से सुप्त जीवन में भी जागृति आ गई है । एक-एक सास में ताजगी और उल्लास समा गया है—साधना सफल-सी होती प्रतीत हो रही है ।

विशेष—प्रकृति के अर्थ में श्वास का अर्थ होगा वायु । इस कविता में सारा तथ्योद्घाटन अप्रस्तुत रूप में विशेषणों के माध्यम से हो रहा है ।

: २७ :

अवतरण—विरहिणी साधिका अपने भौतिक अस्तित्व को लीन कर आध्यात्मिक जीवन—शुद्ध भावनामयी स्थिति को प्राप्त करने की कामना-प्रार्थना करती है ।

[एक बार आओ इस पथ से]

शब्दार्थ—कुंतल=बाल । यामिनी=रात्रि । श्रमकण=पसीने की बूंद । अधर=ओष्ठ, आकाश ।

भावार्थ—हे प्रियतम तुम एक बार मलय पवन का रूप धारण करके इस पथ से आओ । आकाशवत् अधरों पर किरणों की मुस्कान, प्रतीक्षा करते-करते विरहजन्य मानसिक क्लान्ति से युक्त—मुखमण्डल पर ओसबिन्दुरूपी श्रमकण तथा सुख-दुख के स्वप्नों को लेकर मेरी विरहरूपी यामिनी तंद्रिल (नींद आने से पूर्व की स्थिति) है—विरह और प्रतीक्षा से शिथिल है । श्रांत-क्लांत है, तुम इसके चंचल बालों को अपने सुखद स्पर्श से सौरभमय कर सुला दो—अब यह महा विरह, प्रतीक्षा की घड़ियाँ, मेरे लिए असह्य हो गई है अतएव मेरी यही आकांक्षा है कि इस विरह-भावना को चिर विश्राम दो ।

विशेष—१. 'मलय पवन' रात्रि के प्रियतम रूप में है ।

२. 'अलसाई है विरह यामिनी'—यहाँ विरह की उन्नत स्थिति का वर्णन है । मानो साधिका विरह में समाधिस्थ हो रही है ।

३. श्लेष तथा सांगरूपक अलंकार है ।

४. मलय-पवन के लिए तथा प्रियतम के 'हृर्जाई' रूप के लिए 'चंचल' विशेषण सार्थक है । रवीन्द्रनाथ ने भी परमात्मा को एक

यान पर 'चिर चंचल' तथा मानव को 'चंचलेर सहचर' कहा है ।
हृद्य गत्यात्मक है क्योंकि उसका रूप विश्व भी गत्यात्मक है ।

[मृदु नभ के उर में छाले से]

अर्थ—मेरी विरह-यामिनी को चिर-विश्राम देने के लिए अनु-
कूल वातावरण चाहिए । अतएव ये तारा-दीप बुझा दो । ये आकाश
के कोमल हृदय पर पड़े हुए फफोलों के समान हैं—अत्यन्त दुःखदायक
हैं—और ये प्रत्येक क्षण कड़ा नियंत्रण रखते हैं । ये करुणा विहीन
निर्मम-निष्ठुर हैं—ये सर्वथा निरपेक्ष भाव से, मानो उपहास करते से,
मानव के दुःखो को देखते रहते हैं, ये बिना स्नेह (प्रेम, तेल) के जल
रहे हैं और इसलिए ये भस्म भी नहीं बनते (क्योंकि साधारण दीपक
अपने को जलाकर दूसरो को प्रकाश देता है)—इनमें किसी प्रकार
भावों का स्पंदन नहीं है, मानो जड़वत् चेतना से रहित हैं इसलिए
इनपर कोई भी परवाना नहीं रीझता—ऐसे तारा-दीपों को हे मलया-
निलस्वरूप प्रियतम तुम बुझा दो ।

विशेष—१. वस्तुतः पहले दीप जला करता है, फिर पीछे पर-
वाना । स्नेह-करुणा रहित व्यक्तियों में वह तेजस्विता कहाँ कि वे
दूसरों को आकर्षित कर सकें ।

२. ये दीप संसार के लिए ही नहीं विरहिणी के प्रिय-मिलन में
बाधक हो सकते हैं । इसीलिए मानो विरहिणी की यही कामना है—

प्रियतम को भाता है
तम के परदे में आना
हे नभ की दीपावलियो
तुम पल भर को बुझ जाना

—नीहार

[तम हो तुम हो और विश्व में]

अर्थ—मेरी एक मात्र यही कामना है कि कोई प्रकाश का कण न रहे, समग्र विश्व में अन्धकार, तुम और मेरे जीवन की शून्यता ही रहे—आत्मा-परमात्मा (प्रेयसी-प्रियतम) मिलें और अन्धकार और शून्यता के कारण न हम किसी को देख सके और न कोई हमको। ऐसी अन्धकारावस्था में मेरी छाया न रहेगी (क्योंकि जहाँ प्रकाश होता है वहीं व्यक्ति की छाया होती है)—मेरा अस्तित्व-व्यक्तित्व समाप्त हो जाय और इसके साथ पार्थिव जगत के सभी उपकरण और संस्कारादि भी लय हो जाएं। तेरी चेतना में अपने भौतिक अस्तित्व को लीन करके, तुझ—शीतल-सुगन्धित पवन से—एकाकार होकर, मैं सौरभवत—चिरंतन-आनंदमय—जीवन प्राप्त करूँ—भौतिक अस्तित्व को समाप्त तथा शुद्ध भावनामय स्थिति को पाकर तुझ में लीन हो जाऊँ।

विशेष—

१. यहाँ विशेषण इस प्रकार के हैं कि प्रेयसी-प्रियतम का अभि-सार वर्णित हुआ है।

२. दीपक जलकर राख हो जाता है, उसकी सुगन्धि वातावरण में रह जाती है।

३. प्रियतम के निश्वास भी क्या मलय-पवन से कम हो सकते हैं ?

: २८ :

अवतरण—प्रणय के जीवनका सार-स्वस्व विरह अथवा जलने में है और सामान्य संसार इस श्रेयस्कर रहस्य के माधुर्य-महत्व से अनभिज्ञ है। विरही के जलने को संसार मतवालापन समझता है किंतु इस पागलपन (Divine madness) का भी अपना माधुर्य है—यह वह नहीं समझ सकता।

[क्यों जग कहता मतवाली]

अर्थ—जब मैंने उस अलौकिक प्रियतम के विरह में ही जीवन का वास्तविक रहस्य पा लिया और इसी विरह के अनुपम आदर्श शलभ के प्रति जोकि अपने प्राणों को इष्ट पर न्योछावर कर जीवन के सार को पा लेता है—मेरी श्रद्धा-भक्ति है तो इस में आश्चर्य कैसा ? यदि मैं ऐसे आदर्श विरही के पंखों को चुनकर, उसकी चिर काम्य वस्तु दीपशिखा को उन पर अँकवा दूँ, तो इसमें मतवालापन कैसा ?

विशेष—विरहिणी का झुलसे पंखों पर दीपशिखा का अँकवाना ऐसा ही है जैसे किसी भी मृतक की स्मृति में, आदर देने के लिए उसका स्मारक स्थापित करना। साधिका और शलभ दोनों एक ही पथ—प्रणय पथ—के पथिक हैं, दोनों जलते हैं, तब शलभ के प्रति ऐसा आदर स्वाभाविक है।

[क्या अनुनय में मनुहारों में]

शब्दार्थ—अनुनय=मनावन, मनुहार=मनाने के लिए की जाने वाली खुशामद, विनती।

अर्थ—जब मैंने अपने प्राणों में ही प्रिय के रूप को आत्मसात् कर लिया है तब ऐसी स्थिति में प्रेम की औपचारिक विधियाँ—मान मनीवल, प्रेमोद्गार, आँसू, आवाहन (मनसा आमंत्रण), अभिसार आदि—व्यर्थ है ।

[भावे क्या अलि !]

अर्थ—हे सखी ! प्रियतम के वियोग में वसंत अच्छा नहीं लग सकता । क्योंकि जीवनमें यह मधुदिन-वसंत का दिन, चहल-पहल आमोद-प्रमोद का दिन अस्थायी है । फिर भला इसमें क्या आकर्षण हो सकता है ? यह भँवरे की मधुर गुंजार—मस्ती से भरा हास-विलास—तथा मतवाली 'मदिरा'—भौतिक सुख—सब क्षणभंगुर है । अतएव इनके प्रति मोह-आकर्षण का प्रश्न नहीं उठता जबकि मेरे विरही जीवन रूपी पतझड़ की ढाली-डाली—प्रत्येक क्षण—में स्थाई वसंत है—विरह की साधना में ही मुझे जीवन का चिर-चरम माधुर्य प्राप्त है ।

[जो न हृदय अपना बिघवाऊँ]

अर्थ—प्रियतम के स्वागत के लिए पुष्पहार की आवश्यकता है । हार बनाने के लिए मेरे पास केवल दो वस्तुएँ हैं एक हृदय (फूलके रूप में) दूसरा निश्वास (तार-धागा) । इस प्रकार निश्वासरूपी तारमें यदि मैं हृदयपुष्प को न पिरो दूँ तो फिर हार कैसे बन सकता है—विरह में जल-जलकर ही मैं उस महत्व तथा सौन्दर्यमय जीवनको पा सकती हूँ जो प्रियतम के उपयुक्त बन सके । हार बनाने के सामान्य उपकरणों—कलियो, सूत्र—का प्रयोग मैं इसलिए नहीं कर सकती क्योंकि कलियाँ प्रियतम की स्मित से स्नात हैं और तारों में प्रियतम की दृष्टि आभासित है ।

विशेष—दृष्टि का भी तार बन जाता है—यहाँ कवयित्री का सक्षम सूझ का पता चलता है ।

[मैंने कब देखी मधुशाला ?]

शब्दार्थ—विद्रुम सी हाला = मूँगे के समान लाल मद्य ।

अर्थ—मेरे लिए मधुशाला और उससे सम्बन्धित उपकरण प्याला-हाला सभी अपरिचित रहे हैं और मेरे मन में कभी इनकी इच्छा नहीं जगी—सांसारिक उपभोग वृत्तियाँ मेरे लिए तुच्छ हैं । मैं तो केवल अलौकिक प्रियतम की मुस्कराहट में ही अपनी आँखों को स्निग्ध करती रही हूँ ।

विशेष—अन्तिम पंक्तियों में लौकिक रूपक की रुचिरता देखते ही बनती है । यहाँ 'उनकी स्मित' मानो साकी की हँसी है । सुरापायी सुरापान नहीं करते वे तो साकी की मुस्कान पीते हैं, साकी मानो अपनी मुस्कान घोलकर पिलाता है । यहाँ तो कवयित्री ने यह कहकर कि 'स्मित में केवल आँखें धो डाली' और भी कमाल कर दिया है ।

: २६ :

अवतरण—चरम महत्व को प्राप्त करने का मार्ग, त्यागजन्य सेवा में है। स्वयं दुःख उठाकर विश्व का लाभ करना यही सात्विक प्रेरणा है।

[जाने किसकी स्मित रूम भूम]

अर्थ—न जाने किस रहस्यमय व्यक्ति (शक्ति) की मुस्कान कलियों का स्पर्श कर जाती है—उनके मुख पर बिखर जाती है। जिससे कलियों के छोटे-से हृदय में सुप्त (साथ ही सोया हुआ) सौरभ रूपी शिशु अचानक ही जगकर और फिर सम्भल कर अपने छोटे-छोटे कोमल पदों से चलता हुआ और कोमल पंखुरियों रूपी द्वार खोलकर, अपनी माता कलिका को सुप्तावस्था में ही छोड़कर चल देता है और बाह्य वातावरण में रम जाता है (विश्व में घूमने चला जाता है)। कलियों से निकला हुआ सौरभ तो समस्त संसार को सुरभित कर देता है किंतु कलिका मुरझा जाती है।

विशेष—माता के पास सोया हुआ शिशु उसको सोता छोड़कर धीरे-धीरे दबे पाँव द्वार खोलकर बाहर चला जाता है और माता बालक के वियोग में मुरझा-सी जाती है—यहाँ यही रूपक है।

[जाने किसकी छवि हम भूम]

अर्थ—न जाने किस अज्ञात शक्ति की कांति अनायास ही मेघों का स्पर्श कर जाती है। परिणामतः मंथर गतिगामिनी जल की चकित बूंदें आकाश स्थित मेघ को व्याकुलता से छोड़ पृथ्वी पर ढुलक पड़ती हैं। मेघ विद्युत् रूपी दीपक को लेकर खोज करते हैं और सागर के

समान गम्भीर घोष करते हैं—जल बिंदु-शिशुओं को पुकारते हैं । पर सब व्यर्थ जाता है । वह बूंदें तो प्राप्त नहीं होती पर इनका अपना अस्तित्व धुएं के समान नष्ट हो जाता है ।

विशेष—अंतिम पंक्ति में अंग्रेजी के मुहावरे (to end in smoke) का प्रभाव है ।

[जाने किसकी ध्वनि रुम भूम]

भावार्थ—न जाने किस रहस्यमय शक्ति की ध्वनि पर्वतों को आंदोलित कर जाती है । जिससे पर्वतों के प्रस्तरमय कठोर जीवन की संचित आकांक्षाएं अश्रु-निर्झरो के रूप में फूट निकलती हैं ।

पर्वतों का अणु-अणु अंग-प्रत्यंग—भावना-द्रवित हो इस प्रवाह में अपने हृदय का स्नेह (जल, अश्रु) मिलाते हैं—योग देते हैं । इस प्रकार वह प्रस्तर-जात निर्झर मस्ती में झूमता हुआ अनेकों को तृप्त करता हुआ अज्ञात देश की ओर चल पड़ता है । इस प्रकार वह पहाड़ स्वयं सूखा हुआ रह जाता है किन्तु अपने स्नेह-निर्झरो से दूसरों को तृप्त करता है, लाभ पहुंचाता है ।

विशेष—“उनके जड़...पुलकित”—मनुष्य की संचित इच्छाएं आवेश की स्थिति में आसुओं में फूट उठती हैं ।

[जाने किसकी सुधि]

भावार्थ—न जाने किसकी याद मेरी पलकों का स्पर्श कर जाती है । इस मादक स्पर्श से हृदयरूपी कोष के भाव-मोती पिघल-पिघल कर पहले आंसुओं में परिणत (द्रवित) हो जाते हैं । ये अपार आंसुओं के नहीं रकते और अनवरत प्रवाहित होते हुए धूल कणों में मिल जाते हैं । धूल जैसे तुच्छ कण की सहायता के लिए भी अपना नाश कर लेते हैं ।

विशेष—इस समस्त कविता को रूपक अलंकार ने अद्भुत रूप प्रदान कर दिया है ।

: ३० :

अवतरण—इस मानव जीवन का भी अपना महत्त्व है । अपने निजत्व को बनाए रखे बिना प्रेम का, प्रियतम की सुधि का, आनन्द नहीं लिया जा सकता ।

[तेरी सुधि बिना क्षण-क्षण सूना]

शब्दार्थ—सुधि=याद, होश आदि ।

अर्थ—प्रियतम तेरी याद के बिना यह मानव-जीवन व्यर्थ है । इस रज निर्मित सुन्दर देह में मेरा रोमांचित व्यक्तित्व इस प्रकार प्रतिबिम्बित है, जिस प्रकार दर्पण में छाया । जिस प्रकार दर्पण के बिना शृंगार-सौध सूना हो जाता है । उसी प्रकार यह प्रेम—लोक—जो आत्मा-परमात्मा का संयोग-स्थल है—इस सुन्दर मानव शरीर के बिना सूना हो जाता है । मानव-शरीर का भी अपना महत्त्व है और इसी के द्वारा तो प्रियतम की सुधि हो सकती है ।

[सपने ओ-स्मित जिसमें अंकित]

शब्दार्थ—आनन=मुख । अवगुण्ठन=घूँघट । अपलक=खुला हुआ, नग्न ।

अर्थ—सुख-दुःख के ताने-बाने से बुना हुआ तथा पूर्वजन्म के स्वप्न और स्मित—संस्कारों—से अंकित इस निजत्व (आत्म-चेतना ego अपने-पन की भावना) के घूँघट के बिना अनावृत मुख—आत्मा—सुशोभित नहीं हो सकता—निजत्व (मैं हूँ) की चेतना के बिना मेरा अस्तित्व, अपना सौन्दर्य खो बैठता भी है । और यदि यह

वह हो जाय तो मैं स्वयं वह हो गई। और मानों तुममें विलीन हो गई। ऐसी अवस्था में तुम्हारी सुधि का दृश्य ही नहीं उठता, क्योंकि प्रेम-सम्बन्धों, सुधि आदि के लिए जहाँ का आधार आवश्यकता है, वहाँ द्वैत (पृथकता) की स्थिति भी अनिवार्य है।

[जिनका चुम्बन चौंकाता मन]

अर्थ—हृदय रूपी उपवन में नाना प्रकार के भाव-कुसुम खिलते (उमड़ते) रहते हैं। किन्तु यदि मधुरभाव रूपी फूलों से सुसज्जित हृदय-उपवन में भूल रूपी शूल न हों तो, फूल रूपी माधुर्यमयी भावनाओं का वास्तविक परिज्ञान ही नहीं होगा, क्योंकि केवल एक पक्ष फूलों, सुन्दर भावनाओं—से परिचित मनुष्य इस पक्ष के वास्तविक महत्त्व को नहीं जान सकता, विपरीत पक्ष—भूल-शूल—आकर प्रथम पक्ष के महत्त्व की चेतना जगा देते हैं। अतएव जिन काँटों का स्पर्श फूलों के सौन्दर्य में परिज्ञान कराता है—जिन भूलों द्वारा मधुर भावनाओं का ज्ञान होता है, उनके बिना हृदय रूपी उपवन शून्य हो जायगा।

[दृग पुलिनों पर हिम से मृदुतर]

शब्दार्थ—पुलिन=किनारे। हिम=ओस।

अर्थ—यदि मानव-मन रूपी सागर में स्थित आँसू रूपी मोती जो ओस से भी कोमल है हृदय-गत करुणा रूपी लहरों में बहकर भावोद्रेक में, नेत्रों के किनारों पर न आजाये—यदि आँसू न हो, तो यह समस्त समृद्धि का आकर (खान) जीवन सूना है।

[जिनका रोदन जिसकी किलकन]

शब्दार्थ—किलकन=हँसी।

अर्थ—यदि इस जग रूपी विस्तृत आँगन में विरह-मिलन

रूपी शिशुओं की क्रीड़ा, रुदन-हास—न हो तो यह आँगन सर्वथा सूना हो जाए। विरह-जन्य दुःख तथा मिलन-जन्य सुख दोनों में ही जीवन का सौन्दर्य है।

विशेष—इस समस्त कविता को सांग-रूपकों ने अद्भुत स्वरूप प्रदान कर दिया है।

: ३१ :

अवतरण—इस कविता में साधक की उस स्थिति का वर्णन है जब आत्मसाक्षात्कार या ज्ञान होने पर माया के कारण उत्पन्न द्वैतभाव का विनाश हो जाता है ।

[टूट गया दर्पण निर्मम]

शब्दार्थ— दर्पण=शीशा, भौतिक अस्तित्व का ज्ञान, माया ।

अर्थ— हे निर्मम ! वह दर्पण—माया (मेरे तेरे का ज्ञान अहं-कार) — जो तुम ने मुझे भेट में दिया वह तुम्हारे ही द्वारा टूट गया ।

इस दर्पण में मेरा प्रतिबिम्ब हँसता था— मैं मायापूर्ण थी - जो मेरे लिए दुःख का कारण बना । ममता-माया—मेरे तेरे की बन्धनमयी स्थिति—ही मेरे दुःख का कारण थी । इस प्रकार इस हर्ष-विषाद से यह सारा संसार अङ्कित हो गया । जिसके पर्दे मे मैं और तुम आँख मिचौनी खेलते रहे— जिसके कारण मानवात्मा आवागमन में बन्धी रहती है—वह नष्ट हो गया ।

विशेष—१ जब दो होते हैं तभी तो आँख मिचौनी का खेल खेला जा सकता है । जब आत्मा-परमात्मा में भेद—अज्ञानमयी स्थिति अथवा माया रहती है तभी यह खेल सम्भव है— जब माया का परदा हट जाता है, प्रिय से अभेद हो जाता है, तो फिर यह खेल कैसा ?

२. नंददास ने भी दर्पण का इसी अर्थ में प्रयोग किया है । यथा—

‘बा गुन की परछाह री माया दर्पन बीच’

[अपने दो आकार बनाने]

अर्थ—अपने एकाकीपन को दूर करने के लिये, अपनी रमण की इच्छा को पूर्ण करने के लिए ईश्वर एक से दो हुआ और अज्ञान पर आश्रित संसार की रचना हुई। किंतु जिस पार्थिव अस्तित्व (दर्पण) की इस प्रकार रचना हुई वह आज टूट गया है—द्वैत की स्थिति लुप्त हो गई है।

विशेष—प्रसिद्ध ही है—सः एकाकी न रमतः

तथा 'एकोऽहम् बहुस्याम—मैं एक से अनेक हो जाऊँ, ऐसी इच्छा ईश्वर ने प्रकट की।

[कंसा पतझर कंसा सावन]

अर्थ—भेदबुद्धि, माया के नष्ट होते ही, पतझर-सावन रात-दिन, मिलन-विरह, हर्ष-विषाद तथा देशकाल का ज्ञान आदि, नाना रूपात्मक जगत—जिससे पार्थिव अस्तित्व की स्थिति व्यक्त होती है—सब लुप्त हो गया, सब असत्य भासित होता है। आज तो केवल एक ही सत्य रह गया है और एक ही चेतना रह गई है कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है।

[किस में देख सँवारूँ कुन्तल]

शब्दार्थ—कुंतल=बाल। अंगराग=सुगंधित लेप या उबटन।
चल=चंचल।

अर्थ—प्रेम सम्बन्धों और शृंगारादि के कारण दूसरे को रिझाने के लिये द्वैत की स्थिति आवश्यक है किन्तु जब अपने अस्तित्व—अहंकार की चेतना—के लोप होने से अद्वैत हो गया तो यह शृंगार—वेशभूषा, अंगराग के पुलकमय प्रसाधन, प्रेम की कल कल्पनाओं से

नयनों को अंजित करना कैसा और रूठना-रीझना अथवा प्रेयसी-प्रियतम का अभिनय कैसा ?

[प्राज कहाँ मेरा.....अपनापन]

अर्थ—आज मेरी अहंकार-भावना लुप्त हो गई है, और यही वह आवरण था जिसके पीछे तुम छिप जाते थे । क्योंकि जब तक मेरे-तेरे, मोह-ममता अर्थात् माया रहती है तब तक प्रियतम दूर रहते हैं । यह अहंकार ही मेरे आवागमन के बंधन का कारण था जो तुम से एकरूप नहीं होने देता था । पर यही तुम को प्राप्त करने का साधन-माध्यम भी था क्योंकि एक होने के लिए जहाँ अद्वैत का आभास आवश्यक है वहाँ द्वैत की स्थिति भी । हे प्रिय अब उस अहंकार के आवरण—जिसके कारण विरह-मिलन, सुख-दुख की स्थिति थी—के लोप हो जाने पर आज तुम्हारा सुख मुझमें और मेरा दुःख तुम में लुप्त हो गया है ।

विशेष—“रहस्यवादी कविता में जहाँ लौकिक वस्तुओं और व्यापारों के प्रतीक अपनाए गये हैं वहाँ तो उनमें बोधगम्यता है किंतु जहाँ कवि और अज्ञात प्रियतम के बीच का गोपनीय सम्बन्ध ही व्यक्त हुआ है वहाँ स्वभावतः दुर्बोधता आ गई है । कही-कही आध्यात्मिक साधना के सूक्ष्म मार्गों और अनुभूतियों की भी अभिव्यक्ति हुई है जो सामान्य जन की अनुभूतियों से भिन्न है । अतः सामान्य जन के लिये वे दुर्बोध्य हैं । निराला और महादेवी की कविता में इस तरह की दुरूह और कष्टसाध्य भावाभिव्यंजना बहुत अधिक हुई हैं ।” इस कविता में ब्रह्म और जीव का अद्वैतरूप दिखलाया गया है । माया के कारण जो द्वैतरूप दिखलाई पड़ता है, वह भ्रमपूर्ण है । ज्ञान के बाद जीव का वह भ्रम टूट जाता है । माया ब्रह्म का ही अविद्या रूप है और जीव उसी के कारण सुख-दुःख के बंधनों में फँसता है । इस आध्यात्मिक तथ्य का

चित्रण महादेवी ने प्रतीक और अन्योक्ति की पद्धति से किया है ।

“आत्मसाक्षात्कार या ज्ञान होने के बाद माया के कारण उत्पन्न द्वैतभाव के मिट जाने की अनुभूति इस कविता में व्यक्त हुई है । यह अनुभूति सामान्य पाठकों की अनुभूति से भिन्न कवयित्री की अपनी विशिष्ट अनुभूति है । पाठक जब तक अद्वैतवाद के दर्शन को अच्छी तरह नहीं समझ लेता इस कविता को नहीं समझ सकता ।”

मेरे विचार में यहाँ लौकिक रूपक फिर भी सुन्दर है ।

: ३२ :

अवतरण—जिस नायिका के प्रियतम आने वाले हैं ऐसी रजनी रूपी नायिका को सखी शृंगार करने को कह रही हैं ।

[ओ विभावरी... ..भार री ।]

शब्दार्थ — विभावरी=रात्रि । चिकुर=बाल । अंगराग=सुगंधित लेप ।

अर्थ—हे रजनी-नायिका ! तुम्हारे प्रियतम आने वाले हैं इस लिए मांगलिक शृंगार करले । तू शरीर पर चाँदनी रूपी अंगराग तथा मांग में पराग रूपी सिद्धर लगा ले । अपने अंधकार रूपी कोमल-स्निग्ध खुले बालों को किरणों के धागे से सवार ले ।

[अनिल धूम देश देश ।]

अर्थ—यह पवन रूपी दूत कितने देशों को लाँघकर, कितना पथ चल कर, वर्षा के मेघ स्वरूप प्रियतम का संदेश लेकर आया है । तू इस उपलक्ष्य में ओस रूपी मोतियों को न्योछावर कर ।

[लेकर मृदु उर्मि बीन ।]

शब्दार्थ—उर्मिबीन=लहर रूपी वीणा । मलार=वर्षा ऋतु में गाया जानेवाला राग ।

अर्थ—बादलों के गर्जन के रूप में प्रियतम के कदमों की आहट सुनाई दे रही है—प्रियतम आ रहे हैं—अतएव तू लहर रूपी वीणा पर मधुर-मार्मिक तथा नूतन स्वागत-गान मलार राग गा ।

विशेष—वर्षा ऋतु में लहरों का अधिक घोष करना स्वाभाविक है ।

[बहने दे तिमिर भार ।]

शब्दार्थ—सुरभि=सुगंध ।

अर्थ—जब प्रियतम आ ही रहे हैं तो निराशा के अंधकार को घुल जाने और वियोगाग्नि के अंगारों (तारों) को बुझ जाने दे । उल्लासमग्न होकर शृंगार कर ले । सुरभि रूपी सुन्दर दुपट्टा ओढ़ ले तथा मौलश्री की माला पहन ले ।

विशेष—१. रात्रि के समय मौलश्री के फूल झड़ाने करते हैं ।

२. इस गीत में परम्परा मुक्त नूतन संगीत की बहार है ।

अवतरण—इस कविता में महादेवी उस कर्मण्य-करुणाशील व्यक्ति का अभिनन्दन करती है जिसने स्वयं दुःख सहन करके दूसरो को सुख प्रदान किया हो ।

[प्रिय जिसने दुख पाला हो ।]

अर्थ—जिसने जीवन में करुणा (संवेदना) का पोषण किया हो, जिस व्यक्ति को पर-दुख कातरता के कारण वेदना (पीड़ा) भी सुगंधित चंदन के लेप की भांति वांछनीय हो तथा शीतल प्रतीत होती हो, तूफानो की छाया—भयंकर कठिनाइयाँ—जिसे प्रिय के आर्लिगन अथवा प्रिय-स्पर्श की भांति सुखद प्रतीत हों तथा जीवन की असफलताएँ भी विजय का सोपान बनकर आएँ और इसीलिए हार भी जय से अधिक स्पृहणीय हो उठे, असफलता को भी जो सहज रूप में, स्वाभाविक प्रसन्नता से ग्रहण कर सके तथा दृढ़ आशा—उत्साह से अपने गतंव्य पथ की ओर अग्रसर हो, हे प्रियतम, मुझे वरदान दो कि ऐमे व्यक्ति का ही स्वागत मेरा यह संवेदनापूर्ण छोटा-सा आंसू हृदय का हार बन कर सके ।

विशेष—‘पाला हो’ शब्द साभिप्राय है । इससे यह प्रकट होता है कि वेदना व्यक्तिगत अभावजन्य नहीं है अपितु दूसरों के दुःखों को दूर करने के लिए, व्यक्तिगत सुख का परिहार करके अपने हृदय में दुःख का पोषण किया गया है । अपने हृदय को भी वेदनामय किया गया है क्योंकि घायल की गति घायल ही जान पाता है ।

[जो उजियाला देता हो]

अर्थ—जो व्यक्ति दीपक के समान स्वयं जलकर दूसरों को आलोक प्रदान करे—वेदना से प्रेरित होकर दूसरों का उपकार करे—जिसने अपनी सुख सुरा को इस जगत रूपी मधुशाला में बाँट दिया हो और जिसने सहज प्रसन्नता से अपनी सुख-सुरा में दुःख-विष को भर लिया हो; हे, प्रियतम ! मुझे वरदान दो कि मेरी शुभेच्छाओं का अमृतपूर्ण प्याला उस कृती-बलिदानी व्यक्ति के प्रति समर्पित हो ।

विशेष—यह समस्त कविता महादेवी के असीम करुणाशील (संवेदनशील) व्यक्तित्व तथा भावनाओं की सजग परिचायक है । इसी कारुण्य भावना की द्योतक निराला की निम्न पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

माँ मुझे वहाँ तू ले चल ।

देखूँगा वह द्वार —

दिवस का पार —

मूर्छित हुँगा पड़ा है जहाँ

वेदना का संसार ।

—परिमल

: ३४ :

अवतरण—यद्यपि आत्मा-परमात्मा में अंतर नहीं तथापि सत्स्वरूप की विस्मृति होने से, अज्ञान के कारण हम इस अंतर को सत्य समझते हैं। अपने स्वरूप को पहचान तथा अपने भीतर की ज्वाला-साधना में जल-तपकर उस परम तत्त्व की प्राप्ति सम्भव है।

[दीपक में पतंग जलता क्यों ?]

अर्थ—हे पतंगे ! तू दीपक के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसमें क्यों जलता है। जिस स्नेह-साधना से दीपक प्रदीप्त है तुझमें भी उसी प्रियतम के प्रेम का आलोक है। आलोक को आत्मसात् किए हुए भी तू उसे ढूँढता फिरता है मानो वह दूर हो। इस प्रकार अपने में ही प्रेमालोक को न खोजकर अज्ञानवश दीपक में जलता है, यह तेरा पागलपन है—आत्मा परमात्मा में अन्तर नहीं, केवल सत्स्वरूप का ज्ञान आवश्यक है।

विशेष—‘दूरी का अभिनय’—‘अभिनय’ इसलिए क्योंकि उसमें वास्तविकता नहीं।

[उजियाला जिसका दीपक में]

अर्थ—दीपक जिस ज्वाला-साधना से प्रकाशित है तुझमें भी वही ज्वाला है। अतएव अपने स्वरूप की विस्मृति से तू भटकता फिरता है। अपनी ज्वाला में ही जल, दीपक के पास जाने की आवश्यकता नहीं है—वह परमात्मा जैसे किसी दूसरे के पास है वैसे ही तुम्हारे पास भी, अतएव कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं।

[गिरता कब दीपक दीपक में]

अर्थ—एक ही आलोक को रखने वाले उपकरण—दीपक, तारे एक दूसरे की अपेक्षा नहीं रखते । तू इस तथ्य को नहीं समझता और तू स्वरूप की विस्मृति से—यह न समझते हुए कि तुझमें भी वही आलोक है—दूसरे की ज्वाला में जल मिटने की नादानी करता है पर हाथ कुछ नहीं आता ।

[पाता जड़ जीवन, जीवन से]

अर्थ—जड़ और अन्धकार, चेतन और प्रकाश से सम्पृक्त होकर तद्रूप (चेतन और प्रकाश) हो जाते हैं, वही गुण ग्रहण कर लेते हैं । पर तुम दोनों (पतंग और दीपक) एक समान गुणों से, एक ही प्रकाश से, विभूषित हो, अतएव तुम्हें तद्रूपता मे क्या लाभ ?

[जो तू जलने को पागल हो]

शब्दार्थ—धूमहीन=बिना धुएँ के ।

अर्थ—हे पतंगे ! यदि तू दीपक के समान अपने भीतर की ज्वाला को पहचान साधना संलग्न हो जाय तो तेरा दुःख-जन्य अश्रु-जल भी स्नेह का रूप धारण कर तुझे आलोकित करने मे सहायक सिद्ध होगा । अतएव अपने ही स्नेह से धूमहीन और निष्कम्प जलो और बुझो, मूक अनन्य साधना में रत रहो, व्यर्थ के हाहाकार की आवश्यकता नहीं ।

: ३५ :

अवतरण—मैं अपनी करुणा के दान का प्रतिदान नहीं लूँगी क्यों कि व्यापार वहाँ होता है जहाँ दो हो, पर देश-काल तथा ब्रह्म से मेरी भिन्नता केवल नाम-रूपात्मक है। अतएव मैं अपनी करुणा की क्षति-पूर्ति (Compensation) नहीं चाहती। जीवन के लिए चरम सत्य केवल दो है। एक प्रियतम के प्रति विरह भावना, दूसरा संसार के प्रति करुणा।

[आँसू का मोल न लूँगी मैं]

अर्थ—हे प्रियतम ! मैं अपनी करुणा की देन का प्रतिदान नहीं चाहती क्योंकि विश्व और मेरा दोनों का भेद केवल नाम रूपात्मक है वस्तुतः हम अद्वैत हैं जँसे समय अथवा क्षण मेरे निरंतर चलनेवाले प्राणों के स्पंदन से भिन्न नहीं है—मेरी एक-एक साँस ही तो काल का माप-मान बनी हुई है। मेरा मिट्टी से बना शरीर रजमय संसार से भिन्न नहीं। यह जगत भी मेरा दर्पण है मेरी सभी क्रियाओं का प्रति-बिम्ब ही तो यहाँ पड़ता है, संसार का कार्य व्यापार मेरे से भिन्न नहीं। हे प्रियतम ! तुम मेरे सर्वस्व हो—जब तक मेरा अस्तित्व है तब तक तुम हो, नहीं तो तुम्हें स्मरण कौन कर सकता है। इस प्रकार इस विश्व में जो कुछ है, उन सब के साथ मेरा सहस्तित्व है, और उन सब में तुम भी समाए हुए हो, अतएव मेरा किसी से व्यापार नहीं हो सकता।

[निर्जल हो जाने दो बावल]

शब्दार्थ—रीते = खाली।

अर्थ—यदि ये बादल भी बरस कर रीते होते हैं, यदि फूलों के पंखुडियाँ भी मधु-मकरन्द से विहीन होती हैं, विश्व में करुणा निःशेष होती है, और जनता का जीवन भी मधुर व्यथा—करुणा—से शून्य हो जाता है तो होने दो, कोई चिंता नहीं—क्योंकि मैं अपनी करुणा के अमर भण्डार से संसार के अभाव की पूर्ति करती रहूँगी ।

[मिथ्या प्रिय मेरा अवगुंठन]

अर्थ—मेरा यह लज्जा का आवरण मिथ्या है—वे सभी भाव अथवा भौतिक बंधन जो मिलन में बाधक हैं असत्य हैं । मेरा भोला-पन—अज्ञान—ही मेरे लिए शाप है क्योंकि यही प्रियतम से पार्थक्य का कारण है । प्रिय-स्मृति की कचोट और संसार के प्रति कारुण्य भावना, यही जीवन के एकमात्र सत्य हैं, इन्हीं दो साधनों से अभिशाप-स्वरूप जीवन भी मेरे लिए वरदान, मधुर मुक्ति बन जाएगा ।

विशेष—रश्मि की भूमिका में महादेवी ने दुःख के इन्हीं दो स्वरूपों का वर्णन किया है—१. जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए चेतन का असीम के प्रति क्रन्दन है, २. वह दुःख जो समस्त संसार को एक सूत्र में बाँधता है अर्थात् करुणा । इसी करुणा के द्वारा ही विश्व-जीवन में अपने जीवन को लीन रखना कवि का मोक्ष है । इस कविता में भी इन्हीं दो चरम सत्यों पर विश्वास प्रकट किया गया है ।

: ३६ :

अवतरण—मेरा व्यक्तित्व क्षणभंगुर है किन्तु हृदय की विभूतियाँ हर्ष-विषाद—अमर रहेगी ।

[कमल दल पर किरण अंकित]

अर्थ—कवयित्री उस अज्ञात चित्रकार से पूछती है कि क्या मैं कमल की पंखुड़ियों पर किरण-कलित चित्र हूँ—प्रातःकाल सूर्य की किरणों कमल पर शतशत स्वर्णिम चित्र अंकित कर देती है, क्या मैं वही चित्र हूँ ?

तुमने बादल रूपी प्यालियों में निहित चाँदनी के सार (मसि) में इन्द्र धनुषी तूलिका डुबोकर मेरे हृदय-पटल पर प्रेम का जो चित्र अंकित किया, क्या इस चित्र के रंग—जिसका निर्माण उक्त अनमोल प्राकृतिक उपकरणों द्वारा हुआ है—काल के अकिंचन आँसू से धुल जायेंगे ? यह चित्र क्या वास्तव में इतना क्षणिक है ?

विशेष—१. यहाँ 'बादलों की प्यालियाँ' सजल करुणा, 'चाँदनी का सार' उल्लास तथा 'इन्द्रधनुष' सतरंगी कामनाओं का प्रतीक है । इन्हीं के द्वारा मानव जीवन का रम्य चित्र बना है ।

२. यहाँ महादेवी की कल-कल्पनाओं और रंगधुली तरलता का आस्वादन हो सकता है ।

[तड़ित मुग्ध में, वेदना में]

अर्थ—इस प्रेम के चित्र का निर्माण अद्भुत-अनमोल उपकरणों द्वारा हुआ है । मेरी स्मृति मे चमत्कृत करने वाली बिजली (टीस), वेदना में वर्षा-रात्रि (साश्रुविषाद) और स्वप्नों में रूप-रंग

से समृद्ध मधु का प्रात (उन्मादकारी हर्ष) है । क्या ये प्रसाधन-अलंकार कोमल शिरीष कुसुम के समान कुम्हला जायेंगे—क्षणिक सिद्ध होंगे ?

[है युगों का मूक परिचय]

अर्थ—जब से मेरी आत्मा का परमात्मा से वियोग हुआ, जन्म जन्मांतरों से, मेरा इस देश, इस मार्ग से इतना घनिष्ठ परिचय हो गया है—मैं अनेक प्रकार की मधुर कामनाओं को लेकर इस मार्ग से आई गई हूँ—कि यहाँ की धूल भी मेरी चाह से सुरभित हो गई है—मेरी मधुर कामनाओं का सौरभ इस पथ की धूल में बस गया है । इस संसार में मेरे अगणित चिन्ह—ज्वलंत स्मृति चिन्ह (स्मारक) क्या नाश की एक निश्वास से वैसे ही बुझ जायेंगे, जैसे एक दीपक फूँक से बुझ जाता है ?—इस विश्व के साथ मेरी अनेक स्मृतियाँ सम्बन्धित हैं क्या वह भी क्षणिक सिद्ध होंगी ?

[नाच उठते निमिष पल]

अर्थ—मेरी पहचान से—साधना की अग्रसरता से—जड़ काल में भी नर्तन उत्पन्न हो जाता है । मैंने अपनी साधना-सघी ससीम दृष्टि-परिधि में असीम को बाँध लिया है—मेरे व्यक्तित्व का प्रसार-विस्तार हो गया है, असीम विश्व के साथ तादात्म्य हो गया है । फिर भला मेरे ऐसे असीम प्राणों को मृत्यु कैसे बाँध सकेगी ।

[आँक दी जग के हृदय में]

शब्दार्थ—लास=नृत्य

अर्थ—इस समस्त संसार के प्राणों में मेरी प्यास (वेदना) अमर होकर बसी हुई है । मेरे हृदय की विभूतियाँ—साश्रु विषाद और उत्फुल्ल आह्लाद सर्वत्र दिखाई पड़ रही हैं । चाहे मेरा स्थूल व्यक्तित्व नष्ट हो जाए किन्तु मेरा दिव्य व्यक्तित्व तो रहेगा ही क्योंकि उसका समस्त जगत के साथ तदाकार हो चुका है ।

विशेष—मेरे हृदय की विभूतियाँ संसार को अमर वरदान हैं । मैं नष्ट हो सकती हूँ किन्तु ये विभूतियाँ नहीं ।

अवतरण—जीव वस्तुतः परमात्मा ही है, असीम है किन्तु संसार-सीमा में आबद्ध होने से वह ससीम ही है । ब्रह्म और जगत् उसके दो छोर हैं । इन दोनों के हिंडोले में वह झूलता है । शरीर दुःखरूप जगत् का अंश है और आत्मा आनन्दस्वरूप चेतन का । अतएव जीव सुख-दुःख, आह्लाद-विषाद, विरक्ति-आसक्ति आदि विरोधी गुणों का प्रतीक है और इसलिए अपने आप में पहली भी—समस्या भी ।

[प्रिय में हूँ एक पहली भी]

अर्थ—ससीम और असीम, विरोधी गुणों से संयुक्त होने के कारण प्रिय ! मैं अपने आप में एक समस्या अथवा बुझाविल हूँ । जितना सुख-सौन्दर्य और हास-विलास वाला अमृत तुम्हारी चितवन में है और जितना दुःख-विषाद और पीड़ामय विष इस स्वार्थ-स्पंदित स्वार्थमय जगत् में है—इन दोनों का पान करके एक ओर तो मुझे सदैव दुःखपान की प्यास बनी रहती है और दूसरी ओर से मैं सुखरूपी सरिता की क्रीड़ाभूमि बन जाती हूँ ।

विशेष—१. अन्तिम पंक्ति में रूपक है ।

२. दोनों विरोधी गुणों के अस्तित्व से संघर्ष-भूमि बना प्राणी, एक पहली ही तो है । फिर भी यहाँ विरोध नहीं, 'विरोधाभास' है ।

[मेरे प्रतिरोधों से अविरत]

अर्थ—मेरे प्रत्येक रोम-रोम से निरन्तर सुख के निर्झर और दुःखाग्नि के स्फूर्लिंग (चिंगारियाँ) झरते हैं । आसक्ति और विरक्ति दोनों ही मेरे जीवन को प्यार करती हैं अर्थात् कभी मैं संसार में

अनुरक्त होती हूँ और कभी ईश्वरोन्मुख होने से विरक्ति का अनुभव करती हूँ। हे प्रिय ! मैं जगत की जड़ता और ब्रह्म की चेतना दोनों की प्रतीक हूँ—मेरा ससीम शरीर जगत की जड़ता और विष का तथा आत्मा असीम चेतना और अमृत का प्रतिनिधित्व करते हैं।

विशेष—१. मनोविज्ञान के अनुबंध सिद्धांतानुसार विरोधी भावनाएँ भी किस प्रकार परस्पर शृंखलित रहती हैं, यह कविता उसका उदाहरण है।

२. विरोधाभास अलंकार का चमत्कार अवश्य है किंतु जीव की विचित्र स्थिति भी भली प्रकार से स्पष्ट हुई है।

: ३८ :

अवतरण—इस कविता में कवयित्री ने आत्मपरिचय (अपनी कहानी) के मिस भारतीय नारी की असहायवस्था की करुण-कोमल कहानी कही है—आप बीती ही जग बीती बन गई है ।

इस कविता का अर्थ दो प्रकार से हो सकता है ।

[क्या नई मेरी कहानी]

अर्थ—केवल मेरी ही कहानी किसी को आश्चर्य में डालने वाली नहीं, विश्व के अणु-परमाणु की यही कहानी है—मेरी दुखद कहानी की पुनरावृत्ति समग्र विश्व में हो रही है । (आगामी तीन कहानियों से नारी की दुखद स्थिति का ज्ञान हो जाएगा ।)

बादल के हृदय का रस अथवा स्नेह जब अपने अन्तर्दाह से पिघल कर बूँद—जो बादल के हृदय का सार थी, के रूप में गिर पड़ा तो कीचड़ का प्यासा एवं फटा हुआ हृदय उसे पी गया । जैसे बिजली क्षण भर चमक कर विलीन हो जाती है उसी प्रकार मेघ की वह निशानी, बूँद, भी क्षण भर में तृप्ति पृथ्वी के हृदय में समा गई । इस बूँद के समान ही मेरी करुण कहानी है ।

विशेष—सजल बादल करुणाशील माता-पिता का प्रतीक है जिन्होंने अपने हृदय का टुकड़ा कन्या—दूसरे घर (पंकिल भूखंड) को सौंप दिया । स्नेहविहीन पति ने उस अपरिचित का स्वागत किया । पर वह स्वयं कुछ प्रेम न दे सका, वह तो केवल वासना का प्यासा था । यही नारी की बिजली के समान करुण कहानी का कारण बना ।

[जन्म से मृदु कंज उर में]

शब्दार्थ (प्रतीकार्थ)—कंज-उर=माता-पिता । सर=कुटुम्ब । वायु=पति ।

अर्थ—कोमल कमल के हृदय में जन्म के क्षण से जिस गंध का बड़े प्यार से पोषण-संवर्धन हुआ वह चंचल गंध वायु के चंचल पंखों पर बैठकर उड़ गया तब उस सौरभ का सरोवर से कुछ परिचय न रहा और वह कलिका, जिसके हृदय-रस से वह पुष्ट हुआ था, वह भी क्षण भर में अपरिचित हो गई, आत्मीय न रह गई । यह गंध और कली की क्रूर कहानी वस्तुतः मेरी कहानी की पुनरावृत्ति मात्र है ।

विशेष—जिस कन्या को माता-पिता के कमल-कोमल हृदय से प्यार मिला वह वय प्राप्त होने पर पति के साथ चली गई और कुटुम्ब और माता-पिता दोनों उसके लिए अपरिचित से हो गए और उस अस्थिर मनवाले पति (अनिल के चल पंख) का क्या भरोसा ?

[चीर गिरि का कठिन-मानस]

अर्थ—पर्वत के कठोर-प्रस्तर हृदय को फोड़ कर जो स्नेह के समान मधुर निर्झर आविर्भूत हुआ उसे समुद्र ने अतिथि मानकर उसका अपने यहाँ स्वागत किया और इसका अमृत के समान मधुर निर्झर उस खारे सागर से मिलकर खारा पानी बन कर रह गया । यह निर्झर और सागर की कहानी मेरी करुण कहानी को सदैव दुहराती रहती है ।

विशेष—माता-पिता के प्रेम का प्रतीक एकमात्र उसकी संतान होती है, यहाँ निर्झर, उसकी मलिन स्वार्थी पति (सागर) के हाथों जो दुर्गति हुई वह स्पष्ट है ।

आध्यात्मिक पक्ष में अर्थ—

अवतरण—जीव परमात्मा का ही अंश है किन्तु उससे पृथक्ता की स्थिति में उसे अपने सत्य-स्वरूप का विस्मरण हो जाता है । परिणामतः उसमें विकार आ जाते हैं ।

अर्थ—विश्वम्भर 'मानव' के शब्दों में आध्यात्मिक पक्ष में अर्थ का सार इस प्रकार है—“कमल में जब तक गंध है तब तक तो वह उसकी है, पर जब वायु गंध को चुरा ले जाती है तब उस गंध को न सर की सुधि रहती है और न सुमन की, इसी प्रकार ब्रह्मरूपी कंज से निसृत जीव रूपी गंध को जब विश्व-समीर चुरा लाता है तब इस जीव को न अपने अमर लोक का ध्यान रहता है और न दिव्य उत्पत्ति का । बादल से टपकी बूँद यद्यपि बादल ही की है, पर जब यह पंक में पतित होती है तब सभी यह कहने लगते हैं कि कीच की बूँद है, अतः इस उज्ज्वल जीव में मलिन पृथ्वी के सम्पर्क से मलिनता का भी मिथ्या आरोप होता है । सरिता को ही देखिए, जब वह गिरि-उर को छोड़ती है और समुद्र के खारी जल से भेट करती है तब उसका मधुर जल भी खारा हो जाता है । क्या आत्मा की मधुरता भी उस जगत के खारे जल में—दुःख से—खारी प्रतीत नहीं होती ?”

विशेष—१. समस्त कविता में समासोक्ति अलंकार है ।

२. आध्यात्मिक अर्थ के स्पष्टीकरण के लिए यामा ९३ रश्मि पढ़िए । कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

मूक हो जाता वारिद-घोष ,
जगा कर जब सारा संसार ।
गूँजती, टकराती असहाय ,
धरा से जो प्रतिध्वनि सुकुमार ।
देश का जिसे न निज का भान ,
बतावे क्या अपनी पहचान ।

अवतरण—कवयित्री ज्ञानव जीवन को उबदोधित करते हुए कहती हैं कि इस क्षण-भंगुर जीवन की सार्थकता त्यागजन्य परसेवा में है ।

[मधुवेला है आज]

शब्दार्थ—मधुवेला=वसंत समय—फूल के लिए उपयुक्त समय, सुअवसर ।

अर्थ—अरे जीवनरूपी फूल ! आज विकास और उन्नति की ओर अग्रसर होने का सुअवसर है । दुःखरूपी रजनी अश्रुरूपी ओसकणों की जयमाला देने आई है । प्रभात समय की सुख की मन्द वायु ताल दे-देकर (अर्थात्) मानो जागरण-गीत गाती हुई जगाने और उत्साह देने आई है । अतएव हे कोमल (कल्पनाओ से युक्त) जीवन रूपी फूल ! निर्भय होजा । तू कष्ट-कण्टको से डर मत, ये तो मुझे प्रेरित तथा उत्साहित करने के लिए ही आए हैं (हाँ, परीक्षा चाहे ले) ।

विशेष—१. रूपक अलंकार ।

२. शूल कठिनाइयों का प्रतीक है ।

३ दुःख की रजनी भी 'जयमाला' इस लिए देती प्रतीत होती है क्योंकि जिसने कभी दुखों का अनुभव नहीं किया वह वास्तविक सुख भी कैसे प्राप्त कर सकता है । उन्नति का मार्ग प्रायः कष्टों और दुखों के भीतर से होकर जाता है ।

[भिक्षुक-सा यह विश्व खड़ा है]

अर्थ—एक दिन भिखारी के समान विश्व को करुणा और प्यार की अपेक्षा है । अतएव हे (पथभ्रष्ट) जीवनरूपी फूल, तू प्रफुल्लित

होकर अपनी पंखुडियों के द्वार खोल हृदय को उदार बना और अपने सौरभ को लुटा दे । इसी में इसकी सार्थकता है । परसेवा के हेतु दान देने में ही महत्व है क्योंकि यही मधुवेला है, विकास वेला है, फिर कौन जाने कल यह वैभव समाप्त हो जाय और मुझा कर धूल में मिल जाना पड़े—मृत्यु अपनी शरण में ले-ले ।

विशेष—१. महादेवी की कविता में जहाँ वेदना है वहाँ करुणा का अजस्र स्रोत भी । महादेवी इसी करुणा (सवेदना) से समाज की ओर जागरूक रहती है । उसकी उपेक्षा के कारण केवल स्व-केन्द्रित नहीं हो जाती—यह कविता इस तथ्य का सजग प्रमाण है ।

२. 'भिक्षुक-सा' में उपमा अलंकार है ।

३. जयशंकर प्रसाद भी 'लहर' की 'अशोक की चिता' शीर्षक कविता में जीवन-फल को सम्बोधित कर कहते हैं —

सरुति के विक्षत पग रे ,

यह चलती है डगमग रे ।

अनुलेप सदृश तू जग रे ,

मृदु दल बिखेर इस मग रे ।

कर चुके मधुर मधुपान भृंग ।

अवतरण—सुख-दुःख के सामंजस्य में ही जीवन की पूर्णता है । केवल दुःख मनुष्य को निस्पन्द बना देता है । अतएव सुख भी आवश्यक है । ‘रश्मि’ की भूमिका में पहले दुःख के प्रति अपने ममत्व को बताते हुए महादेवी ने यह भी लिखा था, “इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं कि मैं जीवन भर आँसू की माला ही गूँथा करूँगी और सुख का वैभव जीवन के एक कोने में बन्द पड़ा रहेगा ।” दुःख का उन्नयन भी कष्टों में सम्भव है, और कष्टों से सदैव सुखात्मक होती है—साधिका को इसी कष्टों की अपेक्षा है ।

[यह पतझर मधुवन भी हो]

शब्दार्थ—तुषार=हिम । वन श्री=वन की शोभा । दंशन=डंक मारने की क्रिया ।

अर्थ—कवयित्री यह कामना करती है कि जीवन वाटिका में पतझर स्वरूप दुःख के साथ वास्तविक सुख भी हो । तभी जीवन की सार्थकता है । जीवन रूपी वाटिका में जब दुःख रूपी तुषार का एकान्त प्रभाव-विस्तार हो—सर्वत्र जड़ता-जर्जरता का प्राधान्य हो—तो वसन्त का आगमन भी हो । मानों वसन्त ऋतु में विकसित वन की शोभा अपनी चितवन रूपी प्याले में मकरंद घोलकर सब पर छिड़क दे, जिससे सब हरा-भरा हो जाए—सर्वत्र उल्लास छा जाए । जीवन-वाटिका में एक ओर कष्ट-कठकों की चोट-कड़ोटी हो तो दूसरी ओर सौन्दर्य की सरसता-स्निग्धता भी ।

विशेष—१. यहाँ 'पतझड़' शूल आदि दुःख के तथा 'मधुवन' और 'कलियाँ' आदि सुख के प्रतीक हैं।

२. 'बेसुध' से दुःख का स्थायित्व व्यजित होता है। जैसे कोई व्यक्त सुध-बुध भूलकर सो रहे और उठने का नाम न ले, उसी प्रकार जीवन से दुःख जाने का नाम न ले।

[सूखे पल्लव फिरते हो]

शब्दार्थ—पल्लव = पत्ते । मास्त = वायु ।

अर्थ—जब पतझड़ के सूखे पत्ते (मर्मर ध्वनि में) अपने ह्रास जर्जर जीवन की व्यथा-कथा कह रहे हों तब वसंत की प्रफुल्लित-विकसित करने वाली, जीवनदायिनी सुगंधित समीर तथा हरीतिमा प्रदान करनेवाली करुणा की बरसात भी हो। जीवन वाटिका में दुःख-ह्रास रूपी पतझड़ ही न हो, जिसमें भ्रमर मानो मधु के अभाव में रोते रहें अपितु सुख विकास का वास्तविक वैभव भी हो जिसमें कोकिल की मधुर काकली सुनाई दे सके।

विशेष—१. इन चार पंक्तियों में उस निराश्रित निरुपाय दुखी मानव का चित्र है जो अपनी दुखद स्थिति का बखान करता भटक रहा हो और उसे कोई आसन देकर बैठाये और सहानुभूति दिखाए।

[जब सन्ध्या ने आँसु में]

अर्थ—जब संध्या नायिका अपने ओस अश्रुओं में अंधकार रूपी सुरमे को घोलकर स्याही रूपी रात्रि का निर्माण करे—दुःख निराशा की रात का प्रसार हो—तब सुख का प्रकाश-प्रसार करती हुई अरुण वसना प्राची भी आए। दुःख की घोर रजनी के बाद सुख का प्रकाशमय दिन भी निकले।

विशेष—१. प्रथम दो पंक्तियों में उस नायिका का आभास होता है जिसके विरह-जन्य अश्रुओं में उसका शृंगार धूल रहा हो और

तीसरी-चौथी पंक्ति में उस सौभाग्यवती नायिका का जिसने प्रियागमन पर रोली आदि लगा शृंगार कर लिया हो ।

२. इस प्रकार चित्रों के संकेत देना महादेवी की अपनी विशेषता है ।

३. पंत और प्रसाद भी कहते हैं—

(क) यह सांभ उषा का आंगन
आलिंगन विरह मिलन का

—गुञ्जन

(ख) दुख की पिछली रजनी बीच
विकसता सुख का नवल प्रभात

—कामायनी

[जब पलकें गढ़ लेती हैं ।]

शब्दार्थ—निदाघ = गरमी ।

अर्थ—जब मेरी पलक रूपी सीपियाँ स्वाति नक्षत्र के जल के बिना ही—प्रियतम के न मिलने के कारण अश्रु मोतियों का निर्माण करें, तब हृदय की मधुर कामनाओं के कारण आई हुई मुस्कान सहानुभूति दिखाते हुए उन्हें पोंछ भी ले । दुःख रूपी ग्रीष्म की निर्ममता—निष्ठुरता में सुख शीतलता प्रदायक करुणा रूपी नवीन धन भी हों ।

विशेष—इस कविता के आशय को महादेवी ने “दीपशिखा” में व्यक्त किया है—

“हास का मधु—दूत भेजो

रोष को भ्रमंगिमा पतभार को चाहे सहेजो ।”

—दीपशिखा

: ४१ :

अवतरण—साधिका की आनन्द साधना से वशीभूत हो उस दिव्य-स्वरूप का हृदय भी द्रवित हो उठा, उसने प्रकृति के उल्लासमय वातावरण द्वारा अपनी आगमन-वेला की सूचना दी है ।

[मुस्काता संकेत भरा नभ]

अर्थ—हे सखी आकाश मे जो मादक वातावरण व्याप्त है उससे प्रिय आगमन की सूचना मिल रही है । देखो किसी के वियोग मे रोता हुआ-अश्रु कण के समान फुं हिया गिराता हुआ-बादल भी बिजली रूपी सुनहली बाहुओं में आबद्ध हो हँस देता है । उसके आँसू हँसी मे परिणत हो रहे है । विराट् सागर भी अपने कोमल हृदय की वियोग ज्वाला—बडवाग्नि—को लहरों के तरल सरस मंगीत से शांत कर रहा है । दिन और रात उल्लासमग्न होकर एक दूसरे को मधु-भरे सोने और चाँदी के प्याले पिला रहे है । मानो इसी रूप में मदिरा गोष्ठी कर रहे है । यह उत्सव कदाचित् प्रियागमन की सूचना दे रहा है ।

विशेष—१. दिन की विभूति है प्रकाश स्वरूप सोना और रात्रि की ज्योत्स्ना स्वरूप चाँदी । यह कनक और रजत अर्थ को ऐसा अलंकृत कर रहे है जो सहृदय-संवेद्य है ।

२. 'स्वर्ण पाश' में पदगत, 'रोता' मे विशेषणगत, 'हँस देना' में क्रियागत और 'सागर ज्वाला गीतों से नहलाता' मे वाक्यगत लक्षणा का सौन्दर्य है ।

शब्दार्थ—हिम कण=ओस बिन्दु । सुरधनु=इन्द्रधनुष ।

अर्थ—इस उत्सव में तारक-परियाँ नृत्य कर रही हैं और

नृत्यु-बेसुध इन परियों की मंजीरों से (ओस के रूप में) मोती बिखर रहे हैं । मलयानिल सौरभ भरकर ओस-सिक्त मार्ग से संचरण कर रहा है मानो वह अंजलि भर का पराग विकीर्ण कर रहा है । जिस प्रकार दिग्भ्रान्त पथिक घूम फिरकर उसी रास्ते पर लौट आता है उसी प्रकार जीवन के क्षण इस मादक वेला में विमुग्ध तथा अभिभूत होकर लौट रहे हैं—ऐसा प्रतीत होता है मानो समय की प्रगति रुक गई है, समय बीत ही नहीं रहा ।

विशेष—प्रसाद की कामायनी का रात्रि का निम्न मादक चित्र भी मनोरम है—

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे
छूट पड़ा तेरा अंचल
देख बिखरती हूँ मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल ।

[सघन वेदन। के तम में]

शब्दार्थ—अधर = ओष्ठ, आकाश ।

अर्थ—जैसे अंधकार में बिजली की दमक सोने के कण से बिखरा देती है, इसी प्रकार मेरे विषादावृत मानस में प्रियतम की सुधि, बिजली के समान कौंधकर, कुछ क्षण के लिए सुख का स्वर्णिम आलोक भर देती है, इन अश्रु अथवा जलकण से सिक्त ओष्ठ रूपी आकाश पर मेरी निश्वासे स्मित रूपा नवीन इन्द्रधनुष की रचना कर देती है—रुदन का स्थान हास्य ले लेता है । जैसे प्रहरी—कोष की रक्षा करते हैं और कोष से धन बाहर नहीं जाने देते उसी प्रकार आँसुओं का कोष, मेरी पुतलियों पर नव जागृत नवीन मधुर स्वप्न पहरा सा दे रहे हैं और आँसुओं को नहीं निकलने दे रहे—निराशा के स्थान पर सुखद आशाओं के कारण आँसू निकलने बंद हो गए हैं, इस प्रकार आज प्रियागमन सूचक संकेत मिल रहे हैं ।

विशेष—‘अधरो’ में श्लेष मूलक रूपक है। ‘भीगे’ शब्द भी सार्थक है क्योंकि एक ओर निरंतर वियोगाश्रुओं का संकेत मिलता है दूसरी ओर गीले वातावरण का। इन्द्रधनुष जलकण युक्त वायुमण्डल में ही हो सकता है।

महादेवी भाषा की रूप-व्यापार योजना में सिद्ध है। ‘सोने के कण’ और ‘सुरधनु’ जहाँ चित्रात्मकता में साहायक है वहाँ असीम वैभव की व्यंजना भी कर रहे हैं।

[नयन श्रवणमय श्रवण नयनमय]

अर्थ—प्रियागमन के शुभ शकुन देखकर समस्त इन्द्रियाँ प्रियतम की ओर ही केन्द्रित हो रही हैं—नेत्रों में देखने के अतिरिक्त सुनने की शक्ति भी आ गई है, तनिक-सी आहट पाकर नेत्र उसी ओर देखने लग जाते हैं। श्रवणों में सुनने की शक्ति के अतिरिक्त देखने की शक्ति भी आ गई है, तनिक ध्वनि सुनकर उस ओर ऐसे उन्मुख होते हैं मानो किसी को देख लेना चाहते हों। सभी इन्द्रियों में पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो गया है। आज केवल मेरा हृदय आशामयी भावनाओं से आन्दोलित नहीं हो रहा अपितु मेरा प्रत्येक रोम हृदयमय हो रहा है—रोम-रोम से हर्ष की अभिव्यक्ति हो रही है। मैं रोमाचित हो उठी हूँ। इसीलिए मेरे प्राणों के छाले पुलको में भर कर फूल बन गए हैं—आज प्राणों की पीडा अनायास ही उल्लास में परिवर्तित-परिणत हो गई है।

विशेष—१. सुमित्रानन्दन पन्त ने ‘स्नेह’ शीर्षक कविता में वृत्तियों की एकाग्रवस्था में इन्द्रियों की एकोन्मुख दशा का अद्भुत परिचय दिया है—

गिरा हो जाती है सनयन
नयन करते नीरव भाषण
श्रवण तक आ जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण

२. छायावाद में प्रकृति का चित्रण प्रायः कवि की मनोदशा के अनुकूल हुआ है । महादेवी जी ने लिखा भी है—

फैलते हैं सांध्य नभ में भाव ही मेरे रंगीले

तिमिर की दीपावली है रोम मेरे पुलक गीले

इस कविता में भी कवयित्री को प्रकृति में अपनी आशामयी भावनाओं की झलक ही दिखाई देती है । वैसे भी आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार समस्त जगत् उस अलौकिक ब्रह्म की छाया है अतएव जगत् उस निर्माता की ओर इंगित करता है ।

: ४२ :

अवतरण—वास्तविक आनन्द स्वर्ग अथवा मोक्ष में न होकर प्रियतम के वियोग में ही है। साधक और साध्य की स्थिति में विषमता है। एक असीम है दूसरा ससीम। एक सतत सुखमय है दूसरा निरन्तर दुःखमय। फिर भी साधिका को अपनी सीमित दुःखमयी स्थिति की ही स्पृहा है, क्योंकि चिरन्तन दुःख का इष्ट के साथ सम्बन्ध है।

[भरते नित लोचन मेरे हों]

अर्थ—कवयित्री कामना करती है कि मेरे मेघस्वरूप नयन सदैव बरसते रहें। युगयुगान्तर से मोती-सी उज्ज्वल आभा विकीर्ण करने वाली चिर वैभवपूर्ण तारों की पंक्ति उस प्रियतम की हो और क्षणिक आभा तथा सौन्दर्य दिखाकर विलीन हो जाने वाली बिजली के कंकण ही मेरा शृंगार करे।

विशेष—कवयित्री को अपने बनते और मिटते, नश्वर लघु वैभव में ही सन्तोष है।

[ले ले तरल रजत औँ' कंचन]

अर्थ—रात-दिन अपनी चन्द्रिका-चाँदी और प्रकाश-स्वर्ण से जो नभ के आँगन को लीपकर सुशोभित कर रहे हों, वह चिर ऐश्वर्यपूर्ण नभ प्रियतम का और नित्य घिर-घिरकर झरने वाले और इसीलिए नवीन परन्तु नश्वर घन मेरे हो।

विशेष—नीरजा की ही एक अन्य कविता में कवयित्री ने यही कामना की है—

“घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय”

[पद्मराग-कलियों से विकसित]

शब्दार्थ—पद्मराग=एक प्रसिद्ध रत्न । नीलम=नीले रंग का रत्न ।

अर्थ—पद्मराग की कलियों से विकसित तथा नीलम के भ्रमरों से गुञ्जरित, सुगन्धित तथा चिर वासतिक वैभव से युक्त आनन्ददायक स्वर्ग वाटिका उनकी हो और क्षणिक किन्तु सुन्दर ओस बिन्दुओं के भार से झुके हुए तृण आदि मेरे हों ।

विशेष—१. यहाँ नन्दन की तुलना तृण (तिनके) से की गई है, इससे प्रियतम का वैभव और भी बढ़ जाता है ।

२. पद्मराग और नीलम शब्दों का प्रयोग भी इन्द्र वाटिका के अतुल वैभव को दिखाने के लिए हुआ है ।

[तम-सा नीरव नभ- सा विस्तृत]

अर्थ—अन्धकार-सा शान्त और आकाश के सदृश विशाल, हास-रुदन (सुख दुःख) से रहित निस्पन्द सूनापन उनका हो और सुख-दुःख से स्पन्दित जीवन मेरा हो ।

विशेष—‘तम सा नीरव’ और ‘नभ सा विस्तृत’ में अमूर्त विधान है ।

[जिसमें कसक न सुधि का बंशान]

अर्थ—मधुर पीड़ा और सुखद स्मृतियों की कचोट ही प्रिय मिलन के साधन है और ये रसमयी मुक्ति और निर्वाण में सम्भव नहीं —अतएव ऐसी मुक्ति प्रियतम के पास ही रहे और जीवन के सैकड़ों बन्धन मेरे हों ।

विशेष—महादेवी ने मुक्ति की आकांक्षा की है परन्तु सासारिक

बन्धनों के रहते हुए ही । क्योंकि बन्धन ही तो प्रिय मिलन का साधन हैं । पन्त ने भी इसी प्रकार कहा है—

तेरी मधुर मुबित ही बन्धन

अतः उनको साध्य से भी साधन अधिक प्रिय है ।

यथा—

पीड़ा में ढूँढा तुमको,

तुम में ढूँढूंगी पीड़ा ।

[बुद बुद में आवर्त्त अपरिमित]

अर्थ—एक एक बुलबुले में अनेकों भँवर उठते-गिरते हैं । कण में, अणु परमाणुओं के संघर्ष से परिवर्तन-प्रक्रिया गतिशील रहती है और इनसे ही जो सदैव सृष्टि और प्रलय होती है वह सब प्रियतम को मुबारक हो, हों; इस सृष्टि प्रलयमय क्रम में सहयोग देने वाले नश्वर उपकरण मेरे ही हों ।

[सस्मित पुलकित नित]

शब्दार्थ—परिमलमय = सौरभमय । अग = जड़ ।

अर्थ—सुख सौरभ-मय तथा शतशः रंगीन कामनाओं से युक्त जड़-चेतनामय संसार का अणुपरमाणु उनका हो—इसकी मुझे आकाक्षा नहीं । मुझे तो पलभर के लिये केवल उस निष्ठुर प्रियतम की अपेक्षा है ।

विशेष—‘झरतेनित लोचन हो’ इस पंक्तिका अर्थ है कि कवयित्री को विरह काम्य है क्योंकि इसी से प्रियतम का निरन्तर आभास होता रहता है और कवयित्री की पृथक् स्थिति भी बनी रहती है ।

अवतरण—प्रेम की अतिशयता में वियोगिनो नायिका की अनु-भूति कोमलतम हो प्रकृति से अपना एकात्म्य स्थापित करती है और मेघो से अपने प्रियतम का सन्देश पाती है ।

[लाए कौन संदेश पुलकों के सावन ।]

शब्दार्थ—निस्पन्द=भावशून्य ।

अर्थ—वर्षा के ये नये मेघ ऐसा कौन सा सन्देश ले आए हैं कि जिनको देखकर समस्त प्रकृति का रूप ही जैसे बदल गया हो । ऐसे उल्लासमय, प्रेरणाप्रद, जीवनदायक सन्देश को लेकर आए हैं । देखो न जो आकाश गर्वित था—गर्व के कारण पृथ्वी से सम्पर्क स्थापित नहीं करता था तथा अपने भाल (मस्तक) को ऊँचा किएथा—वह भी—मेघो के द्वारा पृथ्वी पर, मानो उससे सम्पृक्त होने के लिए—झुक आया है । आकाश रूपी नायक के भावशून्य-निष्ठुर हृदय में शत-शत स्पन्दन रूपी मेघ उमड़ उठे हैं । आकाश का रूप परिवर्तित हो गया और वह मेघो के रूप में सैकड़ों भावों से स्पन्दित, आन्दोलित होकर पृथ्वी नायिका की ओर झुक आया है ।

विशेष—पुलकों के सावन उमड़ने का अर्थ है शत-शत मेघों का उमड़ना । यहाँ पर अश्व मेघ का प्रयोग न होकर अशी (सावन) का प्रयोग हुआ है । इससे सौंदर्य और प्रभाव बढ़ गया है । यह अंग्रेजी का (Metonymy) अलंकार है । भारतीय काव्य-शास्त्र के अनुसार इसमें लक्षणा है । पुलकों के सावन में व्यस्त रूपक है । वंशे आकाश का मानवीकरण किया गया है—ऐसा प्रतीत होता है मानो

कोई गर्वीला नायक अपनी प्रिया को रिझाने की लिए गर्व छोड़कर उसे मना रहा है ।

[चौकी निद्रित कंकण ।]

अर्थ—निद्रा में अलसाती हुई रजनी-नायिका, इन बादलों के संदेश के कारण, मधुर स्वप्न से रोमांचित-कंटकित हो चौंक उठी और सात्त्विक कम्प के कारण करो के बिजली (जो कि मेघों में कौंध रही है) रूपी कंकण भी हिल उठे ।

विशेष—काली रजनी में बिजली की कौंध अकस्मात् रात्रि की निद्रा में चौक उठने से कितना साम्य रखती है ! बिजली की चमक को स्वर्ण-कंकण का रूप देना कितना चित्रात्मक तथा ध्वन्यात्मक है ।

[दिशि का चंचल हीरक के कण ।]

अर्थ—रात्रि की दिशा सुन्दरी की देह पर पड़ा हुआ परिमल-दुकूल अनायास ही चंचल हो उठा क्योंकि किसी आंतरिक प्रेरणावश शरीर रोमांचित हो गया, मानों वह चौंक उठी हो और झटका लगनेसे (वातावरण में घूमते हुए) जुगनू रूपी हारों का हार टूटकर बिखर गया हो ।

विशेष—परिमल दुकूल यही है कि सारी दिशाओं में एक सौरभ का वितान तन गया ।

जुगनू की ज्योति कितनी क्षणिक होती है किंतु छिन्नहार के लघु हीरक-कणों का उपमान उनकी ज्योति-सुषमा का वर्धन कर स्थायित्व प्रदान कर देता है । छिन्न हार के हीरक कण जैसे बिखर जाते हैं वैसे ही जुगनू भी दिशा के अंचल में जगमगाने लगे । यहाँ उपमान अत्यन्त भाव-वर्धक सिद्ध हुआ है ।

[जड़ जग अंकुर बन बन ।]

अर्थ—ये धन प्रियतम का ऐसा मधुर संदेश लाए कि विरह-जर्जर जड़वत् प्रकृति-नायिका का हृदय सहसा स्पन्दित हो उठा, उसमें

चेतना आ गई और उसके स्थिर पदार्थ रूपी अंग रोमांच के कारण काँप उठे। पृथ्वी नायिका की शत-शत मधुर आकांक्षाएँ, जो उसके अवचेतन मन में प्रसुप्त अवस्था में संचित थी, (अर्थात् जो बीज पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए थे) कोमलतम अंकुरों के रूप में फूट पड़ी।

विशेष—मनोविज्ञान (psychology) के अनुसार हमारे अवचेतन में सुप्त इच्छाएँ किसी बाह्य उत्तेजना से सहसा जाग उठती हैं। यहाँ मेघों ने ऐसे ही वातावरण का सृजन किया है। इस चित्र की सूक्ष्मता तथा गहराई प्रशंसनीय है।

[रोया चातक दुहराया नर्तन।]

अर्थ—मेघों से संकेत पाकर चातक किसी पूर्व स्मृति के दर्शन से रो उठा और कोकिल का कण्ठ भी मानो सात्विक के कारण रुँध गया। वर्षा की झड़ियों की ध्वनि से उन्हीं से ताल मिलाती हुई मानो मयूरी भी जन्मत्त होकर नाच उठी।

विशेष—कवि समय अथवा परम्परा के अनुसार—जो प्रकृतियाँ असत्य होने पर भी प्रसिद्ध हैं—कोकिल वर्षा ऋतु में नहीं गाती।

[सुख दुःख विस्मित लोचन।]

अर्थ—बादलों के गम्भीर घोष से, संदेश से समस्त प्रकृति ही प्रभावित नहीं हुई मेरा उर भी नाना प्रकार की सुख-दुःखमयी स्मृतियों से आँदोलित हो उठा और मोती के समान तरल-शुभ्र अश्रुओं से विस्मित लोचन भर गए।

विशेष—लोचन विस्मित इसलिए कहे गए हैं क्योंकि यह सब कुछ किसी अज्ञात कारण से, अनायास हो रहा है।

: ४४ :

अवतरण—इस कविता में संसार की, आध्यात्मिक साधना में लीन साधक के प्रति उक्ति है। संसार मानों चेतावनी दे रहा है कि दुःख के प्रति यह अनुराग असंगत तथा अनुचित है।

[कहता जग दुख को प्यार न कर।]

शब्दार्थ—अनबीधे मोती = आँसू।

अर्थ—दुःख से ममता रखने वाले प्राणी को—मानो कवयित्री को ही—संसार कहता है कि तू दुःख से प्यार मत कर। दृग रूपी सीपी के ये अश्रु-मोती विशेष प्रकार के हैं। सामान्य मोती विध सकते हैं पर ये नहीं। और जब विध ही नहीं सकते तो उन्हें गूँथा भी नहीं जा सकता। ये तो बुदबुद के समान क्षणिक अस्तित्व वाले निरन्तर बनते-मिटते रहते हैं अतएव इनसे किसी प्रकार का हार गूँथना व्यर्थ सिद्ध होगा। भाव यह कि तुम्हारी यह कल्पना व्यर्थ है कि तुम दुख के द्वारा कोई सुन्दर अथवा मधुर उपलब्धि कर सकोगे।

[किसने निज को खोकर पाया।]

अर्थ—अपने अस्तित्व को मिटाकर कुछ पाने में कोई लाभ नहीं। कोई भी उस छाया—अज्ञात इष्ट—को सिद्ध नहीं कर सका, क्योंकि वह मात्र छाया है, एक छलना अथवा धोखा है—वास्तविक नहीं। इस प्रकार साधक भी भ्रम है (क्योंकि उसे स्वयं को भी मिटाना पड़ता है) और प्रियतम (इष्ट) भी भ्रम (अन्धकार) है। ऐसे शून्य में किसी को पाने का प्रयास अथवा साधना भी निष्फल है, व्यर्थ है।

* [यह मधुर कसक तेरे उर की ।]

शब्दार्थ—स्मित=हँसी ।

अर्थ—संसार साधक को कहता है कि यह तेरे हृदय की इस मधुर कसक-ब्रह्म को पाने की आह्लादकारी आध्यात्मिक पीड़ा—का कोई मूल्य नहीं है । क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया है जब इष्ट ही भूम है तो यह भी निष्प्रयोजन है, इसलिए मेरी हँसी—भौतिक सुख वैभव—से इस को बदल ले जो वास्तविक है, छलना नहीं है । व्यर्थ का व्यापार करने से कोई लाभ नहीं ।

विशेष—“चल व्यापार न कर”—साधक कम मूल्य वाले भोगों का तिरस्कार करके उच्च मूल्य वाले स्थायी आध्यात्मिक आनन्द को पाने का प्रयत्न करता है, मानो एक प्रकार का व्यापार करता है ।

[दर्पणभय है अणु-अणु मेरा ।]

अर्थ—संसार एक दर्पण के समान है जिसमें मानव आत्मा प्रतिबिम्बित होती है । जो सम्बन्ध दर्पण और बिम्ब का है वही संसार और मानवात्मा का है । अर्थात् एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं, दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है । संसार में जो दृश्य व्यापार हैं वे मानवात्मा के प्रतिबिम्ब मात्र हैं । अतएव अपनी ही प्रतिच्छाया से अनुनय-मनुहार करना, यह अज्ञान है ।

[सुख मधु में क्या दुख का मिश्रण ।]

अर्थ—सुखामृत में दुःख के विष का मेल और दुःख के कड़वे विष में सुख के मिश्री कणों का मेल हानिप्रद एवं व्यर्थ है । सुख, सुख ही है और दुःख, दुःख ही—दोनों का कोई सम्बन्ध नहीं । तुझे कलियों के देश जाना है । तेरे जीवन का इष्ट आनन्द है जो दुख से बिल्कुल विपरीत है, तब कष्ट-कण्टको को अपनाना निष्प्रयोजन है । जैसा देश वैसा वेष' किन्तु तुम इसके विपरीत चल रहे हो ।

विशेष—इस समस्त कविता का सार यह है कि सांसारिक मायाजाल अनेक प्रकार से साधक को साधनापथ से विमुख करते हैं ।

अवतरण—संयोगिनी नायिका की उषा के प्रति उक्ति है । ब्रह्म के साथ रात्रि की निद्रावस्था में अनुभूति की तन्मय दशा ही मिलना सम्भव है, व्यावहारिक ज्ञान-जन्य अहं की जागृति (जागृतावस्था) में नहीं ।

[मत अरुण घूँघट अनमोल री ।]

अर्थ—हे उषे ! (यहाँ पर उषा की कल्पना अवगुण्ठनवती सुन्दरी के रूप में की गई है ।) तू अपने लाल अवगुण्ठन को मत हटा । ये तारा रूपी फूल जो मूल बिना ही इस आकाश रूपी बेल पर खिले हुए हैं, और जिन्होंने ओस के रूप में आँसू बहाए हैं किन्तु (आकाश कुसम होने के कारण) विचित्रता यही है कि फिर भी हँसते से जान पड़ते हैं—इनको तू (उषा-सुन्दरी) मत बटोर, ये अनमोल हैं । अर्थात् उषा अभी बनी रहे जिससे प्रातःकाल न हो और संयोगिनी नायिका का संयोग समय बीतने न पाये ।

विशेष—यहाँ तारों पर सुमन का आरोप है और इसीलिए 'वृन्तबिन' का प्रयोग है । अतः रूपक और विभावना अलंकार हैं । किन्तु चमत्कार रूपक में है । 'अश्रु बरसाते हँसे' में विरोधाभास है ।

[तरल सोने से बोल री]

शब्दार्थ—अलकें = बाल ।

अर्थ—सोने के पानी से (सुनहरी किरणों से कलित) धुले तथा पद्मरागों (तारों) से सुसज्जित तेरे बाल (जिनको सँवारने में इतना

प्रयत्न किया गया है) उलझ जायेंगे यदि तू घूँघट हटाकर प्रातः कालीन वायुपूर्ण वातावरण में विचरण करने लगेगी ।

[निशि गई मोल री।]

अर्थ—रात्रि-सुन्दरी ओस के रूप में फूलों के हाट में मोती सजा कर गई है ये अत्यन्त सुकुमार हैं और यदि तूने इनसे मोल-तोल किया तो ये लज्जा के कारण ही गल जायेंगे—तेरे आगमन से, किरणों के स्पर्श से ही समाप्त हो जायेंगे ।

[स्वर्ण कुमकुम लोल री]

अर्थ—तुम्हारी यह मेघ रूपी चूनरी सुनहरी और केसरी रंग में बड़े प्रयास से रंगी गई है । अब तू प्रकाश-सागर की चंचल लहरों में मत चल अन्यथा इसके रंग उतर जायेंगे ।

[चाँदनी की सित घोल री]

शब्दार्थ—सित = श्वेत । सुधाकर = चन्द्रमा ।

अर्थ—चन्द्रमा स्वच्छ चाँदनी रूपी अमृत को कली की प्यालियों में भर भरकर रात्रि भर संसार को वितरित करता रहा है । अब हे उषे तू अपनी किरणों से लाल शराब इन प्यालियों में मत घोल ।

विशेष—१. अमृत का रंग श्वेत माना गया है और शराब का लाल, इसलिए चाँदनी की अमृत से तथा उषा की लालिमा की शराब से उपमा दी गई है । रसलीन का यह दोहा प्रसिद्ध है—

अमी हलाहल मबभरे, स्वेत स्याम रतनार ।

२. सुधाकर शब्द साभिप्राय है, 'चन्द्रमा' से यह काम न चलता । सुधाकर ही सुधा (अमृत) बाँट सकता है । एक कवि से यह अपेक्षित है कि समानार्थक शब्दों में भी उस शब्द का चुनाव करे जिससे रूप, गुण अथवा क्रिया का बोध हो । महादेवी ने यही किया है ।

[पलक सीपें तोल री।]

अर्थ—पलक रूपी सीपियाँ तथा नीद रूपी जल मिलकर स्वप्न रूपी मोतियों का सृजन कर रहे हैं—निद्रामग्न संसार अनेक मधुर स्वप्न देख रहा है। उषे ! तू इन्हें अपनी मुस्कराहट से खरीदने का प्रयास मत कर क्योंकि ये बिकने के लिए नहीं हैं—तेरी प्रकाशमयी किरणों से इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

[खेल सुख दुःख बोल री]

अर्थ—यह संसार रूपी चंचल शिशु सुख दुःख के खेल खेलता हुआ अचानक सो गया है अतएव हे उषे ! तू पक्षियों के कलरव-रूप में कोलाहल न करना, नहीं तो यह शिशु कच्ची नीद से जागकर मचलने लगेगा।

विशेष—इस कविता की तुलना 'सांध्यगीत' की कविता 'ओ अरुण वसना' से कीजिए। इससे इस कविता का आध्यात्मिक अर्थ भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। यथा—

ओ अरुण वसना !

... ..

है युगों की साधना से

प्राण का क्रन्दन सुलाया;

भ्राज लघु जीवन किसी

निःसीम प्रियतम में समाया !

राग छलकाती हुई तू आज इस पथ में न हँसना !

: ४६ :

अवतरण—मानव चेतना के संस्पर्श से ही प्रकृति और पुरुष (निर्गुण ब्रह्म) की महत्ता-महिमा है ।

[जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर]

शब्दार्थ— रसाल=आम ।

अर्थ— यह संसार करुण है और मैं मधुर हूँ । दोनों—करुण और मधुर-के सुसंयोग ही से ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है कि सृष्टि का प्रत्येक रजकण भी करुण और मधुर हो जाता है और इसी से सुन्दर भी ।

यह संसार पतझड़ के आम्रवृक्ष के समान है जिसके पत्ते झड़ गए हैं और जो निशब्द है (क्योंकि कोकिल की काकली पतझड़ में नहीं सुनाई देती) । किन्तु जैसे कोयल की मधुर ध्वनि के श्रवण से—मानों वसंता-गमन की सूचना पाकर— पतझड़ के ह्रास जर्जर रसाल पर प्रतिक्षण सुन्दर मंजरिया फूट उठती है उसी प्रकार यह संसार रूपी आम्रवृक्ष भी मानव-चेतना के संस्पर्श से अनेक प्रकार की असंख्य सुख दुःखात्मक मंजरियों में प्रस्फुटित हो उठता है ।

विशेष--जग अपने आप में नीरव और जड़ है । मानव चेतना के कारण ही उसमें असंख्य सुख-दुःखमय भाव उत्पन्न हुए । मानव हृदय ही समस्त प्रकृति को सौन्दर्य प्रदान करनेवाला है ।

[विस्मृति-शशि के हिमकिरण-बाण]

शब्दार्थ— हिमकिरण बाण=शीतल किरणें । रश्मियान=सूर्य ।

अर्थ—वसंतागमन से पूर्व, शिशिर में जिस प्रकार चन्द्रमा

की हिमवत शीतल किरणें, सरोवर के जल को जमा देती हैं—उसे निस्तरंग अथवा निर्जीव बना देती है उसी प्रकार विस्मृति (अज्ञान) के कारण यह जग-जीवन (भौतिक जीवन या प्रकृति) भी स्पंदनहीन था। पुनः जिस प्रकार वसंतकालीन सूर्य (जिसका तेज धीरे-धीरे बढ़ रहा होता है) के आतप और मलयवायु से सरोवर का जल पिघलने लगता है, उस में चेतना आ जाती है उसी प्रकार मेरे आगमन से प्रकृति की अज्ञानमयी जड़ता में भी सुख-सौन्दर्य की चहल-पहल उत्पन्न हो गई।

[यह नियति-तिमिर-सागर अपार]

शब्दार्थ—नियति=प्रकृति की नियामिका शक्ति—वह शक्ति जिससे प्रकृति की समस्त क्रियाएँ नियमपूर्वक चलती हैं।

अर्थ—यह नियति द्वारा संचालित प्राकृतिक संसार अंधकार के महासमुद्र के समान था जिसमें असंख्य ज्योतिषिड अपने आप बुझते रहते थे। किन्तु सूर्य की किरण सम मानव चेतना के संस्पर्श से यह अनेक रूप-रंगों में प्रकाशित हो उठा।

[युग से थी प्रिय की मूक बीन]

अर्थ—केवल इस प्रकृति में ही नहीं, इस परम पुरुष की अनादि-काल से सुप्त मौन बीन के ढीले तारों में भी फिर से झंकार जागृत कर दी जिससे समस्त शून्यमय वातावरण अनेक सुख-दुःखरूपी झंकारों से गुंजरित हो उठा।

विशेष—नियति-शासित प्रकृति तो जड़ थी ही, वह परमपुरुष भी निर्विकार था। ब्रह्म अपने तत्त्वरूप में निर्गुण है। मानव चेतना ने ही निर्गुण ब्रह्म में भी चेतना का आरोप किया।

: ४७ :

अवतरण—इस क्षणिक जीवन में प्रिय के नाम की रटना ही चरम सत्य है ।

[प्राणपिक प्रिय-नाम रे कह !]

अर्थ—हे मेरे प्राणरूपी पिक ! तू उसी प्रियतम के नाम की रटना कर (जिसका विरह भी इतना मधुर है) । मैंने अपने लघु-ससीम व्यक्तित्व को उस प्रिय के विराट्-असीम व्यक्तित्व में विलीन कर दिया है पर मेरे आत्मसमर्पण से वह भी निरपेक्ष नहीं रह सका और मेरे छोटे-से हृदय में बँध गया है । इस प्रकार अब विरह-जन्य दुःख की रजनी चिर मिलन-जन्य सुख के प्रभात में परिणत हो गई है ।

[दुःख अतिथि का धो चरण तल]

शब्दार्थ—रसमय = सरस ।

अर्थ—मेरे नयनों से जो निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे हैं वे सांसारिक क्रन्दन (पीड़ा), अभाव, अथवा कुंठा का परिणाम नहीं । ये अश्रु नितान्त सार्थक हैं क्योंकि दुःख रूपी अतिथि का पद-प्रक्षालन इन्हीं से होता है । और जिस प्रकार वर्षा ऋतु के बादल, संसार को तापित-शापित देख और इसी से करुणा में भरकर बरस पड़ते हैं और विश्व को सरस अथवा हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार इन आँसुओं से भी विश्व सरस हो रहा है—संवेदनशीलता अथवा करुणा विश्व के लिए मंगल सिद्ध हो रही है ।

विशेष—‘दुःख अतिथि..... तल’ में दुःख को महत्त्व दिया गया है मानो आतिथेय शत-शत भावों से गद्गद् होकर महान अतिथि के

चरण धोता है । संसार में दुःख का मूल्य है क्योंकि इसी से सहानुभूति और समता की भावनाएँ परिपुष्ट होती हैं—विश्व के साथ रागात्मक सम्बंध स्थापित होता है । मैथिलीशरण गुप्त ने भी कहा है—

मुझे दुःख से है ममता,
बढ़ती है जिससे सहानुभूति समता ।

महादेवी पर बौद्ध-दर्शन का प्रभाव है जिसमे दुःख के इसी स्वरूप, करुणा, को विशेष महत्व दिया गया है ।

[ले गया जिसको लुभा दिन ।]

अर्थ—सन्ध्या के समय, दिन जाते-जाते मेरी निद्रा को भी साथ ले गया । प्रियतम के विरह में पूरी नीद न आने से, नाना प्रकार के सुखद स्वप्नों का आना-जाना रहता है । मानो प्रियतम के विरह या प्रेम के कारण यह नीद भी जागृतिमय बन गई है । इसमे वास्तविक जागृति से भी अधिक उथल-पुथल है ।

विशेष—१. प्रियतम का विरह मधुर है और इसीलिए विरह-जन्म अश्रु तथा स्वप्न भी मधुर है—निद्रा का अभाव कदापि खटकता नहीं ।

२. तंद्रा में ही स्वप्न आया करते हैं, गहरी निद्रा में नहीं ।

[एक प्रिय-दृग-श्यामता-सा ।]

अर्थ—दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता है—यह संसार का अटल-अटूट नियम है । किन्तु मैं इसे केवल एक नियम अथवा समय का गतिक्रम ही नहीं मानती, उस प्रियतम का सुन्दर सुखद उपहार मानती हूँ । यह श्यामल रात्रि प्रिय के नयनों की श्यामलता अथवा नीलिमा है और दिन मानो उसकी मुस्कान का प्रकाश है । तात्पर्य यह कि किसी समय को रात कहकर उसकी उपेक्षा न करनी

चाहिए और न दिन कह कर ही । क्योंकि इन दोनों में भी तो प्रिय का ही आभास है । यही अवस्था दुःख-सुख की है ।

विशेष—अलंकारों का सहज चमत्कार प्रशंसनीय है । 'सा' उपमा का बोधक है—अमूर्त का अमूर्त विधान है । क्रम अलंकार भी है । जब दिन-रात को प्रिय का उपहार कहते हैं तो अपह्नुति भी झलक उठती है ।

[श्वास से स्पंदन रहे भर ।]

शब्दार्थ—स्पंदन = धड़कन ।

अर्थ—मेरे प्राणों की धड़कन श्वासों द्वारा झर रही है—धीरे-धीरे शून्य में विलीन होती जा रही है तथा मेरे प्राणों का रस (अश्रु) आँखों से निरन्तर बह रहा है । अतएव प्रियतम के विरह से जीवन का यह क्षय अभिशाप नहीं, वरदान स्वरूप है । कारण मैं इसीसे निर्वाण की ओर बढ़ रही हूँ, यह बाह्य दृष्टिगोचर विनाश वस्तुतः निर्वाण का सोपान है ।

[चल क्षणों का क्षणिक संचय ।]

शब्दार्थ—चल = चंचल, अस्थायी । बालुका = रेत ।

अर्थ—अस्थायी क्षणों के संचय का नाम ही जीवन है । यह जीवन इतना ही क्षणिक है जितना रेत में बूँद का अस्तित्व जो क्षण में विलीन होने वाला होता है । अतएव प्रियतम ने जीवन का दान क्या दिया है एक निर्मम विनोद मात्र किया है । इसकी कोई सार्थकता नहीं ।

विशेष—१. सामान्यतः जिसे जीवन समझा जाता है—साधना विहीन जीवन—उसमें कोई सार नहीं । विरह के उपकरण ही चरम सत्य है, अतएव कवयित्री अथवा साधिका अपने प्राणपिक से यही कहती है कि प्रिय के नाम की रटना कर ।

समस्त कविता में अपह्नुति अलंकार का सहज सौंदर्य है । इस कविता में आत्म संबोधन है जो लोक वार्ताओं से प्रभावित है । लोक गीत अनेक प्रकार के पक्षियों को सम्बोधित करके लिखे गए हैं ।

किसी विरहणी ने भी 'कागा' से कहा था—

कागा सब तन खाइयो, चुन चुन खइयो मांस ,
दो नैना मत खाइयो, पिया मिलन की आस ।

जायसी की नागमती ने भी तोते से अपनी व्यथा-कथा को कहा था ।

: ४८ :

अवतरण—कवयित्री प्रियतम का दुःख रूप में स्वागत करती है, अर्थात् यहाँ साधन ही साध्य बन गया है। दुख ही सारे संसार के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कराता है। आत्मा का विस्तार करते हुए संसार के साथ एक रूप हो जाना ही तो ब्रह्म को पाना है। कवयित्री ऐसा मोक्ष नहीं चाहती जो संसार-विमुख करे। कवयित्री ने रश्मि में भी यही भाव व्यक्त किया है—

‘तुम मानस में बस जाओ,
छिप दुख को अवगुंठन से,
मैं तुम्हें खोजने के मिस,
परिचित हो लूँ कण कण से।’

[तुम दुख बन इस पथ से आना !]

अर्थ—हे प्रियतम मैं तुम्हें दुख के रूप में प्राप्त करूँ, जिस प्रकार काँटों से आवेष्टित होने पर भी गुलाब का विकास होता है उसी प्रकार विघ्नबाधाओं के बीच से ही मेरा विकास हो—मैं बाधाओं का सहज स्वागत कर सकूँ क्योंकि कटकाकीर्ण होने पर ही जीवन-पाटल का उचित विकास सम्भव है।

पुष्प की चरम सार्थकता हार में गुथने में ही है, पर जिस पुष्प का हृदय न बिधा हो वह हार कैसे बन सकता है ? उसी प्रकार जो दुख से अपरिचित है उसके लिये जीवन की सिद्धि दुराशामात्र है।

[वह सौरभ हूँ मैं जो उड़कर,]

अर्थ—हे प्रिय! मेरा अस्तित्व उस सौरभ के समान है, जो कलिका

से उद्भूत होता है, किन्तु जब वह एक बार कलिका की क्रीड़ा छोड़ कर उड़ जाता है तो पुनः वापस न लौट वातावरण में ही विलीन हो जाता है । फिर भी कलिका का अस्तित्व उसके लिए सर्वथा अनिवार्य है क्योंकि संसार अमूर्त सौरभ को मूर्त कलिका के कारण ही जान सकता है ।

यह मानव-चेतना भी सौरभवत है। जब एक बार शरीर से इसका सम्बन्ध विच्छिन्न हुआ, तब उसी शरीर में लौट कर नहीं आती । शरीर आत्मा के अभावमें निर्जीव हो जाता है, यह ठीक है, किन्तु उस आत्मा की अभिव्यक्ति तो शरीर के माध्यम से ही होती है—इस मानव जीवन का भी अपना महत्व है ।

[नित जलता रहने दो तिल-तिल,]

शब्दार्थ—विभूत=राख

अर्थ—मेरी कामना यह है कि मेरा हृदय निरन्तर दुखाग्नि में जलता रहे, और जब राख हो जाए तो उसमें अपने चरणचिन्हों को अंकित कर जाना ।

विशेष—दुख ने जलने से मन पवित्र और उन्नत होता है । पंत ने गुञ्जन में आत्मा के लिये लिखा है—

सोने सा उज्ज्वल बनने,
तपता नित प्राणों का धन,
दुःख के तम को खा-खा कर,
भरती प्रकाश से वह मन ।”

और ब्रह्म को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सभी मलिनता भस्म हो जाए, पवित्र हुए बिना उसे पाना न पाने के बराबर है । तुलसीदास ने विनयपत्रिका में यही भावना व्यक्त की है—

“तुम अपनायो जानि ह जब मन फिरि परि है”

[वर देते हो तो कर दो ना]

अर्थ—हे प्रिय यदि तुम मुझे वरदान देना चाहते हो तो यही कृपा करो कि मेरी इस जन्म-मरण (आवागमन) रूढ़ी आँख मिचौनी को स्थाई कर दो—मैं मोक्ष को प्राप्त न कर सकूँ। कारण, इसके दोनो ही रूप—जीवन और मरण—अपने आप में सुन्दर-मधुर हैं। समस्त जीवन (आँख मिचौनी के खेल में जब तक आँखें खुली हैं) तो तुम्हारी खोज करने में व्यतीत होता है और इसी लिये मधुर है, मरण इस लिये सार्थक है क्योंकि मरना तुमको छूना ही है, अपने पृथक अस्तित्व की समाप्ति है।

विशेष—आँख मिचौनी के खेल में जो हाथ देनेवाला (चोर) होता है, खिलाडियो में से जब किसी को छू लेता है तो वह स्वयं अपने उन साथियों से मिल जाता है। उसका कोई पृथक अस्तित्व नहीं रह जाता।

[प्रिय ! तेरे उर में जग जावे]

अर्थ—पपीहा साधक-आराधक है और मेघ उसका साध्य-आराध्य। पपीहे की आकुल पुकार ही मेघ में बिजली के रूप में मूर्तिमान होती रहती है—पपीहे की सफलता यही है कि उसने अपनी व्याकुल साधना से मेघ को भी बिजली के रूप में तडपा दिया है, उसकी निरपेक्षता भंग कर दी है। इस प्रकार बादल के हृदय की चमक, जिसे प्रेम के रहस्यों से अपरिचित-अनभिज्ञ संसार बिजली की कौध समझता है, वस्तुतः प्रेमी पपीहे की आराध्य बादल के हृदय में उत्पन्न की गई तडपन है। यही अवस्था कवयित्री अपने बारे में समझना चाहती है।

विशेष—यह नवीन अद्भुत कल्पना प्रशंसनीय है।

[तुम चुपके से आ बस जाओ]

अर्थ—तुम अज्ञात रूप से मेरे जीवन के व्यापारों—सुख-दुःख,

स्वप्नों और इवासी-में आकर बस जाओ, चाहे कितने ही प्रच्छन्न रूप से तुम रमो, पर मेरी चेतना और दृष्टि तुम्हें पहचान ही लेगी ।

[जड़ जग के ग्रणों में स्मित से]

अर्थ—इस जड़ प्रकृति के परमाणु तुम्हारी सुन्दर-स्निग्ध मुस्कान के स्पर्श मात्र से जीवित—स्पंदित हो उठे । इस प्रकार तुम्हारे कारण यदि जड़ प्रकृति में जीवन-संचार हुआ तो अनेक रूपों में उसका पल्लवन और विकास मानव की आखों के जल के सिचन से—मानव की करुणा और सहानुभूति से हुआ ।

विशेष—प्रकृति में दो तत्त्व प्रमुख हैं—१. आनन्द, २. मानव-सहानुभूति । प्रकृति को आनन्द तत्त्व ब्रह्म से मिला, कारण ब्रह्म आनन्द-मय है, किन्तु उसका समुचित विकास मानव-करुणा से ही हुआ है । सूर्य (आनन्द) ने अंकुर को जीवन दान दिया और जल (मानव सुलभ करुणा) ने विकसित किया ।

[कुहरा जैसे घन आतप में]

अर्थ—जैसे कुहरा प्रखर धूप में लय हो जाता है, उसी प्रकार यह संसार मेरी चेतना में लय हो जायगा—मेरी इस दुःख की साधना का साध्य यही है कि मेरी आत्मा का इतना विस्तार हो जायगा कि संसार मेरे से भिन्न नहीं रहेगा । अतएव अपने आनन्दमय स्वरो से मेरी इस लघु जीवन रूपी बीन को झंकृत मत कर देना, कही दुःख की साधना भंग न हो जाए । क्योंकि दुःख की साधना से ही विश्व के साथ एकरूपता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है ।

विशेष १. महादेवी को दुःख क्यों इतना अधिक प्रिय है—यह कविता इसका पूर्ण प्रमाण है ।

२. इस कविता में आकांक्षा संचारी भाव है ।

अवतरण—कविता संख्या (३५) में कवयित्री ने जीवन का 'चरम सत्य' 'सुधि का दंशन' बताया था। यही भाव इस कविता में है। मानव व्यक्तित्व की अपने आप में कोई सार्थकता नहीं, उसकी सार्थकता अलौकिक प्रियतम के विरह में है। इसी विरह की अभिव्यक्ति के माध्यम में नयन साधिका को वरदान स्वरूप प्रतीत होते हैं।

[अग्लि वरदान मेरे नयन]

अर्थ—हे सखि ! ये नेत्र मेरे लिए वरदान हैं। वैसे तो भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों प्रकार का मोह नेत्रों द्वारा ही होता है और नेत्र लौकिक सांसारिकता की ओर आकृष्ट होकर साधना की कठिनाई भी उपस्थित कर सकते हैं किन्तु मेरे नेत्रों ने भौतिक आकर्षणों का तिरस्कार किया है, इसलिए ये वरदान हैं।

(नानारूपी आकर्षणों से आविल) संसार रूखी अतल-अथाह सागर उमड़ रहा है जिसमें सुख की अभिन तरंगें उठ रही हैं पर मेघस्वरूप प्रियतम के अनन्य प्रेमी मेरे नयन-चातकों की प्यास इनसे नहीं मिट सकती। जिस प्रकार चातक की तृप्ति मेघ की बूँद से ही होती है उसी प्रकार प्रिय-दर्शन की बूँद—जिसे आँसू व्यक्त करते हैं—से ही मेरे नयन तृप्त हो सकते हैं।

विशेष—१. साधिका ने संसार तथा संसार के सुखों, दोनों की उपेक्षा की है।

२. अन्य कवियों ने अपने को ही चातक माना है (तुलसी की 'चातक चौंतीसी' प्रसिद्ध है) किन्तु यहाँ नेत्रों को।

[पी उजाला तिमिर पल में]

शब्दार्थ—तिमिर=अन्धकार । चषक=शराब का प्याला ।

अर्थ—अन्धकार रूपी मद्यप (शराबी) सूर्य रूपी मदिरा पात्र (प्याले) से प्रकाश रूपी मदिरा को पीकर, पात्र को जल में फेक दिया करता है—सूर्य के डूबने से प्रकाश समाप्त हो जाता है, दिन ढल जाता है और रात्रि का आगमन होता है । सारी दिशाएँ तिमिराच्छादित हो जाती हैं । तब उस नीरव एकांत में ये दुःख के अश्रु प्रवाहित करते हुए मादक मदिरा के प्याले रूपी नयन संसार के अणु-परमाणु को प्रेम का दान देते रहते हैं ।

विशेष—१. दिन की हलचल की समाप्ति के पश्चात् रात्रि के करुणापूर्ण वातावरण में ही अश्रु अधिक आते हैं । यहाँ अलौकिक प्रियतम के विरह में साधना-संलग्न नयन अश्रु प्रवाहित करते हैं ।

२. कवयित्री की रूप विधायिनी कल्पना ने कमनीय चित्र कलित किया है ।

३. यहाँ 'यह' शब्द का प्रयोग बहुवचन में हुआ है । व्याकरण की दृष्टि से यह ठीक नहीं । 'ये' का प्रयोग होना चाहिए 'स्वरपात' में भी अन्तर नहीं आता ।

[छू अरुण का किरण चामर]

शब्दार्थ—निर्भर=भरे हुए । चामर=चाँवर ।

अर्थ—प्रातःकालीन बाल रवि के स्वर्णिम किरण रूपी चाँवर से रात्रि में जलते हुए तारारूपी दीपक बुझ गए । किन्तु मेरे ये नयन-दीप किसी की प्रतीक्षा में निरन्तर जल रहे हैं—रात्रि भी तारा-दीपों के रूपों में किसीकी प्रतीक्षा करती है किन्तु वह इस व्रत का निर्वाह नहीं कर पाती और दीपक बुझ जाते हैं पर मेरे नयनदीप निनिमेष-निरन्तर पथ में प्रियतम की प्रतीक्षा करते रहते हैं । दुःखांधकारमय

विरह में ये नयन-दीप ही एक मात्र सम्बल है, अपने साधना के प्रकाश से विपथ नहीं होने देते और मार्ग दर्शन करते रहते हैं ।

विशेष—‘तममय’ दुःखमय का प्रतीक है ।

[उलझते नित बुलबुले शत]

अर्थ—जीवन रूपी सरिता में ये नेत्र कमलवत हैं—पंकिलता में पंकज, सरिता की हलचलों से अप्रभावित-जीवन-सरिता में नयन-कमलो को निरन्तर अनेकों सुख के बुलबुले उलझाते तथा दुःख एवं कठिनाइयों के भँवर घेरते रहते हैं किन्तु जैसे कमल सूर्य की किरणों से सुशोभित हो खिल उठता है उसी प्रकार प्रिय की मुस्कान से रंजित ये नेत्र भी जीवन के सुख-दुखों से असम्पृक्त अपने साधना-पथ पर अटल रहते हैं तथा जीवन के हर्ष-त्रिमर्षों से अविचलित ।

[मैं मिटूँ ज्यों मिट गया घन]

अर्थ—मेरा अस्तित्व चाहे बादल के समान क्षणिक सिद्ध हो, मेरे हृदय की कम्पन भी बिजली की कौध के समान मिट जाय पर मेरी यही कामना है कि प्रत्येक कण से, अंकुरो सदृश, प्रियतम के प्रेम में पगे नेत्र उत्पन्न हो जायें- बादलों के त्याग से पृथ्वी पर अनेक अंकुर उत्पन्न हो जाते हैं उसी प्रकार मेरा व्यक्तित्व चाहे नष्ट हो जाए, किन्तु प्रिय-प्रेम-पूरित, वरदान स्वरूप, नयन चिरंतन बने रहे ।

विशेष—१. समस्त कविता में रूपको की रमणीय चित्रमाला है ।

२. नीहार की ३७ कविता भी नेत्रों पर है । वहाँ भी कवयित्री ने यही कामना की है । कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

सजग लखती थीं तेरी राह ।

सुलाकर प्राणों में अक्वसाद,

पलक प्वालों से पी पी देव !

मधुर आसव सी तेरी याद !

(३२४)

× × ×

आज आये हो हे करुणेश !
इन्हें जो तुम देने वरदान,
गला कर मेरे सारे अंग
करो दो आँखों का निर्माण !

: ५० :

अवतरण—मानव चेतना का मूल उद्गम अर्थात् परमात्मा जितना रहस्यमय है उतना ही उस तक पहुँचने का मार्ग भी—साधना भी रहस्यमय है ।

[दूर घर में पथ से अनजान]

शब्दार्थ—पारावार=सागर । पुलिन=किनारा । सिकतामय=रेत से युक्त, नीरस ।

अर्थ—मेरा गन्तव्य (अभीष्ट प्रियतम) भी दूर है, और मैं उस तक पहुँचने के मार्ग से भी अपरिचित हूँ—उपयुक्त साधना की भी कमी है, क्योंकि मेरे जीवन की दुर्बलताएँ ही मेरे साधना-पथ की बाधाएँ हैं । यथा मेरी अपनी ही चितवन—निराशा—से अन्धकार का सागर उमड़ रहा है, इसलिए पथ नहीं सूझता मेरे जीवन की इच्छा-आकांक्षाएँ काँटों के रूप में पथ में बिखरी पड़ी हैं । किनारे की सिकता के समान मेरे हृदय में शुष्कता—नीरसता बनी हुई है ।

[मेरी निश्वासों से बहती]

शब्दार्थ—झंभावात=आँधी । उत्पात=प्रलय ।

अर्थ—मार्ग की बाधाएँ --आँधी, तूफान, बिजली अर्भद—मेरे व्यक्तित्व में ही अन्तर्भूत हैं । मेरी घोर आहें मानो भीषण आँधी का रूप तथा निरन्तर उमड़ता हुआ अश्रु-प्रवाह मानों प्रलय-प्रवाह है । मेरी हृदय की उठती हुई टीस में बिजली छिपी हुई है ।

विशेष—छायावादी कवि अलंकारों के चयन में प्रभाव-साम्य का विशेष ध्यान रखते हैं । इससे कवि का अभीष्ट पूरी प्रभावोत्पादकता

से व्यक्त हो उठता है। यहाँ आँधी, प्रलय और बिजली के चयन में यही बात है। “आँसू” में प्रसाद ने भी अपनी विरह-दशा को इसी प्रकार व्यक्त किया है—

“भँभा भँकोर गँन है,
बिजली है नीरव माला,
पाकर इस शून्य हृदय को,
सबने आ डेरा डाला।”

[मेरी ही प्रतिध्वनि करती पल-पल मेरा उपहास]

शब्दार्थ—प्रतिध्वनि=गूँज।

अर्थ—मेरे पैरों की आहट की गूँज मुझ पर ही हँसती है—मेरी साधना की दुर्बलता मेरी हँसी उड़ाती है। (जब किसी निर्जन पथ में कोई पथिक चलता है तो भय के कारण अपनी पदचाप की ही ध्वनि से उसे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई दूसरा उसके साथ चल रहा है।) इससे एक शंका और भय उत्पन्न हो जाता है और व्यक्ति अपने सत्स्वरूप को समझने में असमर्थ हो जाता है।

विशेष—तुलना कीजिए—

आती है शून्य जगत से क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी,
टकराती बिलखाती पगली सी देती फेरी।

—प्रसाद

[दुःख में जाग उठा अपनेपन का सोता संसार]

अर्थ—दुःख या एक प्रकार के अपनत्व की भावना जाग उठी है—दुःख एक प्रकार के ममत्व की भावना से स्पन्दित हो उठा है। सुख में शंकारसम क्षीण किन्तु मधुर स्मृतियाँ समाहित हैं। फलतः ऐसी अवस्था में सुख-दुःख दोनों प्रिय हो उठे हैं।

[बिंदु-बिंदु ढलने से भरता]

अर्थ—यह एक विचित्र पहेली है, जो सुलझाने में नहीं आती—आँखों से निरन्तर अश्रु-बिन्दु प्रवाहित होते रहते हैं, और हृदय में सागर उमड़ने लगता है। आँसुओं के कोष हृदय को तो रिक्त होना चाहिए था, वह उल्टा भरता है। क्षण-क्षण मिटने से तो जीवन विनष्ट होता है, किन्तु यहाँ जीवन का निर्माण हो रहा है—यही विरोध-वैचित्र्य है। वस्तुतः विरोध नहीं विरोधाभास है। क्योंकि विरह-जन्म अश्रुओं से तो प्रेम का संवर्द्धन होता जाता है। साधना दृढ़तर होती जाती है, और भौतिक जीवन के क्षय से आध्यात्मिक जीवन अक्षय-अमर होता जाता है—आत्मोन्नति हो रही है।

विशेष—१. विरोधाभास अलंकार है।

२. उपर्युक्त पंक्तियों में “Die to live” का भाव है।

[पल-पल के भरने से बनता]

अर्थ—क्षण-क्षण (रूपी मोतियों) के व्यतीत होने (झरने) से युग रूपी हार बनता है। विरोध यही है कि माला लड़ियों के संगुम्फन से बनती है, झरने से नहीं। श्वास-श्वास (मेघों) को खोकर स्वर्ग (आकाश) से व्यापार होता रहता है—अचिर पार्थिव जीवन का ह्रास और चिर अपार्थिव जीवन का विकाम होता रहता है। विरोध यही है कि नित्य खोकर व्यापार नहीं किया जाता। इस प्रकार अभिशाप और वरदान की स्थिति एक साथ है।

विशेष—विरोधाभास अलंकार है, क्योंकि विरोध का परिहार भी साथ ही हो रहा है।

२. मेघ मानों पृथ्वी के श्वास हैं, जो आकाश के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं।

[इस पथ का कण-कण आकर्षण]

शब्दार्थ—दुराव = छिपाव ।

अर्थ—यह प्रियतम (घर) भी रहस्यमय है, और साधना (मार्ग) भी । रहस्यमय होने से इस पथ में एक आकर्षण है, और इसे अपनाने की इच्छा बरबस जाग उठती है—प्रिय मेरे लिए एक पहेली है, फिर भी इस पहेली का प्रभाव अमिट है, और मुझे इसके सुलझाते रहने के बन्धन में अभिमान है ।

विशेष—१. 'मूक पहेली'—पहेली मूक इसलिए है कि इसका उत्तर नहीं मिलता ।

२. "अमिट दुराव" —दुराव अमिट इसलिए है क्योंकि साधिका का प्रियतम कभी न मिलने वाला रहस्यमय है ।

३. साधिका को प्रियतम से साक्षात्कार करने में आनन्द नहीं, उसे केवल रहस्य तथा बन्धन की ग्रन्थियाँ खोलने में ही गर्व है, इसी-लिए वह अपरिचित पथ पर दूरप्रियतम को मिलने के लिए चलती है ।

: ५१ :

अवतरण—प्रायः भगवान की पूजा मन्दिर में जल, अक्षत, चन्दन दीप, धूप आदि स्थूल उपकरणों से की जाती है, किन्तु रहस्यवाद में व्यक्त-प्रत्यक्ष के साथ रागात्मक सम्बन्ध न होकर अव्यक्त अथवा निराकार के साथ होता है। रहस्यवादी अपने अन्तःकरण के अनुभूति खंड के भीतर ही उस अखण्ड ज्योति का साक्षात्कार करता रहता है। उसका जीवन मन्दिर और मन दीपक बन जाता है, और यह उपासना भी निरन्तर गतिशील रहती है—समग्र चेतना सदैव उसकी अर्चना-वन्दना में रत रहती है।

शब्दार्थ—अभिनन्दन=स्वागत, गुणगान आदि। अक्षत=चावल। उत्पल=कमल। उन्मीलन=खिलना।

अर्थ—मुझे स्थूल पूजा-अर्चना की आवश्यकता नहीं। मेरा अत्यन्त छोटा जीवन ही उस सीमा-रहित अर्थात् विराट् विश्वेश्वर का मनोहर मन्दिर है, मेरी श्वासें सदैव उस प्रियतम का स्वागत अथवा जय-जयकार करती हैं। उनके चरणों की धूल का प्रक्षालन नयनों से उमड़ते अश्रुओं द्वारा होता है। मैं प्रेमाधिव्य से खड़े हुए रोमांचित रोगटों से ही उनके मस्तक पर अक्षत तथा हृदयस्थ मधुर पीड़ा का ही चन्दन लगाती हूँ। प्रेमरूपी तेल से भरा हुआ मनरूपी दीपक जलाती हूँ। मैं अपने नयनों को ही नव उत्फुल्ल (खिले हुए) कमल के रूप में उनके चरणों पर चढ़ाती हूँ। हृदय की धड़कन ही धूप बन कर उड़ती रहती है। मेरे ओठ प्रिय का मन्त्रजाप करते हैं और पलकों झपक कर साथ ताली बजाती हैं।

विशेष—१. सुन्दर सांगरूपक है ।

२. कवयित्री के जीवन का एक-एक क्रिया कलाप प्रियतम के प्रति अनन्य आत्मसमर्पण का परिचायक है—सांगरूपक ने इसी तथ्य को स्पष्ट किया है ।

३. महादेवी जी खण्डन-मंडन की कटु दुर्वृत्ति से दूर है । अपनी निराकार उपासना का समर्थन-अनुमोदन जिस कल कोमल कलात्मक विधि से किया गया है, वह प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है ।

४. महादेवी ने 'सांध्यगीत' की आरती में भी यही उपकरण जुटाये है—

हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चन्दन,
अगरुधूप सी साँस सुधिगन्धसुरभित,
बनी स्नेह-लौ आरती चिर अकम्पित,
हुआ 'न का नीर अभिषेक जल-कण ।

५. 'मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे'—चन्दन में सुगन्ध होती है, साधिका की आध्यात्मिक पीड़ा में भी है । महादेवी प्रथम कविता में कहती है—

‘सौरभ सी लेकर मधुर पीर’

: ५२ :

अवतरण—जीव और ब्रह्म के अंश-अंशीभाव को स्पष्ट करते हुए कवयित्री अपनी चिर वियोगमयी स्थिति का परिचय देती है । एक बार अंश, अंशी से बिछड़ा तो फिर अत्यन्तर आ जाता है । यह तर्क उपस्थित हो जाता है कि असीम के साथ ससीम का मेल कैसा ? —कवयित्री की यही वेदना यहाँ व्यक्त हुई है ।

[प्रिय सुधि.....फूली]

अर्थ—प्रियतम के अपार वैभव तथा अपनी क्षुद्र स्थिति का ज्ञान कर साधिका सखी से अपनी वेदना विवृत्ति यूँ करती है—एक बार मैं उनसे अलग क्या हुई कि चिर वियोगमयी स्थिति उत्पन्न हो गई है । वे मेरी सुधि भूल जाने के कारण आ नहीं सकते और मैं पथ भूल जाने के कारण उन तक जा नहीं सकती । सौरभ और कलिका के समान मेरा और उनका अभिन्न सम्बन्ध था । किन्तु मुझ कलिका के हृदय में ही आनन्द से वास करके—क्योंकि उनके प्रेम का पोषण मुझमें हुआ—तथा हृदय का सम्पूर्ण रस-माधुर्य ग्रहण करने के उपरान्त वह परिमल-प्रियतम गगन बिहारी हो गए और मैं कलिका स्वरूप वैभवहीन वन में ही फूली रह गई ।

[तज उनका गिरि सा.... धूली ।]

अर्थ—धूलि के कण और पर्वत के समान मेरा और उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध था । उनके गिरिवत उदार हृदय को छोड़कर मैं बालुका कण के समान झर आई । अब मेरे और उनके सम्बन्ध की कोई कल्पना भी कैसे कर सकता है ? क्योंकि कहाँ मैं पद-दलित रास्ते की धूल और कहाँ मेघों का स्पर्श करने वाला उच्च पर्वत ।

[उनकी वीणा.....भूली]

अर्थ—उस ब्रह्म की हृदय वीणा की नई इच्छा (एकोऽहम् बहु स्याम) रूपी कम्पन से मुझ जीवरूपी ध्वनि का निर्माण हुआ किन्तु अब मैं ध्वनि—वीणा में पुनः किसी प्रकार न जा सकी । प्रतिध्वनि के समान केवल शून्य में विचरती रह गई—मेरा व्यक्तित्व विश्व में भटकता रह गया ।

विशेष—अन्य गीतों की अपेक्षा इस गीत से भाव-ऐक्य और तज्जन्य प्रभाव का अधिक अनुभव होता है । एक ही भाव को तीन चित्रों में स्पष्ट किया गया है ।

अवतरण—महादेवी बुद्ध की करुणा से प्रभावित है । इस कविता में बुद्ध की करुणा के साथ कृष्ण की बाँसुरी तथा शंख से भी भारत-वासी को उद्बोधित किया गया है ।

[जाग बेमूढ जाग.....जाग]

शब्दार्थ—हीरक हार=हीरों का हार । सन्ताप=दुख ।

अर्थ—हे स्वार्थ-निद्रा में सुप्त मानव जाग । तुम्हें उसी सिद्धार्थ के आदर्श जगाने आए हैं जिसने हीरक हार—राज पाट और सुव वैभव—को छोड़कर, अश्रुकणों—संसार के प्रति करुणा-भावना—के हार से उर को सुशोभित किया, और फिर इसी करुणा अथवा संवेदना से प्रेरित होकर जिसने प्रत्येक जन से दुखकी भिक्षा मांगी अर्थात् सबके दुखों को अपना समझ उनके दुख को दूर किया; काँटे सम कठोर हृदय हीनो को अपनी कुसुम-कोमल अहिंसक भावनाओं से सहृदय बना दिया और इस प्रकार संसार के दुख-ताप को निज पावन स्पर्श से चन्दन सम शीतल । ऐसी करुणा के मूर्तिमान प्रतिमा सिद्धार्थ की साधना तुम्हारा आत्मान कर रही है ।

[शंख मे ले नाश मुरली में छिपा वरदान]

अर्थ—जिसके शंख में (निर्माण के लिए) विध्वंस का स्वर और मुरली में निर्माण का मंजुल वरदान था; जिसकी दृष्टि में अदम्य उत्साह और प्रेरणा की शक्ति और (मुरली के कारण) ओठों में समस्त संसार की शोभा वर्तमान थी, जिसकी बाँसुरी के स्वरों ने पावन प्रेम

का प्रसार किया, आज उसी कृष्ण की प्रतिध्वनि, दैवी वाणी के रूप में गूँज रही है। हे कृष्ण की क्रीड़ा भूमि (भारत) के वासी अब तू अज्ञान-निद्रा से जाग उठ।

[रात के पथहीन तम में मधुर जिसके श्वास]

अर्थ—रात्रि के निराशामय घने अंधकार में जिसकी चेतना कण-कण में अपार सुखाशा की सुगंध का प्रभाव-विस्तार करती है; कष्ट-कंटकों की शैया पर भी जो करुणा-कणों (ओस) के ताज से सुशोभित रहता है—दूसरों के प्रति संवेदनशील रहता है—हे भाग्यवान मानव तू भी उसी खिले हुए गुलाब के समान खिल उठ।

विशेष—गुलाब के द्वारा रंगीनी, कोमलता, स्फूर्ति और आह्लाद की व्यञ्जना हो रही है।

इस समस्त कविता में अदम्य उद्बोधन के ओज के साथ मानव-प्रेम और मानव सौन्दर्य का मुखर उल्लास है।

यह कविता मानो 'साध्यगीत' की निम्न अमर कविता का प्रथम सोपान है—

“जाग तुझको दूर जाना।

खिर सजग, आँखें उनीची, आज कैसा व्यस्त बाना।”

यह कविता उत्साह की भावना व्यक्त करनेवाली है। किन्तु यहाँ शास्त्र-सम्मत ओज नहीं—ओज गुण के वाचक वर्ण नहीं प्रयुक्त हुए, किन्तु अर्थ अथवा भाव में दीप्ति स्पष्ट है।

प्रवतरण—ससीम-असीम, सृष्टि-प्रलय, जीवन-मृत्यु, दिन-रात आदि उसी सारभूत सत्ता के ही रूप हैं। कवयित्री विराट शक्ति की अप्सरारूप में कल्पना करती है, जिसमें ससीम-असीम आदि सभी एक संतुलित नृत्य का रूप ग्रहण कर लेते हैं और वह समस्त संसार को अपने संकेतों पर नचाने में समर्थ हैं।

[लय गीत मंदिर, गति ताल अमर]

शब्दार्थ—सित=सफेद। असित=काला। मंजीर=नूपुर। अलक=बाल। किकिणि=कर्धनी।

अर्थ—हे विराट शक्ति अप्सरा ! तेरा नृत्य कितना मनोहर है—परिवर्तनमयी क्रियाएं कितनी सुन्दर हैं। इस नृत्य जन्य गीत की लय कितनी मस्त कर देने वाली, कितनी आनन्द प्रद है। इस नृत्य की गति और ताल चिरंतन-शाश्वत है। तात्पर्य यह है कि संसार की समस्त सृजन-क्रिया तथा परिवर्तन-प्रक्रिया इस नृत्य से प्रभावित है। और ये समस्त प्रक्रियाएं अपने आप में सुन्दर हैं।

ये अंधकार और प्रकाश—रात और दिन तेरे श्याम और श्वेत वस्त्र हैं। नृत्य-निरत नूपुरों की झंकार ही सागर की गर्जन है। यह आंधी और तूफान ही तुम्हारा केशजाल है। मेघों की गर्जन में तुम्हारी कर्धनी का स्वर है। इस प्रकार प्रकृति की सभी क्रियाओं में तुम्हारा ही प्रभाव-विस्तार है और इनमें एक सुन्दरता है।

विशेष—यहाँ सांगरूपक का चमत्कार है।

[रवि शशि तेरे अवतंस लोल]

शब्दार्थ—अवतंस=कुंडल । लोल=चंचल । सीमंत=माँग ।
विभ्रम=कटाक्ष, अदाएं ।

अर्थ—सूर्य और चन्द्र ही तेरे कुंडल हैं जो नृत्य के कारण हिल रहे हैं । ये तारे मानो तेरी माँग में ग्रथित मोती हैं, तेरा सविलास कटाक्ष ही बिजली हैं, तेरी हँसी ही इन्द्रधनुष है । नृत्य के परिश्रम जन्य पसीने की बूंदें ही ओस-बिंदुओं के रूप में झर रही हैं ।

[युग है पलकों का उन्मीलन]

शब्दार्थ—उन्मीलन=आँख का खुलना । लय=प्रलय । स्पंदन=कम्पन ।

अर्थ—तेरी पलकों का मीलन-उन्मीलन, बंद करना, खोलना ही एक युग बीतना है । असंख्य प्रलय और सृष्टि तेरे स्पंदन में समाविष्ट हैं । यह जड़-चेतनमय विश्व, पूरी तल्लीनता-तन्मयता से, तेरी साँस-साँस के साथ नाच उठता है—सभी कुछ तुम्हारे संकेत से हो रहा है, विश्व की परिवर्तन-प्रक्रिया तुम्हीं पर आश्रित है ।

[तेरी प्रतिध्वनि बनती मधुविन]

शब्दार्थ—प्रतिध्वनि=गूँज ।

अर्थ—जैसे कोकिल की काकली-ध्वनि के स्पर्श से प्रकृति का प्रत्येक अंग वासंतिक सुषमा से जगमगा उठता है उसी प्रकार तुम्हारी गूँज ही वसंत का प्रतिरूप बनती है—तुम्हारी ध्वनि ही कोकिल कूजित वसंत का दिन है । जब तू निकट आती है, तो मानो वर्षा-वेला आ जाती है—जिस प्रकार व्यक्ति के निकट आने से छाया सघन होती जाती है तेरे समीप आने से वर्षा का आविर्भाव होता है । हे रूपसि ! तुम्हारे स्पर्श से तुझ में ही लीन होकर जड़ भी अमरता का वरदान पा लेता है ।

[जड़ कण-कण के प्याले भलमल]

शब्दार्थ—सीकर=बूँद ।

अर्थ—पहले तो तुम सूर्य के रूप में आकर प्रत्येक कण को आलोचित करती हुई जीवनदान देती हो—सूर्य की रश्मियों से जग-मगाने वाला जड़-प्रकृति का प्रत्येक कण एक प्याला है जिसमें जीवन रूपी मदिरा छलक उठती है— प्रकृति का प्रत्येक कण जीवन से स्पंदित हो जाता है । फिर तू नाचते-नाचते इन प्यालों की उमड़ती हुई जीवन मदिरा की एक-एक बूँद इस सीमा तक पीती है कि ये बिल्कुल निःशेष हो जाते हैं—तू इनका सारा जीवन सोख लेती है । इस प्रकार जीवन तथा मृत्यु दोनों देने वाली नृत्यक्रिया मनोहर है ।

विशेष—इन पक्तियों का ध्वनि चित्र आस्वादनीय है ।

[बिखराती.....अधर]

शब्दार्थ—लास=नृत्य ।

अर्थ—तू अपने उल्लास-नृत्य से सब पर नई तल्लीनता, मस्ती, और हर्षोल्लास का प्रभाव-विस्तार करती चलती है । प्रत्येक कण रूपी प्याला तेरे ओठों का पहले स्पर्श पाने को आतुर आकुल रहता है ताकि तुम्हारे वरद स्पर्श से अमर हो जाए ।

[हे.....कोमलतर]

अर्थ—सृष्टि और प्रलय, ससीम और असीम सभी तुझ में आलिंगन बद्ध हैं—मिले हुए हैं । तुझे कोई भी भयानक नहीं कह सकता क्योंकि कि तुम्हारा यह लीला-नृत्य अपने आप में सुन्दर तथा गूढ़ तथ्यों को छिपाए हुए है, तू ठीक ही समझती है कि एकरसता विश्व के लिए घोर सिद्ध हो सकती है, अतैव तेरी सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि करने में एक नूतनता जन्य आनन्द है । अतैव तू कोमल है, कठोर नहीं ।

[तेरे.....सुन्दरतर]

अर्थ—सृष्टि के सब उपकरणों का चरम गंतव्य तुम्हीं हो, उनकी चरम सार्थकता तुझ में लीन होने की है। जैसे प्राण रूपी दीपक तुम्हारी आरती उतारने के लिए नित्य साधना की लौ में जलते हैं, फूल और विद्वान तुम्हारी पूजा हेतु ही हंसते-खिलते हैं। हे श्यामान्गिनी तुम्हारे लीला-भाव के संतोष-परितोष के लिए ही संसार मिट-मिट कर बनता और बन बन कर मिटता रहता है और इस प्रकार नित्य नवीन रूप धारण कर सुन्दरतर बना रहता है। इस प्रकार यह सारी क्रीड़ा तुम्हारी और तुम्हारे ही निमित्त है। प्रकृति की विराट सत्ता का यह लीला-नृत्य अपने आप में सुन्दर है।

विशेष—इस कविता बौद्धव्य 'मृत्यु' भी हो सकती है।

: ५५ :

अवतरण—सखी नायिका से प्रियतम के स्वागत-सत्कार के लिए आवश्यक साधना तथा तैयारी करने के लिए कह रही है ।

[उर तिमिरमय घर तिमिरमय]

शब्दार्थ—तिमिरमय=अंधकारमय । विहान=प्रातःकाल ।

अर्थ—सखी नायिका से कहती है कि हृदय में भी निराशा है और बाहर जीवन अथवा जगत में भी अंधकार है । अतएव साधना-दीप जलाकर उल्लास-प्रकाश से प्रियागमन के लिए बाहर-भीतर को उपयुक्त बना ले ।

प्रियागमन के लिए जो पथ है वह भी स्वच्छ नहीं क्योंकि रात और विहान, दुःख और सुख अत्यधिक ओस रूपी अश्रु बहाकर पथ को पंकिल बना गए हैं । साथ ही जीवन के स्वप्न, भूले और अहंकार-अभिमान काँच के टुकड़ों के समान बिछकर प्रिय-पथ को और कठिन बना रहे हैं । प्रियतम तो कुसुम-कोमल है और पथ में तुम्हारे जीवन की दुर्बलतओं ने कांटे बिखेर दिए हैं । अतएव हे सजनि ! प्रियागमन की सुविधा हेतु अपनी साधना के सुकुमार पलक-पाँवड़े बिछा दे ।

विशेष—“पलक बिछाना” मुहावरा है ।

[तृप्ति जीवन में घिरे घन]

अर्थ—पहले तो तेरे हृदय की निश्वासों निर्गत होकर अभाव ग्रस्त जीवन में मेघ बन गए पुनः वही पलक रूपी सीपी में बरस कर मोती बनकर धूलि में डुलक रहे हैं और व्यर्थ जा रहे हैं । अच्छा यही

है कि प्रियतम के स्वागतार्थ हार डालने के लिए इन मोतियों को गूँथ ले—अपनी साधना को संजो ले ताकि इस साधना के हार को तू उपहार स्वरूप भेंट कर सके ।

[मिलन बेला में अलस तू]

अर्थ—प्रिय-मिलन की प्रतीक्षा में दीर्घ जागरण के कारण जब अलसा कर तू सो गई तो प्रियतम आया किन्तु मिलन के समय तुम्हें सोता देख तुम्हारे स्वप्नों में अपनी मुस्कान छोड़ गया—तुम्हारा स्वप्न-मिलन हुआ । लौटे हुए प्रियतम की वही प्रतिध्वनि, वही क्षण, नीद के साथ-साथ पुनः आ रहे हैं ।

: ५६ :

[तुम सो जाओ मैं गाऊँ]

अवतरण—कवयित्री अपने प्रियतम को पाने के निमित्त साधना-मार्ग पर दृढ़ता से गतिशील है। सुख दुःख दोनों अवस्थाओं में साधना अटूट-अटल है और जीवन के प्रत्येक क्षण को साधना से सुन्दर बनाने का आग्रह है।

अर्थ—महादेवी कहती है कि हे प्रियतम ! मुझे संसार-जन्म मोह-निद्रा में सोने और तुम्हें मुझे मुक्त करने के हेतु लोरी गाते—लीला करते—बहुत दिन हो गए। अब मेरा निवेदन यही है कि तुम यह लोरी गाना बन्द करो—माया अथवा लीला को समाप्त करो—और मैं तुम्हें पलकों की स्वप्न-शैया पर सुलाऊँ क्योंकि मैंने तुम्हारी लोरी का संगीत जान लिया है—मैं तुम्हारे लीला-रहस्य से परिचित हो गई हूँ।

[प्रिय तेरे नभ मन्दिर के]

अर्थ—हे प्रिय ! तुम्हारे आकाश के मणिदीप (तारे) बार-बार बुझ जाया करते हैं—अस्थायी हैं। अब मैं अपने प्राणों रूपी दीपक को तुम्हारी प्रेम-साधना की ज्वाला से इस प्रकार जलाऊँगी जिसमें इन तारों की अपेक्षा अनंत प्रकाश होगा—मेरी साधना की परिपक्वता असीम-अनंत प्रकाश प्रसारित करेगी।

[क्यों जीवन के शूलों में]

अर्थ—तुम जीवन के दुःख रूपी काँटों में क्यों आते हो। यदि ऐसा है तो तुम्हारे सुहुमार शरीर को कष्ट-कंटकों से पीड़ा पँचती

होगी अतएव तुम्हारे आगमन-पथ में पाँवड़ो के रूप में अपने अश्रुकोमल मोती बिछाने दो ।

विशेष—कवयित्री प्रियतम के वियोग में निरन्तर अश्रु प्रवाहित कर रही है । साधना से ही मिलन की आशा हो सकती है इसीलिए उसके आँसुओं से प्रियतम का आगमन-पथ सरल हो सकता है ।

[पथ की रज में है अंकित]

अर्थ—हे प्रिय ! मेरे विरह के पथ में तुम्हारी स्मृतियों के चरण-चिह्न अंकित हैं । इन्हीं स्मृतियों में तुम्हारा स्वरूप ध्याप्त है अतएव मैं तुम्हारे इसी स्मृति-जन्य स्वरूप का अंजन बना कर अपनी आँखों को अंजित कर लेना चाहती हूँ ताकि मेरे नेत्रों में तुम्हारी छवि सदैव अंकित रहे ।

[जल सौरभ फैलाता उर]

अर्थ—तुम्हारे वियोग की साधना में मेरा हृदय धूप के समान जलकर चारों ओर तुम्हारे प्रेम रूपी सौरभ को फैलाता है । अर्थात् मधुर सात्विक भावों का प्रसार करता है । ऐसे समय में जो तुम्हारी स्मृति है उसे मेरे वेदना जन्य ताप से उष्णता पहुँचती होगी । फिर मैं अपने नेत्रों में आँसू रूपी बादलों को उमड़ा कर इस स्मृति पर छाने वाली उष्णता को शीतल करने का प्रयत्न क्यों न करूँ ।

विशेष—‘लोचन कर पानी-पानी’ में विशेष सौन्दर्य है । वास्तव में लोचनों को पानी नहीं किया जाता प्रत्युत अश्रु-रूप में पानी उनमें भर जाता है । किन्तु विरह की अधिकता तथा गाम्भीर्य व्यक्त करने के लिए ही ऐसा कहा है ।

[इन भूलों में मिल जाती]

अर्थ—काँटों के समान जीवन की भूलें भी अपना महत्व रखती हैं क्योंकि इनमें ही तेरी पूजा की कलियाँ (भाव) विकसित होती

है । अतएव मैं जग को उपहार स्वरूप अपनी भूलें ही क्यों न दे जाऊँ ।

विशेष—यहाँ पर गूढ़ लक्षणा है ।

[अपनी असीमता देखो]

अर्थ—हे असीम प्रियतम । मेरे इस छोटे से पार्थिव जीवन रूपी दर्पण में तुम्हें अपनी असीमता परिलक्षित होती दिखाई देती है—असीम ब्रह्म की अभिव्यक्ति नश्वर-सीमित शरीर के माध्यम से ही होती है । तो फिर मैं अपने साधना-सूचक अनवरत अश्रुओं से जीवन के प्रत्येक क्षण की कलुष-कालिमा को धोकर इसे (अपने जीवन को) दर्पण-वत् स्वच्छ सात्विक ही क्यों न बना लूँ ? मेरे जीवन का प्रत्येक पल इतना पारदर्शी हो उठेगा कि तुम्हारी असीमता उसमें प्रतिबिम्बित हो उठेगी । प्रत्येक क्षण भी असीम हो जायगा अर्थात् तुम्हारा आभास मुझे सर्वदा, सर्वत्र—मिलता रहेगा ।

[हँसने में छू जाते तुम]

अर्थ—मेरे सुख में (हँसी में) तुम्हारे स्पर्श समाए है और दुःख में भी तुम्हारी स्मृति आती है अर्थात् जब मैं तुम से 'तदाकार तन्मयता' की अवस्था को प्राप्त होती हूँ तो मुझे तुम्हारा स्पर्शजन्य सुख प्राप्त होता है जिससे मैं हँस देती हूँ और जब विरह-साधना में तुम्हारी स्मृति आती है तो मैं रो देती हूँ । इस प्रकार मेरा हँसना और रोना दोनों तुम्हारे सामीप्य के परिचायक हैं । जब ऐसी स्थिति है तो मैं इस प्रकार के रुदन और हास्य—सुख दुःख की अनुभूति—से संसार के अणु-अणु को स्पन्दित क्यों न कर दूँ ।

अवतरण—कवयित्री अपने मन तथा दूसरों को—व्यथित मानवता को—पीड़ा से उद्बोधित करती है ।

[जागो बेसुध रात नहीं यह]

शब्दार्थ—मलयवातास=मलयवायु । मानस=मन (मानसरोवर) भीनी=हल्की, मंद, मीठी खुशबू ।

अर्थ—हे मेरे प्राण (अथवा अपनी अज्ञान-निद्रा में मग्न प्राणी) जागो क्योंकि यह सोने का समय नहीं, वैभव-विलास की रात नहीं क्योंकि जिसे तुम मस्त कर देने वाली मलय समीर समझ रहे हो वह वस्तुतः व्यथा-विदीर्ण हृदय की आह है जो मन-मानस के दुःख रूपी जल आँसुओं से सिक्त है । तथा उड़ते—अत्यन्त अल्प आल्लाद की गंध से सुवासित है ।

विशेष—यहाँ त्रिविध—शीतल, मंद, सुगंध—समीर का वर्णन है जिसे दुख शीतल तथा तनिक सुख सुगंधित कर रहा है । वस्तुतः अत्यधिक दुख से तो समीर भीगी हुई है और सुख का केवल touch मात्र है ।

[पारद के मोती से चंचल]

शब्दार्थ—पारद=पारा । हिमहास=ओसबिंदु । पाटल=पाठर के पेड़ का पुष्प ।

अर्थ—तुम समझ रहे हो कि पाटल पुष्प पर ओसबिन्दु है, पर ऐसा नहीं, यह तो किसी पीड़ित-व्यथित व्यक्ति की आँखों के वे आँसू हैं जो पारद के मोती के समान तरल तथा निरन्तर बन-मिट रहे हैं ।

[कूल हीन तम के अन्तर में।]

शब्दार्थ—कूलहीन=बिना किनारे के, अनंत। घनचपला=बिजली। लास=नृत्य।

अर्थ—बादलों के असीम अंधकार तथा विस्तार में जो प्रकाश की कौंध हो रही है, वह विद्युत-विलास नहीं, अपितु वह क्षणिक सुखद स्मृतियाँ हैं जो पल भर आलोक करती हैं और फिर निरक्ष्मा और दुःख के अकूल-अथाह अंधकार में विलुप्त हो जाती हैं।

[श्रमकण में ले दुलते हीरक]

शब्दार्थ—श्रमकण=पसीने की बूँद। परिहास=हँसी मजाक।

अर्थ—अपने प्रस्वेद बिन्दुओं में हीरक के समान मूल्यवान तथा चमकीले तारों, चन्द्रमा के रूप में आशादीप को अपने श्यामांचल से ढके ये स्वप्नों के हँसी-मजाक को लिए हुए रात नहीं, अपितु तुम्हें जगाने के लिए प्रेरणामयी पीड़ा आई है।

विशेष—१. यदि प्रकृति वा वर्णन प्रस्तुत माने तो इस कविता में अमनुष्य अलंकार है किन्तु यदि ससार की पीड़ा का वर्णन माना जाय तो निश्चय अलंकार है। वस्तुतः यहाँ दोनों अलंकारों का सौंदर्य है क्योंकि दोनों अर्थों के कारण सौंदर्य है।

२. भावना का सौंदर्य अलंकार के सौंदर्य से कहीं अधिक है, यह इस गीत की सफलता है।

साहित्य-सुधा

(एम. ए. तथा साहित्यरत्न के लिए साहित्यिक निबन्ध)

लेखक—सत्यपाल चुध एम. ए. साहित्यरत्न

मूल्य—तीन रुपये

कुछ सम्मतियाँ—

१. “प्रस्तुत पुस्तक लेखक के बारह विचारपूर्ण निबंधों का संग्रह है। ये निबन्ध इस प्रकार से सजाए गए हैं कि इससे हिन्दी साहित्य के इतिहास को समझने और उसकी गतिविधि को परखने में बड़ी सहायता मिलती है। भाषा परिमार्जित है। निबंधों को अधिक मर्म-स्पर्शी बनाने के लिए लेखक ने प्राचीन तथा नवीन कलाकारों की कृतियों के उद्धरणों का खोजपूर्ण सहारा लिया है। हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी इससे लाभ उठा सकते हैं।”

—सरस्वती

२. “प्रस्तुत पुस्तक सत्यपाल जी के मनन तथा चिन्तनपूर्ण १२ निबंधों का संग्रह है। सभी निबंधों में विषयों की गम्भीर व्याख्या है, विविधता है, भाषा शैली में सौष्ठव है, चिन्तन में गहनता है और उन में पाठक के हृदय में विचार उद्बोधन की शक्ति है।”

—साहित्य सन्देश

कुछ निबंध—

१. सत्यं शिवं सुन्दरम् २. यथार्थवाद-आदर्शवाद ३. साहित्य और राजनीति ४. प्रगतिवाद ५. नाटक का विकास ६. उपन्यास का विकास ७. समालोचना का विकास ८. भक्तिकाल—स्वर्णयुग ९. रीतिकाल—कारण तथा विशेषताएं आदि आदि।

प्राप्ति स्थान

भाषा प्रकाशन

